# महाकवि हस्तिमल्ल की उपलब्ध नाट्य-कृतियों
## का
# साहित्यिक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिये
प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध-सार

अनुसन्धाता
अरविन्द मिश्र

निर्देशक
डॉ० रामकिशोर शास्त्री
व्याख्याता
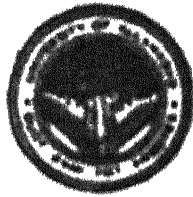
संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
१९९२

## शोध-प्रबन्ध सार

विश्वनाट्य साहित्य में संस्कृत नाट्य साहित्य की समृद्धतम परम्परा रही है । ईसा के पूर्व एवम् पश्चात् अनेक मनीषियों ने अपने कर्तृत्व से नाट्य साहित्य को समलङ्कृत किया है । महाकवि भास, कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त, और शूद्रक जैसे अनेक महाकवियों के नाम तो लोगों के लिए सदैव प्रेरणाबिन्दु रहे हैं किन्तु नाटककारों की इसी परम्परा में महाकवि हस्तिमल्ल का नाम भी उल्लेखनीय है, जिनकी लेखनी का सम्बल पाकर नाट्य साहित्य अपने को और समृद्ध अनुभव करता है । हस्तिमल्ल जैन नाट्य परम्परा से सम्बद्ध थे । महाकवि हस्तिमल्ल के पिता का नाम 'गोविन्द भट्ट' था । उनके नाम के बाद आदरसूचक विरुद 'भट्टार' या 'भट्टारक' अथवा 'स्वामिन्' या 'भट्ट' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है, जिसके आधार पर गोविन्द की विद्वता स्वतः सिद्ध है । भट्टार, भट्टारक, भट्ट या स्वामिन् विद्वता के परिचायक हैं । जैसा कि 'मैथिलिकल्याणम्' से स्पष्ट होता है । विक्रान्तकौरवम् के प्रथम अङ्क के 5।वें श्लोक से यह प्रमाणित होता है कि हस्तिमल्ल वत्सगोत्रीय थे । ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में 'गोविन्द भट्ट' जैन धर्मावलम्बी नहीं थे किन्तु कालान्तर में समन्तभद्र के देवागम सूत्र ।देवागमस्तोत्र। को सुनकर 'गोविन्दभट्ट' ने जैन धर्म ग्रहण कर लिया था । 'गोविन्द भट्ट' दक्षिण भारत के निवासी थे । इनको छः पुत्र थे । ये पुत्र स्वर्णयाक्षी देवी के प्रसाद से उत्पन्न हुए थे । इनके नाम अधोलिखित हैं ।

1. श्री कुमार कवि,
2. सत्यवाक्य,
3. देवरवल्लभ,
4. उदयभूषण,
5. हस्तिमल्ल, एवम्
6. वर्धमान ।

इस प्रकार हस्तिमल्ल अपने चार भाइयों के अनुज तथा एक भाई के अग्रज थे । हस्तिमल्ल का ज्येष्ठ पुत्र 'पार्श्वपण्डित' था । 'पार्श्वपण्डित' के भी तीन पुत्र थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं -

1. चन्द्रप,
2. चन्द्रनाथ एवम्
3. वैजय्य ।

हस्तिमल्ल का वंशवृक्ष अधोलिखित है -

गोविन्दभट्ट

1. श्रीकुमार कवि 2. सत्यवाक्य 3. देवरवल्लभ 4. उदयभूषण 5. हस्तिमल्ल 6. वर्धमान

हस्तिमल्ल: चन्द्रप, चन्द्रनाथ, वैजय्य

चन्द्रप → विजयेन्द्र → ब्रह्मसूरि
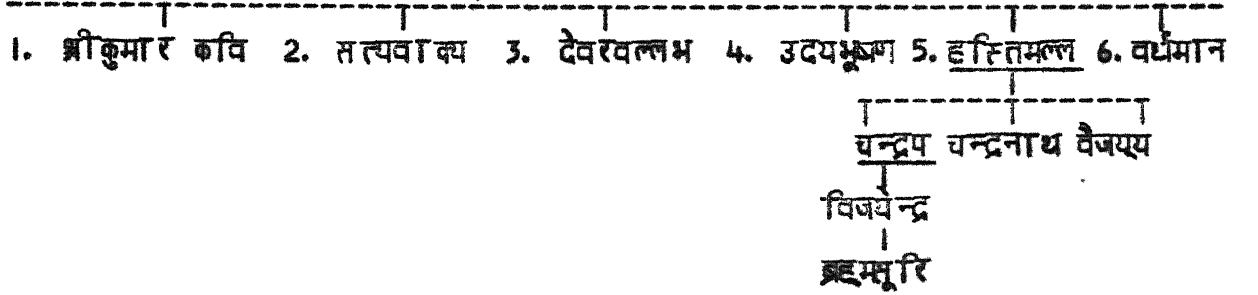
महाकवि हस्तिमल्ल का नाम एक हाथी से युद्ध में साफल्य प्राप्त करने के कारण हस्तिमल्ल पड़ा था । यह हाथी पाण्ड्य राजा द्वारा सरण्यापुर में हस्तिमल्ल के ऊपर छोड़ा गया था । हस्तिमल्ल ने क्रुद्ध हाथी को अपनी अध्यात्मिक शक्ति द्वारा वश में किया था । हस्तिमल्ल यह कवि का उपनाम प्रतीत होता है । स्फुट रूप से यह ज्ञात नहीं हो सका है कि हाथी से भिड़ने के पूर्व हस्तिमल्ल का वास्तविक नाम क्या था ? अय्यपार्य ने अपने 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' में इस घटना का निर्देश किया है ।

नेमिचन्द्र अथवा ब्रह्मसूरि के प्रतिष्ठा तिलक से यह ज्ञात होता है कि विरोधी रूप हाथियों को कुचलने में हस्तिमल्ल शेर थे । इससे यह भी माना जाता है कि हस्तिमल्ल ने यह अद्भुत नाम मत्त हाथी को वश में करने के फलस्वरूप नहीं, बल्कि सार्वजनिक वाद-विवादों में प्रसिद्ध विवादियों को परास्त करने के कारण पाया था ।

ब्रह्मसूरि ने स्व-विरचित 'प्रतिष्ठासारोद्धार में हस्तिमल्ल के पिता गोविन्द-भट्ट का निवासस्थान 'गुडिपत्तन' बतलाया है तथा पं0 के भुजबलि शास्त्री जी ने

इसे ।गुड्डिपत्तन। तंजौर का 'द्वीपंगुड्डि' नामक स्थान माना है, जो पाण्ड्यदेश में है । ब्रह्मसूरि द्वारा कहे गये 'गुड्डिपत्तन' का ही उल्लेख हस्तिमल्ल ने अपने 'विक्रान्तकौरवम्' की 'ग्रन्थकारस्य-प्रशस्तिः' में 'द्वीपंगुड्डि' नाम से किया है । उसमें वहाँ के वृषभजिन् के मन्दिर का वर्णन है जिनके सिंहासन पर या पादपीठ पर पाण्ड्य राजा के मुकुट की आभा पड़ती थी । वृषभजिन् के इस मन्दिर का निर्माण कुश और लव ने कराया था ।

हस्तिमल्ल गुणभद्र के शिष्य थे । गुणभद्र ने अपने उत्तर पुराण की रचना 897 A D. में समाप्त की थी, अतः हस्तिमल्ल का काल नवीं शताब्दी के बाद ही रहा होगा। हस्तिमल्ल के काल की न्यूनतम सीमा 1319 ए.डी. या चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध था । विद्वानों ने दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के बीच हस्तिमल्ल का समय 1319 ए.डी. निर्दिष्ट करने का प्रयास किया है किन्तु उनका विचार इदमित्थं रूप से नहीं माना जा सकता है । एम0 कृष्णामाचारी ने हस्तिमल्ल की संभावित तिथि नवीं शताब्दी बतायी है । अय्यपार्य ने 'जिनेन्द्र - कल्याणाभ्युदय' नामक ग्रन्थ हस्तिमल्ल की रचनाओं का सार लेकर बनाया है । जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय की रचना श0स0 1241 ।वि0सं0 1396। में समाप्त हुई थी अतः हस्तिमल्ल का समय 1396 से मानना चाहिए । हस्तिमल्ल, ब्रह्मसूरि के पितामह

थे, यह ब्रह्मसूरि द्वारा दी गयी वंश परम्परा से स्पष्ट होता है । यदि एक पीढ़ी में 25 वर्ष का अन्तराल माना जाय तो हस्तिमल्ल, ब्रह्मसूरि से 100 वर्ष पूर्व हुए थे । अतः हस्तिमल्ल का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्वीकार किया जा सकता है ।

हस्तिमल्ल को कुल एकादश रचनाओं का कर्त्ता माना जा सकता है । इनके नाम इस प्रकार हैं -

1. विक्रान्तकौरवम् ,
2. मैथिलिकल्याणम् ,
3. अञ्जनापवनञ्जय,
4. सुभद्रा,
5. उदयनराज,
6. भरतराज,
7. अर्जुनराज,
8. मेघेश्वर,
9. प्रतिष्ठा-तिलक,
10. आदिपुराण, एवम्
11. श्रीपुराण ।

उपर्युक्त रचनाओं में से आरम्भिक चार रचनाएं तो 'माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई से मूलरूप में प्रकाशित हो चुकी हैं। शेष रचनाओं का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। महाकवि हस्तिमल्ल का यही जीवन-परिचय एवं कर्तृत्व प्रकृत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय का वर्ण्यविषय है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत नाटक के उद्भव और विकास पर एक विहङ्गम दृष्टि डाली गयी है। नाटक की परिभाषा करते हुए धनञ्जय ने कहा है कि 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' अनुकृति से आनन्द प्राप्त करने की प्रवृत्ति मनुष्य में शैशवावस्था से ही आ जाती है। नाटकों की प्रतिष्ठा श्रव्य काव्यों की प्रतिष्ठा से अधिक विस्तृत है। श्रव्य काव्य के आनन्द से वञ्चित रह जाने वाले मनुष्यों को नाटक में अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है। नाट्य-शास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत ने इसे पञ्चम वेद बताया है।

प्रकृत शोध विषय के नाट्य से सम्बद्ध होने के कारण एक स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि नाट्योत्पत्ति कैसे हुई? किन-किन उपादानों से नाट्यकला का उदय हुआ? इस जिज्ञासा के समाधान हेतु जो यत्न सम्भव हो सका है उसको भी इसी अध्याय में समायोजित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रश्न के समाधान हेतु विभिन्न पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विद्वानों के विचारों को आधार बनाया गया है।

इसमें नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत का मत ऋग्वेद में प्रस्तुत संवाद सूक्त, डॉ० श्रोदर, डॉ० हर्टल, डॉ० कीथ, ओल्डेनबर्ग, विण्डिश, पिशेल, मैक्समूलर, रिजवे, आदि के विचारों की समीक्षा करने के बाद ऋग्वेद के संवाद सूक्त से नाट्योत्पत्ति को सिद्ध किया गया है ।

नाट्योत्पत्ति की प्राचीनता को भी इसी अध्याय में सम्मिलित किया गया है । इसकी प्राचीनता सिद्ध करने के लिए संहिता, ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, पाणिनि, पतञ्जलि, वात्स्यायन तथा कौटिल्य आदि के ग्रन्थों में प्रयुक्त नाट्य सम्बन्धी शब्दों को आधार बनाया गया है । विविध विचारों की मीमांसा करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया है कि किसी न किसी रूप में नाटक के स्रोत वैदिक काल में ही उपलब्ध होने लगे थे ।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने कुतर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि 'संस्कृत नाटक ग्रीक नाटक से प्रभावित हैं ।' इन मतों की सयुक्तिक मीमांसा करके 'संस्कृत नाटकों को ग्रीक नाटकों के प्रभाव से रहित' बताया गया है जिसे दूसरे अध्याय में ही सिद्ध किया गया है ।

नाट्य मण्डप के तीन भेद ।विकृष्ट, चतुरस्त्र, त्र्यस्त्र। बताया गया है ।

इनके आकार, नाप, इनमें दर्शकों के बैठने के स्थान आदि का निरूपण भी द्वितीय अध्याय में ही समाहित है ।

नाटक के महत्त्व और उसकी विशेषताओं का निबन्धन भी प्रकृत शोध प्रबन्ध के प्रकृत अध्याय में ही किया गया है । नाटक के महत्त्व में भरतमुनि का यह कथन कि इसमें तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन किया गया है, विशेष रूप से द्रष्टव्य है । इसी तारतम्य में नाटक को लोकवृत्त का अनुकरण माना गया है । भरतमुनि का यह विचार भी नाटक के महत्त्व के विषय में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि नाटक धनियों के लिए मनोरञ्जन, दुःखियों के लिए आश्वासन, व्यवसायियों के लिए आय का स्रोत और व्याकुलों के लिए शान्ति प्रदान करने वाला होता है ।

नाटक की विशेषताओं में चक्षु इन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय को समान अवसर प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है । नाट्य शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग के लोगों के लिए रुचिकर होता है । संस्कृत नाटकों की विशेषता के सन्दर्भ में इसका सुखान्त होना विशेष रूप से दर्शाया गया है । संस्कृत नाटकों में नायक, नायिका, अन्य पात्रों और यहाँ तक कि भाषायी व्यवस्था का निश्चित होना भी इसके विशेषता के रूप में समायोजित किया गया है । इसकी विशेषताओं में रस, छन्द, अलङ्कार, पात्र और अभिनय को प्रमुखता के साथ द्वितीय अध्याय में ही समाहित

किया गया है ।

नाटकों के विकासक्रम में भास, कालिदास और शूद्रक का विवरण प्रस्तुत करके, संस्कृत साहित्य में जैन-साहित्य का योगदान और जैन नाट्य परम्परा में हस्तिमल्ल के स्थान-निर्धारण का निबन्धन करते हुए प्रकृत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय का समापन किया गया है ।

तृतीय अध्याय में 'हस्तिमल्ल' की उपलब्ध नाट्य कृतियों का सारांश और इनकी कृतियों के मूल स्रोत का अनुसन्धानात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

महाकवि हस्तिमल्ल ने अञ्जनापवनञ्जय' नाटक में अञ्जना और पवनञ्जय के प्रेम, परिणय, वियोग, मिलन, पवनञ्जय और वरुण के युद्ध तथा पवनञ्जय का राज्याभिषेक सात अङ्कों में प्रस्तुत किया है । 'अञ्जनापवनञ्जय' की कथावस्तु का मूल स्रोत विमलसूरि के पउमचरिय तथा रविसेन के पद्मपुराण से लेकर हस्तिमल्ल ने इसे नाटक का रूप दिया । यह कथा हस्तिमल्ल द्वारा विरचित कथा और मूल कथा से किन-किन स्थानों पर भिन्न है, इसका भी विवेचन तीसरे अध्याय में ही किया गया है ।

'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में हस्तिमल्ल ने सुलोचना स्वयंवर का वर्णन किया है । सुलोचना के स्वयंवर के समय काशी नगर की सजावट, गंगातीर के उद्यान की

शोभा, सुलोचना का अतिशय रमणीय लावण्य, जयकुमार और सुलोचना के हृदय में परस्पर एक दूसरे के प्रति प्रेम का अङ्कुरण, स्वयंवर सभा में सुलोचना द्वारा जयकुमार के गले में स्वयं माल्यार्पण, अर्ककीर्ति द्वारा ईर्ष्यावशात् युद्ध की घोषणा, जयकुमार और अर्ककीर्ति का भीषण सङ्ग्राम, अर्ककीर्ति की पराजय के बाद भी काशी नरेश द्वारा पहले अपनी दूसरी कन्या का अर्ककीर्ति को प्रदान करना, तत्पश्चात् जयकुमार को सुलोचना का प्रदान किये जाने के बाद भरतवाक्य के साथ नाट्य समापन की सूचना को प्रदर्शित करते हुए विक्रान्तकौरवम् नाटक समाप्त होता है । इस नाटक की कथावस्तु का मूल स्रोत हस्तिमल्ल ने जिनसेन के आदिपुराण से ग्रहण किया है । हस्तिमल्ल की कथावस्तु और जिनसेन की कथावस्तु का अन्तर भी इसी अध्याय में बताया गया है ।

'मैथिलिकल्याणम्' नाटक में दशरथ पुत्र राम से मिथिला के जनक की पुत्री सीता के विवाह का वर्णन है । इस नाटक में राम और सीता का प्रेम, वियोग, स्वयंवर में राम द्वारा धनुष का तोड़ना, तदुपरान्त उचित साज-सज्जा एवं वातावरण में विवाह मनाया जाता है और 'मैथिलिकल्याणम्' नाटक समाप्त होता है । मैथिलिकल्याणम् नाटक के कथावस्तु का ग्रहण भी विमलसूरि के पउमचरिय और रविषेण के पद्मपुराण से ही किया गया है ।

'सुभद्रानाटिका' में विद्याधर राजा की बहन तथा कच्छराज की पुत्री सुभद्रा का प्रथम तीर्थङ्कर वृषभ के पुत्र राजा भरत के साथ विवाह का वर्णन है । राजा भरत का सुभद्रा को वेदीवन में देखना, उसके साथ वार्तालाप करना, राजा भरत का प्रेम व्यथित होना, सुभद्रा का प्रेम रोग से गम्भीर रूप से रुग्ण होना, नमि द्वारा सुभद्रा और भरत के विवाह की घोषणा और विवाह सम्पन्न करना, राजा भरत द्वारा प्रसन्नता के कारण विलास को मध्यमोत्तर खण्ड और चक्रसेन को पश्चिम खण्ड प्रदान करने का बड़ा ही मनोरञ्जक वर्णन महाकवि हस्तिमल्ल ने किया है । हस्तिमल्ल ने इस कथावस्तु को जिनसेन के हरिपुराण से ग्रहण करके परम्परागत संस्कृत नाटकों का रूप प्रदान किया है ।

चतुर्थ अध्याय में महाकवि हस्तिमल्ल विरचित उपलब्ध नाट्य-कृतियों में उल्लिखित पात्रों की सङ्ख्या अङ्कों की संख्या एवं श्लोकों की सङ्ख्या का प्रारम्भ में पृथक्-पृथक् तदुपरान्त समष्टिरूप से अङ्कों एवं श्लोकों की सङ्ख्या का विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

इसी अध्याय में हस्तिमल्ल प्रणीत एवं उपलब्ध कृतियों में प्रस्तुत प्रमुख पात्रों का मूल्याङ्कन साहित्यिक दृष्टि से किया गया है ।

विक्रान्तकौरवम् नाटक के नायक जयकुमार, नायिका सुलोचना, प्रतिनायक अर्ककीर्ति, आदर्शपात्र भरत एवं अकम्पन का मूल्याङ्कन किया गया है । अञ्जना - पवनञ्जय ' नामक नाटक में नायिका अञ्जना, और नायक पवनञ्जय तथा सुभद्रा नामक नाटिका में भी नायिका सुभद्रा और नायक भरत का मूल्याङ्कन किया गया है ।

हस्तिमल्ल द्वारा प्रस्तुत किये गये पात्रों में हमें वह सभी विशेषतायें परिलक्षित होती हैं, जिनका कि नाट्य साहित्य में विशेष महत्त्व और योगदान माना जाता है । हस्तिमल्ल के पात्रों के मूल्याङ्कन के समय उनके चरित, प्रेमासक्ति, वीरता, धैर्य, एवम् उनमें आरोपित अन्य गुणों का मूल्याङ्कन भी चतुर्थ अध्याय में ही किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पञ्चम अध्याय में कवि हस्तिमल्ल की कृतियों में आये हुए रस, गुण और रीति का एक अनुसन्धानात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

महाकवि हस्तिमल्ल श्रृङ्गार रस के कवि हैं । उनकी उपलब्ध कृतियों में अङ्गी रस श्रृङ्गार रस ही है । 'विक्रान्तकौरवम्' में तो नाटक के आरम्भ में ही स्पष्ट रूप से कहा गया है कि श्रृङ्गार और वीररस से श्रेष्ठ किसी नायक के गम्भीर चरित्र से आश्चर्य उत्पन्न करने वाला महाकवि हस्तिमल्ल विरचित नाटक का अभिनय

किया जाय । इनकी रचनाओं के अनुशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि हस्तिमल्ल शृङ्गार के अतिरिक्त वीर रस के भी सिद्ध कवि हैं । वीर रस की छटा 'विक्रान्त-कौरवम्' में जयकुमार और अर्ककीर्ति के युद्ध में तथा 'अञ्जनापवनञ्जय' में 'पवनञ्जय' और 'वरुण' के युद्ध में दर्शनीय है । शृङ्गार और वीर रस के अतिरिक्त इनके ग्रन्थों में अन्य रसों का भी स्थान-स्थान पर समुचित प्रयोग मिलता है । यथा करुण रस 'अञ्जनापवनञ्जय' में 6/11, रौद्ररस 'विक्रान्तकौरवम्', के 1/12, वीर रस विक्रान्त कौरवम् के 4/96, भयानक रस 'अञ्जनापवनञ्जय' के 6/7, वीभत्स रस विक्रान्त कौरवम् में 4/53, अद्भुत रस विक्रान्तकौरवम् के 2/21, शान्त रस 'सुभद्रा' के 1/1 आदि स्थलों पर प्राप्त होता है ।

पाँचवें अध्याय में ही स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों पर एक विहङ्गम दृष्टि डालते हुए हस्ति(मल्ल)की उपलब्ध कृतियों में गुणों का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इनकी कृतियों में मम्मटोक्त तीनों गुणों का विधिवत् परि-पाक हुआ । माधुर्य गुण के उदाहरण के रूप में विक्रान्तकौरवम् में 1/5, 1/6, 'अञ्जनापवनञ्जय' के 5/29, 6/23, तथा सुभद्रानाटिका के 1/2 आदि स्थल द्रष्टव्य हैं । ओजगुण के उदाहरण के रूप में विक्रान्तकौरवम् में 1/7, अञ्जनापवनञ्जय में 2/23, तथा सुभद्रा नाटिका में 1/7 आदि स्थल ध्यातव्य हैं । इसी प्रकार प्रसाद गुण के उदाहरण के रूप में विक्रान्त कौरवम् में 5/53, अञ्जनापवनञ्जय में 3/2, सुभद्रानाटिका

में 3/15 आदि पद्य दर्शनीय हैं ।

इसी अध्याय में रस, गुण के विवरण के पश्चात् हस्तिमल्ल की रीति पर भी दृष्टिपात करते हुए उन्हें वैदर्भी रीति का कवि भी स्वीकार किया गया है ।

प्रकृत शोध-प्रबन्ध के छठवें अध्याय में छन्द, अलङ्कार, भाषा-शैली एवं हस्तिमल्ल की उपलब्ध कृतियों में कथावस्तु, अर्थ-प्रकृति, कार्य-अवस्था, पञ्च-संधि नान्दी, प्रस्तावना, प्रवेशक विष्कम्भक आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

हस्तिमल्ल का सबसे प्रिय छन्द 'शार्दूलविक्रीडित' है । इस छन्द में हस्तिमल्ल ने लगभग 139 पद्यों की रचना की है तथा इसके अतिरिक्त कवि ने उपजाति, आर्या, वसन्ततिलका, शिखरिणी, स्रग्धरा, हरिणी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, पृथिवी आदि छन्दों का भी प्रभूत प्रयोग अपनी कृतियों में किया है । अलङ्कारों में हस्तिमल्ल की उपलब्ध कृतियों में अनुप्रास, उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा, उदात्त, स्मरण, भ्रान्तिमान् आदि अलङ्कारों का समुचित प्रयोग प्राप्त होता है, जिनका शोध प्रबन्ध के छठवें अध्याय में विधिवत् अनुशीलन किया गया है । नाट्य-शास्त्रीय लक्षणों का भी इसी अध्याय में समायोजन हुआ है ।

हस्तिमल्ल की भाषा-शैली कालिदास और भवभूति के पदचिन्हों पर चलती हुई प्रतीत होती है । हस्तिमल्ल की शैली में कालिदास और भवभूति की शैली का जो मञ्जुल समन्वय प्राप्त होता है उसको भी छठवें अध्याय में ही समाहित किया गया है ।

प्रकृत शोध प्रबन्ध के सातवें अध्याय में शोध-प्रबन्ध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है । हस्तिमल्ल की अद्भुत काव्य-कला, चमत्कारी प्रकृति-वर्णन, विस्मयावह प्रणय-चित्रण, अनुपम सौन्दर्य वर्णन, कुशल वस्तु-विन्यास आदि के आधार पर उनके वैशिष्ट्य का निरूपण किया गया है ।

# महाकवि हस्तिमल्ल की उपलब्ध नाट्य-कृतियों
का
# साहित्यिक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिये
प्रस्तुत

**शोध-प्रबन्ध**

अनुसन्धाता
**अरविन्द मिश्र**

निर्देशक
**डॉ० रामकिशोर शास्त्री**
व्याख्याता

**संस्कृत-विभाग**
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
१९९२

## प्राक्कथन

संस्कृत भाषा अक्षय ज्ञान का भण्डार है जिसमें भारतीय मनीषियों के सतत चिन्तन एवम् मनन की चरम परिणति देखने को मिलती है । विश्व संस्कृति पर भी संस्कृत भाषा की जो अमिट छाप परिलक्षित होती है, वह स्वयम् में अद्वितीय है । प्राणिमात्र के हित-चिन्तन का उपदेश संस्कृत में ही प्राप्त होता है । विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होता है, जो न केवल भारत को ही अपितु विश्वसंस्कृति को भी मानवता का सन्देश देता है । यही नहीं, ज्ञान, विज्ञान, कला, धर्म, दर्शन, व्याकरण, काव्यशास्त्र और आयुर्वेद इत्यादि पर जितना समृद्ध और पुरातन वाङ्मय संस्कृत में उपलब्ध होता है, उतना विश्व के किसी अन्य भाषा में नहीं ।

संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाने में वाल्मीकि, व्यास, भरतमुनि, पाणिनि, पतञ्जलि, भास, कालिदास, भवभूति, भट्टनारायण, मुरारि, विशाखदत्त, शूद्रक आदि महान् रचनाकारों का स्तुत्य एवं सफल योगदान रहा है । संस्कृत साहित्यागार को परिपूर्ण बनाने में जैन रचनाकारों का भी योगदान कम नहीं रहा है । जैनियों की इसी परम्परा में 'गोविन्दभट्ट' के पुत्र महाकवि हस्तिमल्ल का नाम उल्लेख्य है । श्री हस्तिमल्ल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवि हैं ।

इन्होंने कई रचनाएं की हैं किन्तु अनथक प्रयास के बावजूद मुझे कुल तीन ही रचनाएं उपलब्ध हो सकी हैं । जो प्रकृत शोध-प्रबन्ध की आधारशिला हैं ।

संस्कृत शोध परम्परा को पुष्पित एवं पल्लवित करने में पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विद्वानों का स्तुत्य योगदान रहा है, किन्तु शोधकार्य करने वालों ने प्राय: प्रख्यात एवं लोक-विश्रुत कवियों पर ही अनुसन्धान किया है । शोधकर्त्ताओं के भास, शूद्रक, कालिदास, भवभूति और बाणभट्ट जैसे विश्वप्रसिद्ध रचनाकारों पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित करने के कारण महाकवि हस्तिमल्ल जैसे महत्त्वपूर्ण कवि भी उपेक्षा के शिकार हो गये । फलत: महाकवि हस्तिमल्ल के कृतित्व के वैशिष्ट्य के ज्ञान से संस्कृत जगत् प्राय: अछूता ही रहा । प्रकृत शोध-प्रबन्ध संस्कृत जगत् का इसी कमी को दूर करने का एक लघुतम प्रयास है, जो विद्वज्जनों को कितना प्रभावित कर सकेगा, यह पूर्णतया भविष्य के गर्भ में है ।

पुण्यतोया गङ्गा, सदानीरा यमुना तथा अदृश्य सरस्वती की पवित्र त्रिवेणी पर स्थित भरद्वाज मुनि की तप:पूत-स्थली इलाहाबाद विश्वविद्यालय में, विश्वविद्यालयीय शिक्षा के आरम्भिक दिवसों में ही प्रारब्धवशात् वीणावादिनी के वरदपुत्र पूज्यपाद गुरुवर्य डॉक्टर श्री रामकिशोर शास्त्री का स्नेहिल सान्निध्य मिल गया । तब से अनवरत गुरुदेव के अगाध पाण्डित्य से नि:सृत ज्ञान-रश्मियों से स्व-

शेमुषी को परिष्कृत करता रहा, उन्हीं के अखण्ड ज्ञान पुञ्ज से विस्तीर्ण विमल आभा से संस्कृत भाषा में यत्किञ्चिद् योग्यता प्राप्त कर सका । उन्हीं महनीय गुरुओं की स्नेहिल छाया में पुष्पित एवं पल्लवित होता हुआ, प्रकृत शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर पाने में सक्षम हो सका । उनके प्रति कृतज्ञता के दो शब्द कहकर मैं गुरु ऋण से अनृण नहीं होना चाहता हूँ ।

संस्कृत जगत् के आज्ज्वल्यमान हीरक, महामहिम पूज्य गुरुवर्य प्रोफ़ेसर सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के पुत्रवत् वात्सल्य ने इस शोध कार्य के सम्पादन में मेरे लिए उत्प्रेरक का कार्य किया है जिनकी अमृतमयी वाणी का रसास्वादन करते हुए अनेक क्षेत्रों में थोड़ी बहुत योग्यता प्राप्त कर सका हूँ, उन पूज्यपाद गुरुवर्य प्रोफ़ेसर श्री श्रीवास्तव जी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना मेरी धृष्टता होगी क्योंकि उन्हीं की सद्भावना एवं सत्प्रेरणा से यह गुरुतर कार्य संभव हो सका है ।

मातृ-ऋण एवं पितृ-ऋण से कोई भी व्यक्ति अनृण नहीं हो सकता है । जिस गरीयसी ममतामयी माँ श्रीमती श्यामा देवी एवं जिस महनीय पितृचरण पं० श्री शालिग्राम मिश्र, प्रधानाचार्य श्री नेहरू इण्टरमीडिएट कालेज, रोही, वाराणसी के स्नेहिल वात्सल्य में जन्म से लेकर अद्यावधि मेरा लालन-पालन हुआ और जिन्होंने

जीवन के अनेक झंझावातों को सहन करते हुए न केवल मेरी सुषमा में ही अपने सुखों का अनुभव किया अपितु उच्च अध्ययन के लिए सर्वथा प्रेरणा और तद्निमित्त व्यवस्था प्रदान किया, उन माता-पिताजी से जन्म-जन्मान्तर तक ऋण मुक्त होना असंभव है। इसी के साथ मैं अपनी पाणिगृहीती भार्या श्रीमती सोमा देवी को भी धन्यवाद देने की औपचारिकता का निर्वाह कर रहा हूँ, जिसके अभाव में अपने को अनृण नहीं मान सकता।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने में डॉक्टर रामवर्ण शुक्ल, प्रवक्ता इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद एवं चिकित्सा जगत् के प्रख्यातनामा डॉक्टर सुरेन्द्र प्रसाद पाण्डेय के अनन्य सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करना तो मेरी धृष्टता ही होगी।

माता-पिता एवं आचार्य के अतिरिक्त प्रकृत शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने में सुख-दुःख के साथी, सहपाठी, मित्रद्वय श्री रविराज प्रताप मल्ल और श्री अनिल कुमार पाण्डेय के अनन्य सहयोग का आभारी हूँ। समवयस्क अग्रज के रूप में श्री बब्बन राय जी के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मुझे प्रोत्साहन देकर कृत-कृत्य किया है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत-विभाग के स्नातकोत्तरोत्तरार्द्ध के प्रगल्भ छात्र

शिवाकान्त द्विवेदी, श्याम सुन्दर तिवारी एवं मनोष पाण्डेय का भी विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने अपने अनुजत्व का सम्यग्रूपेण निर्वाह किया है ।

अन्त में, श्री राम बरन यादव को टङ्कण कार्य हेतु धन्यवाद देते हुए समस्त ज्ञाताज्ञात मित्रों के प्रति आभार व्यक्त करता हुआ प्रकृत शोध-प्रबन्ध को मैं नीर क्षीर विवेक हेतु विद्वत्समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ ।

गुरुपूर्णिमा, 14 जुलाई, 1992.

विनयावनत
अरविन्द मिश्र

अरविन्द मिश्र
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

# विषय-सूची

षष्ठ अध्याय | पृष्ठ



सप्तम अध्याय

# प्रथम अध्याय

## जीवन परिचय एवं कर्तृत्व

## प्रथम-अध्याय

अखिल विश्व को अपने समृद्ध साहित्य, सुसंयत व्याकरण एवम् अविच्छिन्न चिन्तन परम्परा द्वारा चमत्कृत कर देने वाली संस्कृत-भाषा आज के वैज्ञानिक युग में भी उतनी ही प्रासङ्गिक है, जितनी आज से सहस्राब्दियों पूर्व थी। वस्तुत: संस्कृत भाषा ही समग्र भारतीय भाषाओं [द्रविड़ी को छोड़कर] का उत्स है, जिससे निकलने के कारण ही विभिन्न भाषाओं का प्रवाह सतत गतिमान् बना रहता है। संस्कृत की यही जीवन्तता ही समग्र भाषाओं का आधार स्तम्भ है। ऋग्वेद काल से लेकर अद्यावधि इसकी अविरल धारा प्रवाहित हो रही है। भारतीय मनीषियों ने व्याकरण के नियमों द्वारा परिष्कृत कर जिस भाषा को साहित्य चिन्तन के माध्यम के रूप में अङ्गीकार किया, उसे ही संस्कृत नाम दिया गया। 'विद्वांसो हि देवा:' - विद्वान् ही देवता होते हैं - इसी आधार पर संस्कृत भाषा को देव-भाषा की संज्ञा से अभिहित किया गया है। संस्कृत शब्द 'सम्' पूर्वक 'कृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है - संस्कार की गयी भाषा। इस परिष्कृत भाषा के दो रूप हमें देखने को मिलते हैं - 1. वैदिक संस्कृत एवम् 2. लौकिक संस्कृत।

लौकिक संस्कृत में काव्य-परम्परा का श्रीगणेश महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित 'रामायण' से माना जाता है। इसीलिये 'रामायण' को संस्कृत वाङ्मय में

'आदिकाव्य' की संज्ञा से अभिहित किया गया है । इस काव्य-परम्परा को साहित्य-शास्त्रियों ने श्रव्य तथा दृश्य के भेद से दो भागों में विभाजित किया है ।[1] श्रव्य-काव्य धारा के अन्तर्गत ऐसे काव्यों की गणना की जाती है, जिनका मञ्चन न किया जा सके । जिन काव्यों का केवल श्रवण और मनन ही किया जाय, उन्हें ही श्रव्य-काव्य की कोटि में रखा जाता है ।

अभिनय के माध्यम से जिस काव्य का प्रदर्शन किया जा सके, उसे दृश्य-काव्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है ।[2] दृश्य-काव्य का ही दूसरा नाम रूपक है । दृश्य-काव्य को रूपक इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसका प्रदर्शन करने वाले नट इसमें चित्रित चरितों के रूपों का अपने ऊपर आरोप कर लेते हैं ।[3]

---

1. दृश्य श्रव्यत्व भेदेन पुन: काव्यं द्विधा मतम् ।

साहित्यदर्पण, षष्ठ:परिच्छेद, पृ0 359.

2. दृश्यं तत्राभिनेयं । साहित्यदर्पण, षष्ठ: परिच्छेद, पृ0 359.

3. तद्रूपारोपात्तु रूपकम् ।

साहित्यदर्पण, षष्ठ: परिच्छेद, पृ0 359.

संस्कृत साहित्य के मान्य समालोचकों ने रूपक के दश[1] भेद बताये हैं, जो अधोलिखित हैं -

| | |
|---|---|
| 1. नाटक | 6. डिम |
| 2. प्रकरण | 7. ईहामृग |
| 3. भाण | 8. अङ्क |
| 4. व्यायोग | 9. वीथी |
| 5. समवकार | 10. प्रहसन |

---

1\. क. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।

ईहामृगाङ्कवीथ्यःप्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥

साहित्यदर्पण, षष्ठः परिच्छेद, पृ0 361.

ख. नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः ।

व्यायोग समवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति॥

दशरूपकम्, प्रथम प्रकाश, पृ0 7.

दृश्य काव्योत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक विचारधाराएं प्रचलित हैं, जिनमें सबसे प्राचीन विचारधारा भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय से प्राप्त होती है । इसके अनुसार सांसारिक मनुष्यों को खिन्न देखकर इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्माजी से सम्पूर्ण मानव जाति के मनोविनोद के साधन की सृष्टि करने की प्रार्थना किया । इन्द्र आदि देवताओं की प्रार्थना सुनकर प्रजापति ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस का ग्रहण करके नाट्य वेद नामक पञ्चम वेद की रचना की ।[1] नाट्य वेद की सृष्टि करने के पश्चात् ब्रह्माजी ने देवराज इन्द्र से कहा - अब आप देवताओं के द्वारा इसको प्रयोग करवाइये ।[2] ब्रह्मा जी के आदेश को सुनकर इन्द्र ने कहा - हे भगवन् ! नाट्य वेद के

---

1. जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्योगीतमेव च ।

   यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥

   नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय, श्लोक सं० 17.

2. उत्पाद्य नाट्यवेदं तु ब्रह्मोवाच सुरेश्वरम् ।

   इतिहासो मया सृष्टःस सुरेषु नियुज्यताम् ॥

   वही, श्लोक सं० 19.

ग्रहण करने, धारण करने और प्रयोग करने की सामर्थ्य देवताओं में नहीं है । वेद के गुह्य रहस्यों के ज्ञाता और उत्तम व्रतों के पालन करने वाले ऋषिगण ही नाट्य वेद के ग्रहण, धारण तथा प्रयोग की सामर्थ्य रखते हैं ।[1] इन्द्र के वचनों को सुनने के बाद ब्रह्माजी ने भरतमुनि को नाट्य वेद के प्रयोग के लिए आदिष्ट किया ।[2] प्रारम्भ में भारती, सात्त्वती और आरभटी वृत्तियों में इसका प्रयोग हुआ ।[3] कालान्तर

---

1. तच्छ्रुत्वा वचनं शक्रो ब्रह्मणा यदुदाहृतम् ।
   प्राञ्जलि प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम् ॥ ना०शा०, प्र०अ०, श्लोक सं० 21.

   ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे चास्य सत्तम ।
   अशक्ता भगवन् देवा अयोग्यानाट्यकर्मणि ॥ वही, श्लोक सं० 22.

   य इमे वेदगुह्यज्ञा ऋषयः संश्रितव्रता ।
   एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगे धारणे तथा ॥ वही, श्लोक सं० 23.

2. श्रुत्वा तु शक्र वचनं मामाहाम्बुजसम्भवः ।
   त्वं पुत्रशतसंयुक्तः प्रयोक्ताऽस्य भवानघ ॥ वही, श्लोक सं० 24.

3. भारतीं सात्वतीं चैव वृत्तिमारभटीं तथा ।
   समाश्रितः प्रयोगस्तु प्रयुक्तो वै मया द्विजः ॥ वही, श्लोक सं० 41.

में कैशिकी वृत्ति भी इसमें जोड़ ली गयी । कैशिकी वृत्ति का प्रदर्शन स्त्री-पात्रों के बिना सम्भव ही नहीं था अतः ब्रह्माजी ने भरतमुनि के निवेदन पर अप्सराओं को उत्पन्न किया ।[1] तत्पश्चात् राक्षसों के विघ्न आदि का निवारण करने के बाद नाटक निर्विघ्न प्रारम्भ हुआ । सर्वप्रथम जिस नाटक का अभिनय किया गया वह 'त्रिपुरदाह'[2] नामक डिम तथा 'समुद्रमन्थन' नामक समवकार था ।[3] कालान्तर में नाट्य-साहित्य लोक में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ । आचार्य भरतमुनि के अनुसार

---

1. दीयतां भगवन् द्रव्यं कैशिक्याःसम्प्रयोजकम् ।
   मृदङ्गहारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका ॥ ना०शा०, प्र०अ०, श्लोक सं० 44.

   अशक्या पुरुषैः सा तु प्रयोक्तुं स्त्रीजनादृते ।
   ततोऽसृजन्महातेजा मनसाऽप्सरसो विभुः ॥ वही, श्लोक सं० 46.

2. पूर्वरङ्गे कृते पूर्वं तत्राय द्विजसत्तमाः ।
   तथा त्रिपुरदाहश्च डिमसंज्ञः प्रयोजितः ॥ वही, च०अ०, श्लोक सं० 10.

3. तस्मिन्समवकारे तु प्रयुक्ते देवदानवाः ।
   हृष्टाः समभवन्सर्वे कर्मभावानुदर्शनात् ॥ वही, श्लोक सं० 4.

तो कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है, जो नाट्य साहित्य में उपलब्ध न हो । कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो नाटकों में उपलब्ध न हो ।[1]

संस्कृत साहित्य जगत् में समय-समय पर अनेक रचनाकार हुए, जिन्होंने अपने कर्तृत्व से संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने में प्रभूत योगदान दिया । नाट्य-साहित्य के गगनाङ्गण में महाकवि भास, कालिदास, भवभूति, भट्टनारायण, मुरारि, विशाखदत्त, शूद्रक आदि तो अत्यन्त चमकते हुए सितारे हैं । इन नाटककारों ने एक से बढ़कर एक नाटक प्रस्तुत कर संस्कृत साहित्य के इस अवयव को अत्यधिक विस्तृत एवं समृद्ध बनाया । इसी विस्तार और समृद्धि को आगे बढ़ाने के क्रम में जैन-साहित्य का भी चिरस्मरणीय योगदान रहा है । जिन जैन-साहित्यकारों की लेखनी का सम्बल पाकर संस्कृत-साहित्य समृद्धि के शिखर पर आरूढ़ हुआ, उनमें महाकवि हस्तिमल्ल का नाम उल्लेखनीय है ।

---

1. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥
नाट्यशा०, प्र०अ०, श्लोक सं० 117.

महाकवि हस्तिमल्ल के जीवन, वंश, गुरू, निवासस्थान एवं कृतियों आदि के सम्बन्ध में आयासपूर्वक जो जानकारी उपलब्ध हुई है, उसे निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

महाकवि हस्तिमल्ल के पिता का नाम 'गोविन्दभट्ट' था। उनके नाम के आगे सम्मान को प्रदर्शित करने वाले विरूद 'भट्टार' या 'भट्टारक' अथवा 'स्वामिन्' या 'भट्ट' शब्द का उल्लेख मिलता है, जिससे यह कहा जा सकता है कि 'गोविन्द' एक विद्वान् व्यक्ति थे। भट्टार, भट्टारक, भट्ट या स्वामिन् विद्वता के परिचायक हैं। जैसा 'मैथिलिकल्याणम्' की भूमिका में प्रशंसात्मक सन्दर्भ से सिद्ध भी होता है।[1] 'विक्रान्तकौरवम्' के प्रथम अङ्क के 41वें श्लोक से यह प्रमाणित होता है कि हस्तिमल्ल वत्सगोत्रीय थे।[2] महाकवि हस्तिमल्ल ब्राह्मण थे।[3] ऐसा

---

1. निखिलशास्त्रतीर्थावगाहपवित्रीकृतधिषणस्य, मध्यमलोकधिषणस्य, निःशेषनिपीतधर्मामृतरसायनस्य, सरस्वतीविस्मयनीयोपायनस्य ॥ १ ॥ भट्टारगोविन्दस्वामिनः ----- । 'मैथिलिकल्याणम्'

2. श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्ट -
   प्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात् ।
   नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण
   श्लोकैः शतैस्सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥ विक्रान्तकौरवम् प्र०अ०श्लोक सं०41.
3. 'विक्रान्तकौरवम्', पृ० 6.

प्रतीत होता है कि आरम्भ में 'गोविन्द भट्ट' जैन धर्मावलम्बी नहीं थे, किन्तु कालान्तर में 'समन्तभद्र' के 'देवागम सूत्र' (देवागम स्तोत्र) को सुनकर 'गोविन्द' ने जैन धर्म ग्रहण कर लिया था। जैसा कि 'विक्रान्तकौरवम्' से स्पष्ट होता है।[1] 'गोविन्दभट्ट' दक्षिण भारत के निवासी थे। इनको छः पुत्र थे। ये पुत्र स्वर्णयाक्षी देवी के प्रसाद से उत्पन्न हुए थे।[2] इनका क्रम इस प्रकार था -

| | |
|---|---|
| 1. श्री कुमार कवि | 4. उदयभूषण |
| 2. सत्यवाक्य | 5. हस्तिमल्ल |
| 3. देवरवल्लभ | 6. वर्धमान।[3] |

---

1. गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान्मिथ्यात्ववर्जितः।
   देवागमनसूत्रस्य श्रुत्या सद्दर्शनान्वितः॥
   विक्रान्तकौरवम्, ग्रन्थकारस्यप्रशस्ति, पृष्ठ 275.

2. दक्षिणात्या सञ्जाता स्वर्णयक्षीप्रसादतः। वही, पृष्ठ 275.

3. श्रीकुमारकविः सत्यवाक्यो देवरवल्लभः॥
   उद्यद्भूषणनामा च हस्तिमल्लाभिधानकः।
   वर्धमानकविश्चेति षड्भूवन् कवीश्वराः॥ वही, पृष्ठ 275-276.

अपने पिता के पुत्रों में महाकवि हस्तिमल्ल का क्रम[1] पाँचवें स्थान पर था। हस्तिमल्ल से छोटा मात्र एक भाई था, जिसका नाम था - वर्धमान। इस प्रकार महाकवि हस्तिमल्ल अपने चार भाइयों के अनुज तथा एक भाई के अग्रज थे।[2] गोविन्द-भट्ट के सभी पुत्र श्रेष्ठ कवि थे, जैसा कि 'विक्रान्तकौरवम्' में उल्लिखित 'षड्भूवन् - कवीश्वराः' से स्पष्ट होता है। महाकवि हस्तिमल्ल ने अनेक विरुद धारण किये थे। यथा - सरस्वतीस्वयंवरवल्लभ, महाकवितल्लज तथा सूक्तिरत्नाकर।[3]

---

1. 'अञ्जनापवनञ्जय सुभद्रा नाटिका च', पृष्ठ 63.

2. इति श्रीगोविन्दभट्टस्वामिनः सूनुना श्रीकुमारसत्यवाक्यदेवरवल्लभोदयभूषणानामार्यमिश्राणामनुजेन् कवेर्वर्द्धमानस्याग्रजेन कविना हस्तिमल्लेन विरचितः कौतुकबंधो नाम षष्ठोऽङ्कः समाप्तः।

   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 273.

3. अस्ति किल सरस्वतीस्वयंवरवल्लभेन भट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना हस्तिमल्ल नाम्ना महाकवितल्लजेन विरचितं विक्रान्तकौरवं नाम रूपकम् इति।

   वही, प्र०अ०, पृष्ठ 4.

हस्तिमल्ल के ज्येष्ठभ्राता सत्यवाक्य ने हस्तिमल्ल को 'कवितासाम्राज्यलक्ष्मीपति' कहकर उनकी बड़ी प्रशंसा की है ।[1] हस्तिमल्ल को 'राजाबलि-कथा' के रचनाकार ने 'उभयभाषाचक्रवर्ती' बताया है । 'उभयभाषाचक्रवर्ती' से तात्पर्य यह है कि दो भाषाओं का ज्ञान होना । उभयभाषा के अन्तर्गत 'कर्नाटक' और 'संस्कृत' भाषाओं का उल्लेख किया जा सकता है । हस्तिमल्ल द्वारा विरचित कर्नाटक भाषा में 'पूर्वपुराण' नाम का एक ग्रन्थ भी प्राप्त होता है, जिसकी पुष्पिका वाक्य में हस्तिमल्ल ने 'उभयभाषाचक्रवर्ती' होने का उल्लेख स्वयं किया है ।[2] इसी को 'आदि-पुराण' भी कहते हैं ।

---

1. किं वीणागुणझंकृतैः किमथवा सान्द्रैर्मधुस्यन्दिभि-

   र्विभ्राम्यत्सहकारकोरकशिखाकर्णावतंसैरपि ।

   पर्याप्ताः श्रवणोत्सवाय कवितासाम्राज्यलक्ष्मीपते

   सत्यं नस्तव हस्तिमल्ल सुभगास्तास्ताः सदा सूक्तयः ॥

   'मैथिलिकल्याणम्'

2. इत्युभाषाकविचक्रवर्तिहस्तिमल्लविरचितपूर्वपुराणमहाकथायांदशमपर्वः ।

   ॥ आदिपुराण ॥

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' के समाप्त होने पर एक प्रशस्ति भी दी है। जिसमें कवि ने समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन, वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्र[1] का नाम लेकर यह प्रतिपादित किया है कि उन्हीं गुणभद्रस्वामी की शिष्य परम्परा की कई कड़ी व्यतीत हो जाने पर 'गोविन्दभट्ट' नामक विद्वान् पैदा हुए, किन्तु इन शिष्यों की परम्परा का तात्पर्य यह नहीं मानना चाहिए कि 'गोविन्द-भट्ट' उक्त मुनि-परम्परा के कोई साधु या मुनि थे। हस्तिमल्ल ने गुरु-परम्परा का उल्लेख करके अपने पिता का परिचय मात्र दिया है।

'हस्तिमल्ल' विषयक एक प्रश्न यहाँ पर उठना स्वाभाविक है कि 'हस्तिमल्ल'

---

1. श्लोकाः पुरुषाः यस्य सूक्तिभिर्भूषिताः सदा ।
   गुणभद्रगुरोस्तस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ॥

   यस्य वाक्सुधया भूमावभिषिक्ता जिनेश्वराः ।
   तच्छिष्यानुक्रमेयातेऽसङ्ख्येये विश्रुतो भुवि ॥

विक्रान्तकौरवम् ग्रन्थकारस्यप्रशस्ति, पृष्ठ 275.

गृहस्थ थे या नहीं ? इस सम्बन्ध में उनके गृहस्थ[1] होने का ही प्रमाण उपलब्ध होता है । 'ब्रह्मसूरि' अथवा 'नेमिचन्द्र' जो 'प्रतिष्ठा-तिलक' के लेखक हैं तथा जो महाकवि 'हस्तिमल्ल' के परिवार से भी सम्बद्ध थे, वे बताते हैं कि 'हस्तिमल्ल' को एक पुत्र था, जिसका नाम था 'पार्श्वपण्डित'[2] किन्तु कुछ विद्वानों का 'राजाबलि कथा'[3] के आधार पर यह मत भी है कि 'हस्तिमल्ल' को केवल एक ही नहीं वरन् कई पुत्र थे, जिनमें 'पार्श्वपण्डित' सबसे बड़ा था, तथा उसका 'लोकापालार्य' नामक एक शिष्य था । किन्हीं कारणों से 'हस्तिमल्ल' का ज्येष्ठ पुत्र 'पार्श्वपण्डित' छत्रत्रयपुरी[4]

---

1. परवादिहस्तिनां सिंहो हस्तिमल्लस्तदुद्भवः ।

   गृहाश्रमी बभूवार्हच्छासनादिप्रभावकः ॥

   अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृष्ठ 8.

2. Brahmasuri (or Namichandra) the Author of 'Pratistha-Tilak', who belonged to the family of Hastimalla, tell us that Hastimalla had a son by name 'ParsvaPandita'.

   Ibid, p. 8.

3. वही ।

4. के० भुजबलि शास्त्री का अनुमान है कि छत्रत्रयपुरी शायद द्वारसमुद्र (हलेबिड) हो। यह होयसल राजाओं की राजधानी रही है । वही, पृष्ठ 64.

जिनके नाम इस प्रकार हैं -

1. चन्द्रप,

2. चन्द्रनाथ, एवम्

3. वैजय्य ।

इनमें से 'चन्द्रनाथ' अपने परिवार के साथ हेमचल (होन्नूर) में जा बसा । 'चन्द्रनाथ' के दो अन्य भाई अन्यत्र चले गये । 'ब्रह्मसूरि', 'चन्द्रप' का पौत्र था, जो कि स्वयं 'हस्तिमल्ल' का पौत्र था ।[1] 'चन्द्रप' के पुत्र 'विजयेन्द्र' तथा 'विजयेन्द्र' के पुत्र 'ब्रह्मसूरि' थे । जिनके द्वारा विरचित 'प्रतिष्ठा-तिलक' और 'त्रिवर्णाचार' नामक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं ।[2]

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृष्ठ 9.

2. वही, पृष्ठ 64.

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर हस्तिमल्ल का वंशवृक्ष इस प्रकार बनता है -

महाकवि 'हस्तिमल्ल' के जिन अन्य पाँच भाइयों (क. श्री कुमार कवि, ख. सत्यवाक्य, ग. देवरवल्लभ, घ. उदयभूषण, ड. वर्धमान्) का उल्लेख प्राप्त होता है, उनके विषय में हस्तिमल्ल की कृतियों का अनुशीलन करने के पश्चात् ही ईषद् ज्ञान सम्भव हो पाता है। 'हस्तिमल्ल' ने अपने 'मैथिलिकल्याणम्' नामक ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि उनके बड़े भाई 'सत्यवाक्य' ने 'श्रीमतिकल्याण'[1] नामक ग्रन्थ

---

1. एवं खल्वसौ श्रीमतिकल्याणप्रभृतीनां कृतीनां कर्त्ता सत्यवाक्येन सूक्तिरसावर्जित-चेतसा ज्यायसा कनीयानप्युपश्लोकितः। मैथिलिकल्याणम्।

की रचना की थी, किन्तु यह दुर्भाग्य ही रहा है कि अभी तक 'श्रीमतिकल्याण' नामक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका है और न ही किसी ऐसे अन्य ग्रन्थ का ही प्रमाण प्राप्त होता है, जिससे यह प्रमाणित हो कि 'सत्यवाक्य' ने किसी ग्रन्थ का प्रणयन किया था ।

'श्रीमतिकल्याण' का उल्लेख प्राप्त होने के पश्चात् यह जिज्ञासा भी होती है कि 'श्रीमतिकल्याण' किस प्रकार का ग्रन्थ रहा होगा ? इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि 'श्रीमतिकल्याण' नाटक ही रहा होगा । इसको नाटक कहने का आधार यह है कि हस्तिमल्ल विरचित 'मैथिलिकल्याण' और 'श्रीमतिकल्याण' में नाम की समानता के कारण 'श्रीमतिकल्याण' को भी नाटक कहा जा सकता है ।

'श्रीकुमारकवि' का भी एक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है, जिसका नाम है 'आत्म-प्रबोध'[1] । यद्यपि महाकवि हस्तिमल्ल के 'विक्रान्तकौरवम्' के अन्त में 'ग्रन्थकारस्य-प्रशस्तिः' शीर्षक के अन्तर्गत 'श्रीकुमारकवि' का वर्णन हस्तिमल्ल के भाई के रूप में प्राप्त होता है तथापि अभी तक यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृष्ठ 65.

है कि 'आत्म-प्रबोध' के रचनाकार श्रीकुमारकवि महाकवि हस्तिमल्ल के भाई ही हैं या कोई और ?

कतिपय विद्वानों ने 'गणरत्नमहोदधिका'[1] जिसका रचनाकाल वि0सं0 1197 माना जाता है, के रचनाकार के रूप में हस्तिमल्ल के बड़े भाई वर्धमान के नाम का उल्लेख करने का प्रयास किया है, परन्तु इसका विवेचन जब 'गणरत्नमहोदधिका' के आलोक में किया जाता है, तो स्पष्ट होता है कि 'गणरत्नमहोदधिका' का रचनाकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय का था और 'सिद्धराज जयसिंह' की प्रशंसा में काव्य का सृजन किया था ।[2]

दिगम्बर सम्प्रदाय पर 'गणरत्नमहोदधिका' में किये गये कटाक्ष से भी सिद्ध होता है कि 'गणरत्नमहोदधिका' वर्धमान द्वारा रचित नहीं थी । यदि 'गणरत्नमहोदधिका' 'वर्धमान' की रचना होती तो वे अपने ही सम्प्रदाय ‡दिगम्बर‡ पर

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृष्ठ 65.

2. अकल्पितप्राणसमासमागमा मलीमसाङ्गा धृतभैक्ष्यवृत्तयः ।
   निर्ग्रन्थतां त्वत्परिपन्थिनो गता जगत्पते किंत्वजिनावलम्बिनः ॥

   गणरत्नमहोदधिका, पृष्ठ 164.

ऐसा कटाक्ष क्यों करते ? ऐसा प्रतीत होता है कि 'गणरत्नमहोदधिका' का कर्त्ता 'हस्तिमल्ल' से पहले हुआ था । शेष अन्य भाइयों के विषय में कोई उल्लेख अभी तक नहीं मिल सका है ।

दिगम्बर जैन ग्रन्थकारों में महाकवि 'हस्तिमल्ल' का विशेष स्थान है, तो भी उनके नामकरण के सन्दर्भ में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं । 'हस्तिमल्ल' की रचनाओं के अनुशीलन के अनन्तर ज्ञात होता है कि 'हस्तिमल्ल' ने एक मत्त हाथी से युद्ध में साफल्य प्राप्त किया था । यह हाथी पाण्ड्यराजा द्वारा सरण्यापुर में 'हस्तिमल्ल' के ऊपर छोड़ा गया था । 'हस्तिमल्ल' ने क्रुद्ध हाथी को अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा वश में किया था । 'विक्रान्तकौरवम्' के प्रथम अङ्क के 41वें श्लोक के अनुसार - 'हस्तिमल्ल' ने पाण्ड्यराजा के दरबार में प्रभूत सम्मान प्राप्त किया था । यह सम्मान हाथी के साथ युद्ध करने के कारण 100 पद्यों, जो 'हस्तिमल्ल' के सम्मान में थे, के साथ प्राप्त हुआ था ।[1]

---

1. श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्ट-
   प्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात् ।
   नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण
   श्लोकैः शतैस्सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥

   विक्रान्तकौरवम्, प्र0अ0, पृष्ठ 35.

'हस्तिमल्ल' - यह कवि का उपनाम प्रतीत होता है । स्फुट रूप से यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि हाथी से भिड़ने के पूर्व 'हस्तिमल्ल' का वास्तविक नाम क्या है ? अय्यपार्य ने भी अपने 'जिनेन्द्रकल्याणकम्' में इस घटना का निर्देश किया है ।[1] इसमें यह भी बताया गया है कि सरण्यापुर में पाण्ड्यनरेश ने हस्तिमल्ल के ऊपर उनके सम्यक्त्व की परीक्षा के लिए हाथी छोड़ा था तथा जब हाथी ने उस पर आक्रमण किया तो उसने उसे एक पद्य के द्वारा वश में कर लिया । केवल हाथी को ही नहीं अपितु एक 'शैलूष' जो कि जैन भिक्षु अपने को कहता था, को भी वश में कर लिया । इस प्रकार उसे 'हस्तिमल्ल' या 'मदेभमल्ल' - यह उपाधि प्राप्त हुई ।[2]

---

1. एम0 कृष्णामाचारी, क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ 641.

2. सम्यक्त्वं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे
चास्मिन् पाण्ड्यमहेश्वरेण कपटाद्धन्तुं स्वमभ्यागते ।
शैलूषं जिनमुद्रधारिणमपास्यासौ मदध्वंसिना
श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः ॥

मैथिलिकल्याण की भूमिका में उद्धृत ।

नेमिचन्द्र अथवा ब्रह्मसूरि के 'प्रतिष्ठातिलक' से यह ज्ञात होता है कि विरोधी रूप हाथियों को कुचलने में हस्तिमल्ल शेर थे। इससे यह सन्देह उत्पन्न होता है कि हस्तिमल्ल ने यह अद्भुत् नाम मत्त हाथी को वश में करने के फलस्वरूप नहीं, बल्कि सार्वजनिक वाद-विवादों में प्रसिद्ध विवादियों को परास्त करने के कारण पाया था।[1] अब प्रश्न उठता है कि 'सरण्यापुर' कौन सा स्थान है? जहाँ पर हाथी के साथ युद्ध हुआ था।

सरण्यापुर के सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से कुछ उल्लेख प्राप्त नहीं होता है तदपि सरण्यापुर का दूसरा नाम 'संततगम' होने की संभावना है अथवा पाण्ड्यराजा हस्तिमल्ल के साथ कहीं अन्यत्र गये होंगे वहाँ की यह घटना रही होगी। ऐसे भी प्रमाण प्राप्त होते हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि महाकवि हस्तिमल्ल अपने भाई-बान्धवों के साथ जैन-मन्दिरों से युक्त संततगम नामक स्थान पर रहते थे तथा उस

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृष्ठ 8.

समय कर्नाटक देश की रक्षा पाण्ड्यनरेश कर रहे थे ।[1] यह संततगम कौन सा स्थान है ? इसका भी निर्णय अभी तक नहीं हो सका है ।

महाकवि हस्तिमल्ल ने अपनी कृतियों में कई स्थानों पर पाण्ड्यनरेश का उल्लेख किया है । हस्तिमल्ल उनके कृपापात्र थे तथा पाण्ड्यनरेश की राजधानी में निवास करते थे । राजा भी हस्तिमल्ल का बहुत सम्मान करता था । महाकवि हस्तिमल्ल ने कहीं पर भी पाण्ड्यनरेश के नाम का उल्लेख नहीं किया है । केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे पाण्ड्यदेश के राजवंश से साम्य रखते थे, किन्तु कर्नाटक में राज्य करते थे ।[2] उस दक्षिणी कर्नाटक के 'कार्कल' नामक स्थान पर पाण्ड्य राजवंश ही राज्य कर रहा था । 'पाण्ड्यराजवंश' जैन-धर्म का अनुयायी था और इस वंश में अनेक विद्वान्, कला-कुशल एवं यशस्वी राजा उत्पन्न हुए । 'भव्यानन्द'[3] नामक

---

1. श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे निजभुजादण्डावलम्बीकृतं

कर्णाटावनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति ।

तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिराप्तैः समं

जैनागार समेतसंततगमे ॥१॥ श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥

अञ्जनापवनञ्जय, सप्तम अङ्क, पृष्ठ 119.

2. वही, भूमिका, पृ0 66.

3. यह ग्रन्थ 'ऐ0 पन्नालाल सरस्वती भवन' में उपलब्ध है ।

एक सुभाषित ग्रन्थ प्राप्त होता है, जिसके कर्त्ता ने भी अपने को 'पाण्ड्यलक्ष्मीपति' लिखा है, किसी नाम विशेष का उल्लेख नहीं किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि ये (पाण्ड्यलक्ष्मीपति) हस्तिमल्ल के आश्रयदाता राजा के ही राजवंश के परवर्ती कोई अन्य जैन राजा थे, जिन्होंने सम्भवत: शक सं0 1353 (वि0सं0 1488) में कार्कल के 'बाहुबलि प्रतिमा' की प्रतिष्ठा करायी होगी ।[1]

यद्यपि पाण्ड्यमहीश्वर की राजधानी के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है कि वहाँ कहाँ थी ? तथापि 'अञ्जनापवनञ्जय' के 'श्रीमत्पाण्ड्य-महीश्वरेण ---' पद से प्रतीत होता है कि संततनम या संततगम नामक स्थान में हस्तिमल्ल अपने कुटुम्ब सहित जा बसे थे, अत: यही उनकी राजधानी रही होगी । संततगम या संतरनम कहाँ पर था ? यह अभी निश्चित नहीं किया जा सका है । हाथी को परास्त करने की घटना 'सरण्यापुर' में घटित हुई थी और वहाँ की राज-सभा में ही हस्तिमल्ल को सत्कृत किया गया था । इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि सरण्यापुर और संततगम या संतरनम एक ही रहा होगा ।

---

1. के0 भुजबलिशास्त्री द्वारा सम्पादित, 'प्रशस्ति-संग्रह', पृष्ठ 19.

ब्रह्मसूरि ने स्व-विरचित 'प्रतिष्ठासारोद्धार' में हस्तिमल्ल के पिता गोविन्दभट्ट का निवास-स्थान 'गुड्डिपत्तन' बतलाया है, तथा पं० के० भुजबलि-शास्त्री ने इसे ‡गुडिपत्तन‡ तंजौर का 'दीपंगुड्डि' नामक स्थान माना है, जो पाण्ड्यदेश में है । कर्नाटक का राज्य प्राप्त होने पर या तो स्वयं ही या उनके वंश का कोई अन्य वंशज कर्नाटक में रहने लगा होगा और उसके प्रीति के कारण हस्तिमल्ल कर्नाटक की राजधानी में रहने लगे होंगे ।

ब्रह्मसूरि द्वारा कहे गये 'गुड्डिपत्तन' का ही वर्णन महाकवि हस्तिमल्ल ने अपने 'विक्रान्त-कौरवम्' की 'ग्रन्थकारस्य-प्रशस्ति' में 'दीपंगुड्डि' नाम से किया है । उसमें वहाँ के वृषभजिन के मन्दिर का वर्णन है, जिनके सिंहासन पर या पाद-पीठ पर पाण्ड्यराजा के मुकुट की आभा पड़ती थी । वृषभजिन के इस मन्दिर के निर्माता के रूप में रामचन्द्र के पुत्र कुश और लव का उल्लेख प्राप्त होता है ।[1]

---

1. श्रीमद्दीपंगुडीशः कुशलवरचितास्थानपूज्यो वृषेशः

स्याद्वादन्यायचक्रेश्वरगजवशकृद्धस्तिमल्लाह्वयेन ।

गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्नवरसभरितैरादृतो यं जिनेशः

पायान्नः पादपीठस्थलविकचलसत्पाण्ड्यमौलिप्रभौघः ॥

विक्रान्तकौरवम्, ग्रन्थकारस्यप्रशस्तिः, पृष्ठ 276.

हस्तिमल्ल गुणभद्र के दूर के शिष्य थे । गुणभद्र ने अपने 'उत्तरपुराण' की रचना 897 ए०डी० में समाप्त की थी, अतः हस्तिमल्ल का काल नवीं शताब्दी के बाद ही रहा होगा । हस्तिमल्ल के काल की न्यूनतम सीमा 1319 ए०डी० या चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध था । दशवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के बीच हस्तिमल्ल का समय 1290 ए०डी० निर्दिष्ट करने का विद्वानों ने प्रयास किया है, किन्तु उसे इदमित्थं रूप से नहीं माना जा सकता है ।

एम० कृष्णामाचारी ने हस्तिमल्ल की सम्भावित तिथि नवीं शताब्दी बतायी है, अपने विचारों के समर्थन में उन्होंने भी कोई प्रमाण नहीं दिया है । यदि पाण्ड्यनरेश के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ जानकारी रही होती तो हस्तिमल्ल का समय निर्धारण करने में निश्चित रूप से अधिक सहायता प्राप्त होती ।[1]

अय्यपार्य ने 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' नामक ग्रन्थ वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर और हस्तिमल्ल की रचनाओं का मुख्य तत्त्व लेकर बनाया है ।[2] 'जिनेन्द्र-

---

1. एम० कृष्णामाचारी, क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ 641.
2. यश्चाशाधर हस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरितः ।
   तेभ्यस्स्वाहृतसार आर्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥
   अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृष्ठ 67.

कल्याणाभ्युदय' की रचना श0सं0 1241 ﴾विक्रम संवत् 1396﴿ में समाप्त हुई ।[1] अतः हस्तिमल्ल का समय 1396 से पहले माना जाना चाहिए । हस्तिमल्ल, ब्रह्मसूरि के पितामह के पितामह थे, यह ब्रह्मसूरि द्वारा दी गयी वंश-परम्परा से स्पष्ट होता है । यदि एक पीढ़ी को 25 वर्ष माना जाय तो हस्तिमल्ल ब्रह्मसूरि से 100 वर्ष पूर्व हुए थे । विद्वानों के अनुसार ब्रह्मसूरि का आविर्भाव विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ था[2] अतः हस्तिमल्ल का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्वीकार किया जा सकता है ।

संस्कृत के नाट्य गगनाङ्गण को महाकवि हस्तिमल्ल ने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के माध्यम से चमत्कृत किया है । हस्तिमल्ल ने कुल कितने ग्रन्थों का प्रणयन किया है ? यह आज भी विवाद का विषय है । तथापि हस्तिमल्ल विरचित

---

1. शाकाब्दे विधुवेदनेत्रहिमगे ﴾?﴿ सिद्धार्थसंवत्सरे

   माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्यार्कवारेऽहनि ।

   ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्

   सम्पूर्णो भवदेकशैलनगरे श्रीपालबन्धूर्जितः ॥

   अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृ0 67.

2. वही, पृष्ठ 67-68.

चार नाटकों का उल्लेख परवर्ती स्रोतों से प्राप्त होता है -

क. विक्रान्तकौरवम्　　　ग. अञ्जनापवनञ्जय, एवम्

ख. मैथिलिकल्याण,　　　घ. सुभद्रा ।

उपर्युक्त चारों नाटक अपने मूलरूप में 'माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थमाला' बम्बई से प्रकाशित हो चुके हैं ।[1] इनके अतिरिक्त चार नाटकों का नामोल्लेख प्राप्त होता है किन्तु वे अभी तक नहीं प्रकाशित हुए हैं । ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये चारों नाटक दक्षिण भारत के भण्डारों में शायद कहीं दबे पड़े हों ।[2] इनके नाम अधोलिखित हैं -

क. उदयनराज,　　　ग. अर्जुनराज, एवम्

ख. भरतराज　　　घ. मेघेश्वर ।[3]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, भूमिका, पृष्ठ 8.
2. वही,
3. मि० आफ्रेख के 'केटेलागस् केटलागोरम्' [सन् 1891 लिपजिग] में इन सब नाटकों का उल्लेख ग्रामर्ट साहब की 'लिस्ट आफ संस्कृत मेनु० इन सदर्न इण्डिया [जिल्द 1-2 सन् 1880-1885] के आधार से किया गया है । यह लिस्ट दक्षिण भारत की प्रायवेट लायब्रेरियों को देखकर तैयार की गयी थी और इसलिए आपर्ट साहब ने उस समय गृह-पुस्तिकालयों में इन ग्रन्थों को स्वयं देखा होगा ।

अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृष्ठ 68.

अय्यपार्य ने अपने 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' की रचना वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर और हस्तिमल्ल के 'प्रतिष्ठापाठों' का सार लेकर किया था । इससे यह प्रश्न उठता है कि हस्तिमल्ल का कोई न कोई प्रतिष्ठाग्रन्थ अवश्य ही रहा होगा, तभी तो अय्यपार्य ने उसका सार ग्रहण किया होगा । आरा के 'जैनसिद्धान्तभवन' में एक 'प्रतिष्ठातिलक' नाम का ग्रन्थ है ।[1] यद्यपि इस 'प्रतिष्ठातिलक' पर किसी रचनाकार का नामोल्लेख नहीं है तथापि विद्वानों की ऐसी धारणा है कि इस 'प्रतिष्ठा-पाठ' के रचनाकार हस्तिमल्ल ही रहे होंगे । विद्वानों की यह धारणा तत्य के अधिक निकट प्रतीत होती है ।

कन्नड़ी भाषा में दो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जिनके नाम आदिपुराण[2] (पुरुचरित) और श्रीपुराण[3] हैं । ये दोनों ग्रन्थ भी हस्तिमल्ल प्रणीत ही हैं । संस्कृत

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृष्ठ 68.

2. इस ग्रन्थ के शुरू के 41 पत्र साङ्गली के 'श्री गुंडप्पा सवनापा आरवाडे' के पास हैं और इन्हें देखकर डा० उपाध्ये ने ही 'हस्तिमल्ल एण्ड हिज आदिपुराण' नामक अंग्रेजी लेख लिखा है । यह ग्रन्थ गद्य में है और इसके प्रत्येक पर्व में जो मङ्गलाचरण है, वह जिनसेन के 'आदिपुराण' का है । वही, पृष्ठ 68.

3. मूडबिद्री और बराङ्ग के जैन मठों में इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं । वही, पृष्ठ 68.

के समान ही कन्नड़ी भाषा पर अधिकार रखने के कारण ही हस्तिमल्ल 'उभयभाषा-चक्रवर्ती' कहलाते थे ।

यदि उपर्युक्त कथनों और प्रमाणों को स्वीकार किया जाय तो हस्तिमल्ल की कुल ।। अधोलिखित रचनाएँ हैं :-

1. विक्रान्तकौरवम्,
2. मैथिलिकल्याण,
3. अंजनापवनंजय,
4. सुभद्रा,
5. उदयनराज,
6. भरतराज,
7. अर्जुनराज,
8. मेघेश्वर,
9. प्रतिष्ठा-तिलक,
10. आदिपुराण, एवम्
11. श्रीपुराण ।

-----------::0::-----------

## द्वितीय अध्याय

## नाट्योद्भव एवं विकास

## द्वितीय अध्याय

आनन्द की प्राप्ति करना मनुष्य की समग्र आकाङ्क्षाओं में सर्वाधिक प्रधान होती है । ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए तो वे मनीषी ही यत्न करते हैं, जो ब्रह्मा की इस सृष्टि को वस्तुतः निस्सार ही समझते हैं किन्तु जो मनुष्य ब्रह्मा की इस लीला में भी तत्त्व मानते हैं तथा जिन्होंने भौतिक संसार के अन्तर्गत भी कुछ तत्त्व समझा, वे भौतिक जगत् में लिप्त रहते हुए भी आनन्द की खोज में तत्पर रहते हैं । इस प्रकार के मानव संसार के छल-प्रपंच से त्रस्त होकर ऐसे क्षणों के अन्वेषण में व्यस्त रहते हैं, जिनमें वे सांसारिक व्यस्तताओं से अपने को पृथक् रखकर आनन्द का अनुभव कर सकें । उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए मानव अनेक प्रकार के साधनों का सहारा लेता है । दिन भर के कार्य से थककर जब व्यक्ति अपने घर को लौटता है तो अपने नन्हें-मुन्ने बच्चों के लिए घोड़ा बनने में भी उसे एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है और नन्हें-मुन्ने बालक भी मनोरंजन के क्षणों में माता-पिता के कार्यों और चेष्टाओं की अनुकृति करके केवल आनन्द का अनुभव ही नहीं करते हैं अपितु अज्ञात रूप से शिक्षा भी ग्रहण करते हैं । छोटे तथा बड़ों की इसी अनुकरण के माध्यम से आनन्द प्राप्ति की भावना में ही नाट्य का मूल रहता है । इसीलिए धनञ्जय ने नाट्य के सम्बन्ध में कहा - 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' ।[1]

---

1. दशरूपकम्, प्रथम-प्रकाश, पृष्ठ 6.

अनुकृति से आनन्द प्राप्त करने की प्रवृत्ति मनुष्य में शैशवावस्था से आ जाती है । अत: यह कहा जा सकता है कि मानव जब सभ्यता के शैशवावस्था में ही रहा होगा तथा उसमें जब बुद्धि उत्पन्न हुई होगी और जब मनुष्यों में भावाभिव्यक्ति की शक्ति आई होगी, तभी से नाट्य बीजों का अनुकरण भी हुआ होगा ।

नाट्य साहित्य संस्कृत वाङ्मय का गरिमापूर्ण भाग है । नाटक ने संस्कृत साहित्य को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है जिससे देववाणी संस्कृत की विमल आभा सम्पूर्ण विश्व में विस्तीर्ण हो रही है । नाटक की प्रतिष्ठा श्रव्य-काव्यों की अपेक्षा विस्तृत है । श्रव्य-काव्य के आनन्द से वञ्चित रह जाने वाले मनुष्यों को नाटक अलौकिक आनन्द प्रदान करता है । श्रव्य-काव्य कर्णेन्द्रियों के माध्यम से हृदय को आह्लादित करता है तथा नाट्य चक्षुरिन्द्रिय के माध्यम से आनन्दित करता है । श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत आनन्दानुभूति के लिए रसानुभूति की आवश्यकता होती है और रसानुभूति के लिए अर्थज्ञान की आवश्यकता होती है । जबकि नाटक में ऐसी बात नहीं है । नाटक में अभिनय, वेश-भूषा, पर्दा, साज-सज्जा, नेपथ्य आदि के द्वारा दर्शकों पर अमिट प्रभाव पड़ता है । नाट्य में रसानुभूति के लिए वातावरण स्वत: ही प्रकट हो जाता है । इन्हीं कारणों से सामान्य मनुष्यों में नाटक विशेषरूप से लोकप्रियता को प्राप्त होता है ।

नाट्य-शास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने नाट्य को 'सभी वर्ण के मनुष्यों का वेद' कहा है। अन्य वेद (चारों - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) तो द्विजों के लिए ही हैं किन्तु नाटक सभी वर्णों के लिए उपयोगी होता है।[1] नाट्यवेद में केवल देवताओं के ही चरित्र का अनुभावन नहीं होता है, इस नाट्य में तो त्रैलोक्य के समस्त भावों का प्रस्तुतीकरण होता है।[2] नाट्यवेद में कहीं धर्म है, कहीं क्रीडा है, कहीं अर्थ है, कहीं हास्य है, कहीं युद्ध है, कहीं काम है तथा कहीं वध है।[3] नाटक अनेक प्रकार के भावों से समन्वित, विभिन्न अवस्थाओं वाला तथा लोक-व्यवहार का अनुकरण करने वाला होता है।[4]

---

1. न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्य: शूद्रजातिषु ।
   तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ॥ ना0शा0, प्र0अ0, श्लोक सं0 12.

2. नैकान्ततोऽत्र भवतां देवानां चानुभावनम् ।
   त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ॥ वही, श्लोक सं0 107.

3. क्वचिद्धर्म: क्वचित्क्रीडा क्वचिदर्थ: क्वचिच्छम: ।
   क्वचिद्धास्यं क्वचिद्युद्धं क्वचित्काम: क्वचिद्वध: ॥ वही, श्लोक सं0 108.

4. नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ।
   लोकवृत्तानुकरणम् नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥ वही, श्लोक सं0 112.

प्रकृत शोध-विषय के नाट्य से सम्बद्ध होने के कारण एक स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि नाट्योत्पत्ति कैसे हुई ? किन-किन उपादानों से नाट्य-कला का उदय हुआ ? यह अत्यन्त विचारणीय एवं चिन्तनीय प्रश्न है । पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विद्वानों ने इस सन्दर्भ में आयासपूर्वक छानबीन की है किन्तु नाट्य इतिहास का यह दुर्भाग्य ही है कि अद्यावधि नाट्योत्पत्ति के विषय में कोई भी मत इदमित्थं रूप से स्वीकार नहीं किया जा सका है । फलतः अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ बनी हुई हैं । जिस प्रकार वर्तमान समाज के आधार पर प्राचीन समाज का स्वरूप बताना कठिन है, उसी प्रकार से आज के नाटकों के आधार पर नाटक की उत्पत्ति का निर्णय भी दुष्कर है ।

नाट्योत्पत्ति के सन्दर्भ में प्रचलित विभिन्न परम्पराओं एवं विचारों को अधोलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है -

क. परम्परागत प्रमाणों का एकदेशीय मत नाट्य का रचयिता भरतमुनि को मानता है । नाटक के उद्भव के सम्बन्ध में अनेक कथायें परम्परा से चली आयी हैं । इन कथाओं में प्राचीनतम वह प्रतीत होती है जो नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय में प्राप्त होती है । नाट्य-शास्त्र के प्रथम अध्याय में आत्रेय आदि ऋषियों द्वारा नाट्य वेद के विषय में जिज्ञासापूर्वक प्रश्न किये गये कि नाट्यवेद की उत्पत्ति

कैसे हुई ? किसके लिए हुई ? उसके कौन-कौन से अङ्ग हैं ? इसकी प्राप्ति के उपाय कौन से हैं तथा इसका प्रयोग कैसे हो सकता है ?[1] भरतमुनि ने इसके उत्तर में कहा कि नाट्यवेद का ऋग्वेद से पाठ्य-अंश, साम से सङ्गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रसों को लेकर प्रणयन किया गया है ।[2] इसको इस स्वरूप में निर्मित कर इसे अपने पुत्रों को सिखाया ।[3]

ब्रह्माजी के आदेशानुसार इन्द्र के ध्वजमहोत्सव में नाट्यवेद का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया ।[4] इस प्रयोग में देवताओं का उत्कर्ष और राक्षसों का अपकर्ष देखकर राक्षस लोग भड़क उठे और अपने नेता 'विरूपाक्ष' के नेतृत्व में नाटक के प्रयोग में

---

1. योऽयं भगवता सम्यग्ग्रथितो वेदसम्मितः ।
   नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते।।
   कत्यङ्गः किंप्रमाणश्च प्रयोगश्चास्य कीदृशः ।
   सर्वमेतद्यथातत्त्वं भगवन् वक्तुमर्हसि ।। ना0शा0, प्र0अ0, श्लोक सं0 4-5.

2. जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
   यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।। वही, श्लोक सं0 17.

3. आज्ञापितो विदित्वाऽहं नाट्यवेदं पितामहात् ।
   पुत्रानध्यापयं योग्यान् प्रयोगं चापि तत्त्वतः ।। वही, श्लोक सं0 25.

4. अयं ध्वजमहः श्रीमान् महेन्द्रस्य प्रवर्तते ।
   अत्रेदानीमयं वेदो नाट्यसंज्ञः प्रयुज्यताम्।। वही, श्लोक सं0 54.

विघ्न पैदा करने लगे ।[1] इस विघ्न को देखकर इन्द्र ने शीघ्र ही क्रोध से उठकर अपने दिव्य ध्वज को धारण कर लिया और उस ध्वज के द्वारा इन्द्र ने रङ्गपीठ पर विद्यमान विघ्नों तथा असुरों को जर्जरित कर दिया,[2] तभी से इन्द्र के ध्वज का नाम जर्जर पड़ गया ।[3] विघ्नों से बचे रहने के लिए ब्रह्मा ने विश्वकर्मा जी को नाट्यगृह बनाने के लिए कहा । तब विश्वकर्मा ने थोड़े ही समय में शुभ, विशाल, समस्त लक्षणों से युक्त नाट्यगृह की रचना कर दी ।[4]

---

1. एवं प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने ।
   अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्या ये तत्र सङ्गताः ॥

   विरूपाक्षपुरोगांस्तु विघ्नान् प्रोत्साह्य तेऽब्रुवन् ।
   न क्षमिष्यामहे नाट्यमेतदागम्यतामिति ॥ ना०शा०, प्र०अ०, श्लोक सं० 64-65.

2. उत्थाय त्वरितं शक्रः गृहीत्वा ध्वजमुत्तमम् ।
   सर्वरत्नोज्ज्वलतनुः किंचिदुद्वृत्तलोचनः ॥

   रङ्गपीठगतान् विघ्नानसुरांश्चैव देवराट् ।
   जर्जरीकृतदेहांस्तानकरोज्जर्जरेण सः ॥ वही, श्लोक सं० 69-70.

3. यस्मादनेन ते विघ्नाः सासुराः जर्जरीकृताः ।
   तस्माज्जर्जर इत्येव नामतोऽयं भविष्यति ॥ वही, श्लोक सं० 73.

4. ततोऽचिरेण कालेन विश्वकर्मा महच्छुभम् ।
   सर्वलक्षणसम्पन्नं कृत्वा नाट्यगृहं तु सः ॥ वही, श्लोक सं० 80.

इसके बाद सृष्टिकर्ता प्रजापति ने विघ्नकर्ताओं को समझाते हुए कहा कि मेरे द्वारा यह जो नाट्यवेद निर्मित किया गया है, यह आपके तथा देवगण दोनों (राक्षस एवं देवता) के शुभ एवं अशुभ कर्मों को बताने वाला तथा दोनों के कर्म, वंश तथा भावों को उसी प्रकार व्यक्त करता है[1], जिस प्रकार इस प्रयोग में दैत्यों की पराजय दिखायी गयी है उसी प्रकार अन्य प्रयोगों में देवताओं के भी पराजय का प्रदर्शन किया जा सकता है । ब्रह्माजी के समझाने पर किसी तरह दैत्य लोग शान्त हुए और तब से नाटक प्रारम्भ हुआ । नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटकों की उत्पत्ति त्रेतायुग[2] में माना जा सकती है ।

इस प्रकार भरतमुनि के मत के आधार पर अधिकांश परम्परावादी भारतीय विद्वान् नाट्य को वेद से आविर्भूत स्वीकार करते हैं ।

---

1. भवतां देवतानाञ्च शुभाशुभविकल्पः ।
   कर्मभावान्वयापेक्षी नाट्यवेदो मयाकृतः ॥ ना0शा0, प्र0अ0, श्लोक सं0 106.

2. पूर्वंकृतयुगे विप्रावृत्ते स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
   त्रेतायुगे सम्प्रवृत्ते मनोर्वैवस्वतस्य तु ॥ वही, श्लोक सं0 8.

अनेक पाश्चात्य एवम् पौरस्त्य विद्वान् नाट्योत्पत्ति के सन्दर्भ में वेदों को ही मूल मानते हैं । ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूत्र पाये जाते हैं, जिनमें एक से अधिक वक्ता हैं । इन वक्ताओं का परस्पर वार्तालाप ही संवाद है । इस प्रकार के संवाद सूक्तों की संख्या कम से कम पन्द्रह है जिनका संवाद रूप निर्विवाद है ।[1] ऐसे संवाद सूक्तों में इन्द्र-मरुत-संवाद ऋग्वेद 1.165, 170, अगस्त्य-लोपा-मुद्रा संवाद ऋग्वेद 1.179, विश्वामित्र नदी संवाद ऋग्वेद 3.33, वशिष्ठ सुदास संवाद ऋग्वेद 7.83, यम-यमी संवाद ऋग्वेद 10.10, इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकापि संवाद ऋग्वेद 10.86, पुरुरवा-उर्वशी संवाद ऋग्वेद 10.95, सरमापणि-संवाद ऋग्वेद 10.108 आदि प्रमुख हैं ।

कतिपय विद्वानों की ऐसी अवधारणा है कि इन्हीं संवाद सूक्तों में नाट्य के बीज अन्तर्निहित हैं । इन्हीं बीजों के अङ्कुरण के आधार पर नाटकोत्पत्ति के विषय में अनेक विचारधाराएं प्रचलित हैं -

1. डॉ० श्रोदर के अनुसार संवाद सूक्त नाच-गान के साथ अभिनीत किया जाता था । इन्होंने संवाद सूक्तों को धार्मिक नाटक माना है, जिसका अभिनय यज्ञ के

---

1. कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० 2.

विशेष अवसरों पर नृत्य, गीति तथा वाद्य उपकरणों के साथ किया जाता था । पश्चिम बंगाल में आजकल जिन धार्मिक यात्राओं का आयोजन किया जाता है, वे इन्हीं नाटकों के विकसित रूप हैं ।[1]

2. डा० हर्ल यह स्वीकार करते हैं कि संवाद सूक्त वास्तव में गाये जाते थे और इस गायन में अनेक व्यक्ति साथ रहते थे । डा० हर्ल संवाद के प्रदर्शन को अकेले सम्भव नहीं मानते हैं । इसी आधार पर उन्होंने नाटक का बीज ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में देखने का प्रयास किया है ।[2]

3. डा० कीथ का विचार है कि ऋग्वेद में संवाद सूक्त अवश्य प्राप्त होते हैं परन्तु इनका केवल 'शंसन्' होता था । गायन के प्रयोग के सन्दर्भ में काथ का मत है कि गायन का प्रयोग केवल सामवेद में होता है । इसी आधार पर सामवेद का गायन करने वाले को 'उद्गाता' तथा ऋग्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाले को 'ऋत्विज्' कहते हैं । संवाद सूक्त अनेक प्रकार के हैं । कहीं-कहीं ऐतिहहासिक

---

1. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 469.

2. वही, पृष्ठ 469.

घटना का उल्लेख है तो कहीं पर तत्त्वों का विचार किया गया है । मौलिक रूप से इनका विषय व्यावहारिक है । कीथ ने भी नाटकों का मूल सूक्तों में ही स्वीकार किया है ।[1]

4. कतिपय विद्वानों ने नाटकों की उत्पत्ति को गद्य-पद्य के मिश्रण को आधार बनाया है । इन विद्वानों में पिशेल, ओल्डेनबर्ग और विण्डिश प्रमुख हैं । नाटक में जो गद्य-पद्य का सम्मिश्रण है वह पिशेल के मत में संवाद सूक्तों का अनुकरण है । इन विद्वानों ने संवाद सूक्तों के स्वरूप का वर्णन ही दूसरे ढंग से करने का प्रयास किया है। इनके अनुसार संवाद सूक्त गद्य-पद्यात्मक थे । पद्य-भाग अधिक रोचक होने से बचा रहा किन्तु गद्य-भाग वर्णनात्मक होने से शनैः शनैः समाप्तप्राय हो गया । इसे इन विद्वानों ने आख्यान रूप में स्वीकृत किया है । ओलडेन बर्ग ने 'शुनः शेप' तथा 'पुरुरवा उर्वशी' की कथा को इन्हीं आख्यानों के अवशिष्ट रूप में स्वीकार किया है ।[2]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ0 469.

2. वही ।

5. सन् 1869 ई0 में मैक्समूलर ने अपना विचार प्रस्तुत किया । मैक्समूलर का विचार है कि यज्ञों के अवसर पर मरुतों की स्तुति में संवादों का पाठ किया जाता था अथवा दो गुटों द्वारा इसका अभिनय किया जाता था जिसमें से एक दल मरुतों एवं उनके अनुयायियों का प्रतिरूपण करता था तथा दूसरा दल इन्द्र का प्रतिरूपण करता था । प्रो0 लेवी ने 1890 में इस मत का समर्थन किया । लेवी ने एक तर्क यह दिया है कि सामवेद से पता चलता है कि वैदिक काल तक संगीत का विकास हो चुका था, इसके पहले ही ऋग्वेद से पता चलता है कि सुन्दर वेश-भूषा धारण करके अपने प्रेमियों को आकर्षित करने के लिए बालाएँ नाचती थीं ।

अथर्ववेद से पता चलता है कि पुरुष वाद्यों की गति के अनुरूप नृत्य करते थे एवं गाते थे । अतः इस बात को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि ऋग्वेद के समय में नाट्य प्रदर्शन के तत्त्वों की जानकारी थी । किन्तु इन प्रदर्शनों का स्वरूप धार्मिक ही था । इन नाट्य प्रदर्शनों में पुरोहित लोग देवताओं और ऋषियों की भूमिका ग्रहण करके देवताओं की घटनाओं का पृथ्वी पर अनुकरण करते थे ।[1]

---

1. कीथ, संस्कृत नाटक, पृ0 4-5.

6. डॉ० रिजवे वीरपूजा से नाटक की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं। मरे हुए वीर पुरुषों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की इच्छा से नाटकों का प्रणयन हुआ। जैसे ग्रीक देशों में नाटक (ट्रेजिडी) का जन्म मरे हुए व्यक्तियों के प्रति आदर प्रदर्शित करने की प्रक्रिया से हुआ, वैसे ही भारतवर्ष में नाटकों की उत्पत्ति वीरपूजा से हुई। रिजवे इस सम्बन्ध में रामलीला तथा कृष्णलीला का उदाहरण देते हैं किन्तु यह अन्य विद्वानों को मान्य नहीं है। प्रचलित नाटकीय उत्सवों के आधार पर नाटक का मूल अन्वेषण समीचीन नहीं प्रतीत होता है।

इसलिए डा० कीथ ने नाट्योत्पत्ति विषयक एक नये मत की कल्पना की है। डॉ० कीथ के मत में प्राकृतिक परिवर्तनों को जन-साधारण के समक्ष मूर्तरूप से दिखलाने की अभिलाषा से ही नाटकों का जन्म हुआ है।[1] इस मत की पुष्टि महाभाष्य में बताये गये 'कंसबन्ध' नामक नाटक के अभिनय से होती है। भाष्य में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि कंस का अनुकरण करने वालों का मुँह कृष्ण रङ्ग का होता था तथा कृष्ण का अनुकरण करने वाले इस नाटक का अभिनय करते समय लाल मुख धारण करते थे।[2]

---

1. कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० 45-48.
2. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 467.

डॉ0 कीथ का विचार है कि वसन्त ऋतु का हेमन्त ऋतु पर विजय प्रदर्शित करना ही इस नाटक का प्रधान उद्देश्य है। कृष्ण की विजय जीवनी शक्ति का प्रतीक मात्र है।[1] इस सिद्धान्त के विषय में यह कहना सम्भवत: अत्युक्ति नहीं होगी कि इसके उद्भावक को भी इस मत में विश्वास नहीं है।

7. डॉ0 पिशेल ने इस बात को प्रमाणित करने का यत्न किया है कि संस्कृत नाट्योत्पत्ति का मूल स्रोत कठपुतली नृत्य है तथा इसका मूलस्थान भारतवर्ष है। भारतवर्ष से ही यह अन्य देशों में फैला। 'सूत्रधार' तथा 'स्थापक' आदि शब्दों का मूल अर्थ इस विचार का पोषण करता है। 'सूत्रधार' का अर्थ है डोरे को पकड़ने वाला तथा 'स्थापक' का अर्थ होता है स्थापना करने वाला अथवा किसी वस्तु को लाकर रखने वाला। इन दोनों शब्दों {सूत्रधार, स्थापक} का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से है। जो सूत्र अर्थात् डोरे को पकड़कर पुत्तलियों को नचाता था उसे सूत्रधार कहा गया है।[2]

कथा सरित्सागर के वर्णन के अनुसार 'अद्भुत शिल्पी मायासुर की पुत्री ने

---

1. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 467.

2. वही, पृ0 468.

ने अपनी सहेली का मनोरंजन ऐसा पुत्तलियों से किया था जो माला ले सकती थीं, उड़ती थीं, बोलती थीं, पानी लाती थीं ।[1] बालरामायण में ऐसा उल्लेख है कि 'सीता के सदृश बनायी गयी पुत्तली से रावण भी धोखा खा गया था ।'[2]

भारतीय नाट्य की उत्पत्ति 'पुत्तलिका नृत्य' से कहने के परिप्रेक्ष्य में विद्वानों में मतैक्य का अभाव परिलक्षित होता है । इस मत के सन्दर्भ में सम्भवत: यह कहना औचित्यपूर्ण होगा कि पुत्तलिका नृत्य सर्वप्रथम भारत में ही उत्पन्न हुआ और यहीं से अन्य देशों में प्रचारित हुआ, न कि यह कहना कि पुत्तलिका नृत्य से ही नाटक की उत्पत्ति हुई ।

8. कतिपय विद्वानों की यह अवधारणा भी रही है कि नाटक की उत्पत्ति 'छाया-नाटकों' से ही हुई है । इस मत के भी उद्भावक के रूप में डॉ० पिशेल का ही नाम लिया जाता है । डॉ० पिशेल के इस मत का समर्थन डॉ० जूडर्स एवं डाक्टर कोनो ने मुख्य रूप से किया है । भारतवर्ष के छाया नाटकों की प्रचीनता प्रमाणित न होने के कारण छाया नाटकों से नाट्योत्पत्ति सम्बन्धी विचारधारा उचित नहीं प्रतीत होती है । छाया नाटकों द्वारा नाट्यकला का उद्भव मानना नितान्त भ्रामक है ।

---

1. कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० 44.　　　　2. वही ।

9. कतिपय लोगों ने 'मे पोल नृत्य'[1] नाट्योत्पत्ति निश्चित करने का प्रयास किया है । पाश्चात्य राष्ट्रों में मई का मास आनन्दोत्सव का मास होता है । मई के महीने में निश्चित स्थान पर एक बाँस गाड़ दिया जाता है । उस बाँस के नीचे स्त्री-पुरुष एक साथ नृत्य करते हुए आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करते हैं । इसे लोक नृत्य का एक उदाहरण माना जा सकता है जिसे विद्वजन इन्द्रध्वजमहोत्सव के तुल्य मानते हैं । किन्तु 'मे पोल नृत्य' से नाटक की उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा को विद्वत्समुदाय ने ध्यान देने योग्य भी नहीं समझा ।

10. संस्कृत नाटक पर ग्रीक प्रभाव दिखलाने का भी कुछ पाश्चात्त्य विचारकों ने यत्न किया है । "भारतीयों की प्रतिभा के विकास का फल नाटक है अथवा इसके विकसित होने में ग्रीक नाटकों की कला भी कारण है ?" इस प्रश्न ने भी विद्वन्मानस को अपनी ओर आकृष्ट किया है । भारतीय संस्कृत नाटकों पर ग्रीक प्रभाव होने की बात सर्वप्रथम डा० वेबर ने उठायी । वेबर का विचार है कि "नाटक निर्माण की आवश्यक प्रेरणा, यूनानी सेनाओं के साथ ही यूनानी संस्कृति ले आने वाले बैक्ट्रिया, पंजाब और गुजरात के राजाओं के दरबार में ग्रीक नाटकों के अभिनय के द्वारा, भारत के साथ यूनान के सम्पर्क से मिली होगी ।" संस्कृत नाटकों पर ग्रीक नाटक का प्रभाव

---

1. Shadow Play, Dr. Sten Konow - Das Indische Drama, pp. 45-46.

पड़ा, इस बात को डॉ० बेबर ने अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया किन्तु डॉ० पिशेल[1] ने बेबर के इस मत का खण्डन बहुत ही तीखे स्वर में किया है। बल्कि यों कहा जाय कि पिशेल ने इतना अधिक तर्कसंगत बयान दिया कि डॉ० बेबर द्वारा बतायी गयी 'भारतीय नाटक पर ग्रीक प्रभाव' वाली बात दब सी गयी।

इसके बाद डॉ० विण्डिश[2] ने इस प्रश्न की विधिवत् मीमांसा करके ग्रीक प्रभाव के स्वरूप को नये खोजों के आधार पर स्पष्ट करने की कोशिश की। डॉ० विण्डिश द्वारा की गयी मीमांसा को इस रूप में महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया जा सकता है कि उन्होंने उन तत्त्वों को पूरी तरह माना है, जिनके द्वारा भारतीय नाट्य का स्वतंत्र विकास हुआ। इन तत्त्वों को अधोलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है -

क. इतिहास काव्य के पाठ, एवम्

ख. नट की अनुकरण कला।

---

1. Die Recensionen der शाकुन्तला (1875), p. 19; SBAW - 1906, p. 502.

2. कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० 50.

'नृत्' धातु के प्राकृत-रूप से व्युत्पन्न 'नट' संज्ञा के आधार पर कहा जाता है कि (इस शब्द के भारतीय अर्थ में) वह मौलिक रूप से एक नर्तक था, अर्थात् नट वह व्यक्ति होता है जो अपने शारीरिक चेष्टाओं और सङ्केतों के द्वारा विविध प्रकार के भावों को दिखाता है। ग्रीक तथा रोमन मञ्च की शब्दावली के अनुसार वह 'मूक-अभिनेता'[1] (Pantomine) है।

परन्तु डॉ० विण्टरनित्ज़ का विचार है कि इतिहास काव्य की सामग्री के नाटकीकरण और नाटक के प्रतिष्ठित रूपों के लक्षणों में प्रभेद हैं। उसका प्रतिपाद्य वस्तु भिन्न है, वीर एवं पौराणिक पात्रों का नित्य के जीवन के सम्बन्ध से चित्रण हुआ है, प्रमुख विषय सुखान्त प्रेम है, कथानक का विकास कलात्मक ढंग से किया गया है तथा कार्य का विभाजन दृश्य के रूप में किया गया है। चरित्रों के विकसित भेद हैं, इतिहास काव्य के तत्त्व संवाद के विकास के सम्मुख गौण प्रतीत होते हैं, संस्कृत के साथ प्राकृत का और पद्य के साथ गद्य के मिश्रण का परिवर्तन ध्यातव्य है।

सम्प्रति एक प्रश्न उठना स्वाभाविक सा लगता है कि क्या सब ग्रीक प्रभाव के कारण हुआ ? किसी भी विद्वान् के मत के आधार पर मात्र यही कहा जा सकता

---

1. कीथ, संस्कृत नाटक, पृष्ठ 50.

है कि सूक्ष्म कारणों के द्वारा इतना ही गौरवशाली विकास सम्भव हो सकता है एवं इस प्रकार के प्रभाव की संभावना को पूरी तरह से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

डॉ० विण्डिश के खोज के पहले और बाद में भारतीय नाट्य पर ग्रीक प्रभाव का प्रचार अन्वेषण का विषय रहा है । अन्वेषण के परिप्रेक्ष्य में इसे सबसे अधिक फलदायक कहा जा सकता है । यह बात विवादरहित है कि भारत ने गांधार कला के मूल स्रोत के रूप में यूनान से प्रेरणा लिया । इसी प्रकार आयतन जैसे प्रतीक द्वारा बुद्ध की उपस्थिति का संकेत करने की अपेक्षा मनुष्य के रूप में चित्रण के प्रचार की प्रेरणा भी यूनानी कला के प्रभावों के कारण हुआ । अभी तक यह निश्चित नहीं है कि पश्चिमी धार्मिक और दार्शनिक विचारों के कारण बौद्धधर्म दर्शन में महायान सम्प्रदाय का विकास किस सीमा तक आगे बढ़ा ? किन्तु एक बात इस प्रकरण में ध्यातव्य है कि प्रोफेसर लेवी[1] ने, जिसने विण्डिश के विचारों का बहुत तीक्ष्ण विरोध किया था, स्वत: ही पश्चिमी प्रभावों का बौद्ध धर्म-दर्शन में नूतन भावना के विकास का कारण कहा है ।

---

1. कीथ, बुद्धिस्ट फिलासाफी, पृ0 217.

प्रो० लेवी ने इस विचारधारा का अन्वेषण अश्वघोष में किया है। उन्होंने अश्वघोष को कनिष्क का दरबारी स्वीकार किया है और इनका समय पहली शताब्दी ई०पू० निर्धारित करते हैं। इन परिस्थितियों में प्रो० लेवी[1] ने विण्डिश के विचारों को खण्डित करने में काल-निर्धारण सम्बन्धी आपत्तियों का सहारा लिया है। डॉ० विण्डिश के मत का खण्डन करते समय प्रो० लेवी ने कालिदास के नाटकों को पाँचवीं-छठी शताब्दी का स्वीकार किया था किन्तु इस समय लगभग 100 ई० के नाटक प्राप्त होते हैं जिनके विषय में यह स्पष्ट है कि ये नाटक सबसे प्राचीन नाटक हैं। अत: यह कहना पर्याप्त कठिन प्रतीत होता है कि संस्कृत नाटक तब अस्तित्व में आया जब भारत में यूनानी प्रभाव उपस्थित था।

डॉ० विण्डिश का विचार है कि 'न्यू एटिक कामेडी'[2] भारतीय नाटकों पर ग्रीक प्रभाव पड़ने का मौलिक स्रोत है। भारत में ग्रीक राजाओं के परिवारों में मनोरंजन का प्रदर्शन होता था या नहीं, यद्यपि इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से बहुत कम ही प्रमाण है[3] तथापि यह अवश्य कहा जा सकता है कि सिकन्दर की अभिनयात्मक

---

1. कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० 51.
2. New Attic Comedy (240 - 260 B.C.)
3. Plutarch, Alex. 72, Fort.Alex. 128 D; हिन्दी रूपान्तर, कीथ, पृ० 51.

प्रदर्शनों में रुचि थी । इन्हीं प्रदर्शनों के द्वारा सिकन्दर अपनी विजयों के मध्य अवकाश में मनोरञ्जन करता था ।

इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि एक्बतन (Ekbatana) में लगभग तीन हजार यूनानी कलाकार थे । यह भी कहा जाता है कि पारसीक बच्चे, जेड्रोशिया-वासियों और सूसा के नागरिकों ने Euripidies और Sophocles के नाटकों का गान किया था ।[1]

अगर Philostratos के Tyana के Apollonios की जीवनी पर विश्वास किया जाय तो एक ब्राह्मण ने डींग मारी थी कि उसने Euripdes के Herakleidai को पढ़ा था । उस विलक्षण दृश्य को प्लूटार्क ने बहुत ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया । Crassus का सिर लेकर जब दूत वहाँ पहुँचा तो अभिनेता Iason ने Bakchai में (उस समय वह जिसका प्रदर्शन कर रहा था) Pentheus के सिर के बदले उस भयंकर अवशेष को स्थानापन्न कर दिया ।[2]

---

1. कीथ, संस्कृत नाटक, पृ0 51.

2. वही, पृ0 52.

पूर्व प्रस्तुत तर्कों के आधार पर सिकन्दर के राज्य के विभिन्न प्रान्तों में ग्रीक नाटकों के अभिनय के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। सिकन्दर नाटकों का बड़ा प्रेमी था। सम्राट सिकन्दर के राजदरबार में नाटकों का विधिवत् प्रचार था। इसी का प्रभाव संस्कृत नाटकों पर पड़ा। भारतीय प्रतिभा नूतन प्रभावों को आत्मसात् करने में अत्यन्त प्रवीण थी। अतः नाटकों का विकास स्वतः अपनी प्रतिभा के बल पर नहीं हुआ, अपितु यह कहा जा सकता है कि ग्रीक नाटकों के प्रदर्शनों को देखकर भारतीयों को नाटक के क्षेत्र में प्रेरणा तथा तीव्रता प्राप्त हुई।

परन्तु इस विचार 'भारतीय नाटक पर ग्रीक प्रभाव' को निर्विवाद रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस विचार के सन्दर्भ में यदि यह कहा जाय कि ग्रीक प्रभाव का दुर्ग जिन आधार-स्तम्भों पर खड़ा किया गया है वे बिल्कुल दुर्बल एवं जर्जर हैं तो अत्युक्ति नहीं होगी।

ईसा के प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी में भारत एवं रोम का व्यापारिक सम्बन्ध प्रगाढ़ था। बेरिगाजा, (Baryagaza) जिसे आजकल भड़ौच कहते हैं, रोमन व्यापार का प्रधान बन्दरगाह था। रोमन[1] और संस्कृत नाटकों में अङ्कों का

---

1. कीथ, संस्कृत नाटक, पृ० 53.

विभाजन, अभिनेताओं का रंगमंच से प्रस्थान के द्वारा अङ्कों के समाप्त होने की सूचना और पाँच अङ्कों की सामान्य संख्या ﴾हालाँकि भारतीय नाटकों में इससे अधिक अङ्क प्राप्त होते हैं﴿ आदि के सन्दर्भ को संयोग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं माना जाता है ।

कार्यों के विश्लेषणों के आधार पर संस्कृत नाटकों को विभक्त किया गया है, जो यूनान और रोम में प्रचलित नहीं है । दृश्य सम्बन्धी रूढ़ियों में सादृश्य है । यथा - पात्रों के प्रवेश तथा प्रस्थान में, अपवारितकों में, विशेषत: रङ्गमंच पर पहले से उपस्थित किसी अभिनेता द्वारा नवीन पात्रों के आगमन को प्राय: व्यक्त रूप से दर्शकों को सूचना देने की पद्धति । किन्तु ये सब ऐसी घटनाएं हैं जो समान परि-स्थितियों में किये गये नाटकीय प्रयोगों में समान रूप से घटित होती हैं । आजकल के रङ्गशाला कार्यक्रमों में भी रङ्गमंच पर आने वाले नये पात्रों के स्वरूप की तुरन्त सूचना देने की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है ।

11. कुछ विद्वानों ने ग्रीक प्रभाव के सम्बन्ध में जवनिका और यवनिका का उल्लेख किया है । नेपथ्यशाला को आवरित करने वाली और रङ्गमंच की पृष्ठभूमि के निर्माण में सहायक पटी के लिए यवनिका[1] अथवा उसके प्राकृत

---

1. दूष्याद्यं वस्त्र वेश्मनि ।
प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा ॥
- अमरकोश, द्वितीय काण्ड, मनुष्यवर्ग, श्लोक सं0 120.

रूप जवनिका[1] शब्द का प्रयोग विद्वानों ने किया । यह शब्द मूलरूप से विशेषण है, जिसका अर्थ है - आयोनियन (Ayonian) अर्थात् यूनानी, जिनके सम्पर्क में भारत पहले आया । इसका निश्चित अर्थ था - यूनान-सम्बन्धी । परन्तु यह यूनानी पदार्थों तक ही सीमित नहीं माना गया । यूनानी संस्कृति में ढले हुए फारसी साम्राज्य मिस्र, सीरिया और बैक्ट्रिया से सम्बन्धित किसी भी वस्तु के लिए इसका प्रयोग होता है । अतः इसको यूनानी पदार्थों तक ही सीमित नहीं माना जा सकता है । पर्दे के लिए प्रयुक्त 'यवनिका' शब्द विशेषण है, जो निश्चित रूप से पटी का विदेशी उपादान है, शायद यह फारस में बने हुए पर्दे के कपड़े को इङ्गित करता है, जो यूनानी जहाजों और व्यापारियों द्वारा भारत में लाया गया था ।

रङ्गशाला की पटी के लिए 'यवनिका' शब्द का प्रयोग विशिष्ट नहीं है । यवनिका शब्द के आदिम अंश की समीक्षा करके यूरोपीय विद्वानों ने यह सिद्धान्त बना लिया कि भारतीय नाटकों के विकास क्रम पर यूनानी नाटकों का प्रचुर प्रभाव पड़ा है । वे ऐतिहासिक प्रमाणों के अलावा 'यवनिका' शब्द को इस प्रसङ्ग में अपने दुर्बल महल की सबल नींव समझने की भूल करते हैं ।

---

1. जवनिका - व्यवधायक वस्त्रं, प्रतिसीरा, तिरस्कारिणी, तिरस्करिणी, अन्तःपटः, पटी, चित्रा, काण्डपटः, जवनी, अपटी, कनात् इति भाषा ।
हलायुधकोश, पृष्ठ 314.

जवनिका शब्द भारत में लोक-व्यवहार में प्रयुक्त होने वाला साधारण शब्द है न कि भारतीय नाट्य-शास्त्र का विशिष्ट रूप से पारिभाषिक शब्द/अमरकोश के अन्तर्गत जवनिका शब्द का प्रयोग 'पटवेश्म' [खेमा] को ढकने वाले परदे के अर्थ में किया गया है। प्राचीनकाल में वस्त्रों द्वारा निर्मित भवनों का वर्णन मिलता है। अमरकोशकार अमरसिंह ने इस प्रकार के भवनों के लिए दूष्य[1] शब्द का प्रयोग किया है।

अमरकोश के एक टीकाकार क्षीरस्वामी हैं। क्षीरस्वामी ने वस्त्रवेश्म के लिए पटकुटी, पटकुड्य, गण्डशालिनी तथा स्थूणा, शब्दों का व्यवहार होना बताया है।[2] अमरकोश के एक अन्य टीकाकार 'भानुजीदीक्षित' हैं, जिनका समय सत्रहवीं शताब्दी माना जाता है। उन्होंने वस्त्र-वेश्म के प्रसङ्ग में कुट, पटकुटी, तथा पट-वास शब्दों को उल्लिखित किया है।[3] वस्त्रवेश्म का प्रचलन प्राचीनकाल में मुसलमानों

---

1. दूष्याद्यं वस्त्र वेश्मनि, अमरकोश, द्वितीय काण्ड, मनुष्यवर्ग, श्लोक सं0 120.
2. अमरकोशोद्घाटन, ओरियण्टल बुक एजेंसी, पूना से सन् 1941 ई0 में प्रकाशित, पूना ओरियण्टल सीरीज़ संख्या 43, पृष्ठ 158.
3. रामाश्रमी टीका, निर्णयसागर प्रेस, पृ0 407.

के सम्पर्क से पहले भी था । कविकुल गुरू महाकवि कालिदास उसके प्रयोग से परिचित थे । कालिदास ने रघुवंश के पाँचवें सर्ग में इसका उल्लेख किया है ।[1] श्लोक में आये हुए 'उपकार्या' शब्द की टीका करते हुए मल्लिनाथ ने लिखा है - उपकार्यासु राज-योग्येषु पटभवनादिषु' जिससे यह ज्ञात होता है कि यहाँ महाकवि कालिदास के इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि 'खेमा' (आंग्ल भाषा में टेंट) बनाने तथा उसमें निवास की प्रथा प्राचीनकाल से भारत में थी और नृप लोग इसका उपयोग अपनी यात्रा में करते थे ।

'खेमे' को ढकने वाले परदे के लिए जवनिका शब्द का प्रयोग किया जाता था जिसे सम्प्रति हिन्दी भाषा में 'कनात्' कहा जाता है । नाव की गति तेज करने के लिए नाविक गोनधर के ऊपर जिस कपड़े का परदा बाँधते हैं, उसके लिए भी 'जवनिका' शब्द का प्रयोग किया जाता है । इन दोनों विशेष अर्थों का सामान्य रूप है - 'ढकना', 'आवरण करना' और इसके लिए जवनिका का सामान्य अर्थ हो गया परदा अर्थात् जो

---

1. तस्योपकार्यारचितोपचारा
        वन्येतरा जानपदोपदाभिः ।
   मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनो-
        र्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः ॥ रघुवंश महाकाव्य, पाँचवा सर्ग, श्लोक सं० 41.

वस्तु किसी को ढककर तिरोहित कर दे, उसे जवनिका कहते हैं ।

परदे के परिप्रेक्ष्य में प्रयोग होने वाले जवनिका शब्द की व्युत्पत्ति 'जु' धातु से है । 'जु' धातु, धातुपाठ में परिगणित नहीं है । 'जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः'[1] सूत्र में महर्षि पाणिनि ने 'जु' को निर्दिष्ट किया है, जिसका अर्थ है गति तथा वेग । इस प्रकार जवनिका का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ होगा - ऐसा आवरण जिसमें दौड़कर लोग चले जायँ, वह वस्तु जो वेगयुक्त हो या जिसको गति प्राप्त हो अर्थात् जो इतस्ततः हटायी जा सके । जवनी और जवनिका एक ही अर्थ में प्रयुक्त होता है । जवनिका का प्रयोग काफी प्रचलित है । जवनी और जवनिका दोनों का प्रयोग ढकने [आवरण] के अर्थ में ही होता है । संस्कृत भाषा में जहाँ तक जवनिका और जवनी के प्रयोग का प्रश्न है उसके विषय में इतना तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है कि 'जवनी' का प्रयोग अत्यल्प है किन्तु जवनिका का प्रयोग नाट्यशास्त्र[2], शिशुपालवध[3] जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों में भी हुआ है ।

---

1. जु चङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः । अष्टाध्यायी 3/2/150.
2. एतानि तु बहिर्गीतान्यन्तर्यवनिकागतैः ।
   प्रयोक्तृभिः प्रयोज्यानि तन्त्रीभाण्डकृतानि च ॥ ना0शा0, पंचम अध्याय, श्लोक 11.
3. समीरशिशिरः शिरःसु वसतां सतां जवनिका निकामसुखिनाम् ।
   बिभर्ति जनयन्नयं मुदमपामपायधवला बलाहकततीः ॥ शिशुपालवध, चतुर्थ सर्ग, श्लोक 54.

जवनिका शब्द का प्रयोग जिन-जिन ग्रन्थों में प्राप्त होता है वहाँ उसका प्रयोग परदा अथवा आवरण के ही सन्दर्भ में हुआ है । कहीं पर जवनिका के जकारादि की जगह मकार नहीं प्राप्त होता है । इन परिस्थितियों में परदे के अर्थ में यवनिका शब्द का प्रयोग किसी प्रकार औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता है । यवनिका के पक्षधर भी 'यवनी' का प्रयोग परदे के अर्थ में नहीं स्वीकार करते हैं । यवनी का तात्पर्य यवन जाति की स्त्री से है । महाकवि कालिदास ने 'यवनी' का अर्थ यवन जाति की स्त्री के रूप में किया है । इसका प्रयोग रघुवंश में प्राप्त होता है ।[1] परदे के अर्थ में जवनिका के समान 'जवनी' का प्रयोग भी होना चाहिए, क्योंकि ये दोनों शब्द एक धातु से निष्पन्न हैं । जवनी का प्रयोग गोवर्धनाचार्य ने भी अपने 'आर्यासप्तशती' में किया है ।[2]

---

1. यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः ।
   बालातपमिवाब्जानामकालजलोददयः ॥ रघुवंश, च०स०, श्लोक सं० 61.

2 व्रीडाप्रसरः प्रथमं तदनु च रसभावपुष्टचेष्टेयम् ।
   जवनी-विनिर्गमादनु नटीव दयिता मनोहरति ॥ आर्यासप्तशती

भारतीय नाट्य साहित्य पर यूनानी प्रभाव पड़ने का समर्थक विद्वान् इस आर्या में 'जवनी' के स्थान पर यवनी का परिवर्तन कथमपि नहीं कर सकता है। अगर 'यवनिका' का प्रयोग उचित होता तो परिवर्तन करने में व्याकरण कभी भी घातक नहीं होता। व्याकरण का बाधक बन जाना ही यह प्रमाणित करता है कि 'जवनी' के स्थान पर 'यवनी' नहीं हो सकता है। इस प्रकार यह निश्चित है कि परदे के लिए उचित शब्द 'जवनिका' ही है, यवनिका नहीं है।

पूर्णतः प्राकृत भाषा में निबद्ध नाटिका को ही सट्टक माना जाता है। राजशेखर कृत अतिप्रसिद्ध 'सट्टक' 'कर्पूरमञ्जरी' है। इस सट्टक के अवान्तर अङ्कों के नाम हैं 'जवनिकान्तरम्'। यह भी सम्भव हो सकता है कि इस नाम के संस्कृतीकरण ने ही विद्वानों के मन में भ्रम पैदा किया हो। सट्टक में सब कुछ प्राकृत भाषा में ही है। अतः अङ्कों का नामकरण भी प्राकृत भाषा में ही हुआ होगा, यह कहना भी अनुचित नहीं है। 'आदेर्यो जः'[1] सूत्र के अनुसार संस्कृत शब्दों का आदि 'यकार' प्राकृत में जकार हो जाता है। इस नियम को विधिवत् न समझने के कारण यह भ्रम पैदा हुआ होगा।

---

1. 'आदेर्यो जः' प्राकृत-प्रकाश

संस्कृत के आद्य यकार के प्राकृत में जकार होने पर प्राकृत का आदिम जकार संस्कृत में यकार हो जायेगा । इसलिए 'जवनिकान्तरम्' का संस्कृत रूप होगा 'यवनिकान्तरम्' और इस प्रकार नाटकीय परदे के अर्थ में 'यवनिका' शब्द प्रयुक्त होने लगा, यहीशङ्का है । 'आदेर्यो जः' सूत्र का विपर्यय संस्कृत में सभी स्थानों पर औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता है । इन्हीं कारणों ने पाश्चात्य विद्वानों को 'जवनिकान्तरम्' के संस्कृतीकरण ने धोखे में डाल दिया । रामाश्रमी टीका में जवनिका के स्थान पर 'यमनिका' पाठान्तर भी प्राप्त होता है ।[1] परन्तु प्रयोग में न होने के कारण इस शब्द को किसी प्रकार स्वीकार करना कठिन है । इसकी व्युत्पत्ति येन-केन प्रकारेण 'अर्थ-सिद्धि' में सहायक मानी जा सकती है किन्तु इस शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता है । इन परिस्थितियों में 'यमनिका' को स्वीकार करना औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता है ।

इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि यूनानी नाटकों में 'जवनिका' का मौलिक रूप से अभाव भी है । यवन प्रदेश में नाटक के लिए परदे की

---

1. यमनिका इति वा पाठः । यमयति - यम उपरमे ॥भ्वा०प०अ०॥, ल्युट् ॥3/3/17॥ कन् ॥ज्ञापित 5/4/5॥ - रामाश्रमी॥2/6/120॥

परम्परा नहीं थी, क्योंकि यवनों के देश में नाटक देखने वालों की संख्या इतनी अधिक होती थी कि दर्शकों की सुगमता के लिए रङ्गमञ्च बहुत ऊँचा बनाया जाता था । नाटक का प्रदर्शन दर्शकों की सुविधा के लिए खुले मैदान में किया जाता था । यवनों के रङ्गमञ्च ऊँचाई पर होने के कारण परदे के प्रयोग से वंचित थे । जब यूनानी नाट्य में ही परदा नहीं था तो भारतीय नाट्य के लिए यूनानी नाट्य के नकल का प्रश्न उठाना ही कथमपि उचित नहीं है ।

नाट्यशास्त्र, शिशुपालवध, रघुवंश, अवन्तिसुन्दरी आदि ग्रन्थों में 'जवनिका' शब्द सामान्य रूप से प्रयुक्त हुआ है (जिनका पिछले पृष्ठों में उल्लेख कर चुका हूँ) न कि परदे के अर्थ में । यदि भारतीय नाट्य रचयिताओं ने इस शब्द का ग्रहण यूनानी नाट्य से किया होता तो वे अपनी नाट्य परम्परा में भी 'जवनिका' शब्द का प्रयोग परदे के ही अर्थ में करते । 'यूनानी नाट्य का भारतीय नाट्य परम्परा पर प्रभाव' पड़ने की जो कल्पना 'जवनिका' अथवा 'यवनिका' के आधार पर की गयी है वास्तव में यह कल्पना गौरव ही प्रतीत होता है, वस्तुस्थिति नहीं है ।

भारतीय प्रज्ञा जिस प्रकार नाटक के विन्यास में स्वतन्त्र है उसी प्रकार अभिनय कला में भी वह कथमपि परमुखापेक्षी नहीं है । जवनिका के लिए भारतीय नाटककारों को यूनानियों के अधीन कहना किसी भी स्तर पर ग्राह्य नहीं है ।

नाटकीय परदा भारतीयों के लिए उधार की वस्तु नहीं है अपितु यह भारतीय नाट्य-साहित्य की मौलिक धरोहर है ।

भारतीय नाट्य-परम्परा यूनानी नाट्य-परम्परा से अभिनेताओं की संख्या की दृष्टि से भी मेल नहीं रखती है । केवल भास के ही नाटकों में अभिनेताओं की संख्या लम्बी नहीं है । अभिज्ञानशाकुन्तलम् में तीस है । मृच्छकटिक में उन्तीस है । विक्रमोर्वशीयम् में अठारह, मुद्राराक्षस में चौबीस । इतनी अधिक सङ्ख्या वाली नाट्य-परम्परा यूनान में परिलक्षित नहीं होती है । इस आधार पर भी सिद्ध है कि यूनानी नाटक भारतीय नाटकों से भिन्न हैं ।

ग्रीक नाटकों से संस्कृत नाटक 'सुखान्त नाटक और दु:खान्त नाटक' के रूप में भी भिन्न हैं । ग्रीक नाटकों में दो भेद होते हैं - सुखान्त नाटक (कामेडी) और दु:खान्त नाटक (ट्रेजिडी) किन्तु संस्कृत नाटकों में ऐसी बात नहीं है । वहाँ तो केवल सुखान्त नाटक ही होते हैं । यदि संस्कृत नाटकों पर ग्रीक नाटकों का प्रभाव होता तो संस्कृत नाट्य परम्परा में भी दु:खान्त नाटक प्राप्त होते । किन्तु ऐसी बात नहीं है । अत: इस आधार पर भी ग्रीक नाटक से संस्कृत नाटक प्रभाव रहित है । संस्कृत नाटकों की मात्रा अन्य दूसरे साहित्य से बहुत अधिक है । अकेले मृच्छकटिक ही ग्रीक नाटककार एसकिल्स के तीन नाटकों के बराबर हैं ।

अङ्क संस्कृत नाटक के विभागों को कहा जाता है । अङ्क के समापन के अवसर पर पात्रों का रङ्गमञ्च से चला जाना आवश्यक माना जाता है । फ्रेंच नाटकों में भी यही परम्परा है । नाटकों में अङ्कों का बँटवारा एक नवीन परम्परा है जो ग्रीक नाटकों में नहीं है । यदि ग्रीक प्रभाव से भारतीय नाटक प्रभावित होता तो भारतीय नाटकों में अङ्कों की व्यवस्था नहीं रहती ।

विदूषक की कल्पना भी ग्रीक नाटकों से भारतीय नाटकों को पृथक् करता है । ग्रीक नाटकों में Fool (मूर्ख) नामक एक पात्र रहता है जो अपने मूर्खता पूर्ण हाव-भाव से दर्शक को हँसाता रहता है जबकि संस्कृत नाट्य परम्परा का विदूषक हास्यरस के उत्पादन के साथ-साथ नायक को अनेक कार्यों में सहायता प्रदान करता है । संस्कृत नाट्य-परम्परा का विदूषक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पात्रों में से एक होता है । जबकि ग्रीक के Fool (मूर्ख) नामक पात्र के साथ ऐसी बात नहीं है । विदूषक परम्परा भी 'भारतीय नाटक पर ग्रीक प्रभाव' को अकाण्ड ताण्डव ही सिद्ध करती है । विदूषक नामक अभिनेता संस्कृत नाट्य गगनाङ्गण को मौलिक परम्परा का परिचायक है ।

संस्कृत नाटकों में अन्वितित्रय का अभाव भी यह दर्शाता है कि संस्कृत नाटक ग्रीक नाटकों से प्रभावित नहीं है । अन्वितित्रय - 1. स्थान अन्विति - से

अभिप्राय है कि जहाँ समग्र घटनाएं एक ही स्थान पर घटित होती हैं ।[1]
2. कालान्विति - से अभिप्राय जहाँ समग्र घटनाएं एक ही काल में (एक दिन के भीतर) घटित हो जाती हैं ।[2] 3. कार्यान्विति - से अभिप्राय जहाँ समग्र घटनाओं का एक ही उद्देश्य तथा प्रयोजन होता है वहाँ कार्यान्विति होती है ।[3]

भारत में कार्यान्विति के अतिरिक्त अन्य अन्वितियों की परम्परा नहीं है। यदि संस्कृत-नाटक ग्रीक-नाटकों से प्रभावित होता तो संस्कृत नाटकों में भी अन्वितित्रय की परम्परा विद्यमान रहती, किन्तु ऐसा नहीं है । भारत में तो केवल कार्यान्विति की परम्परा है जो विशेष आवश्यक होती है । निर्वहण[4] सन्धि में नाटक के विविध अङ्कों में प्रयोग होने वाली घटनाओं का एक ही कार्य के सम्पादन में आवश्यक होता है ।

---

1. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 475.
2. वही ।
3. वही ।
4. बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।
   ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥ दशरूपकम् प्र०प्र०, श्लोक सं० 48.

'कोरस' का यूनानी नाटकों में विशेष स्थान रहता है। कोरस का सम्बन्ध एक साथ गाने तथा नाचने वाले पात्रों के समूह से होता है। 'कोरस' घटनाओं एवं क्रियाओं की आलोचना तथा व्याख्या करता था। कोरस का प्रयोजन दो प्रकार का होता था। एक तो वह रङ्गमञ्च पर नृत्य और गान का प्रस्तुतीकरण करता था, जिसके कारण दर्शकों का मनोरञ्जन तथा आकर्षण स्थायी रहता था। दूसरे वह रङ्गमञ्च पर अभिनीत घटनाओं के समीक्षक के रूप में प्रस्तुत होता था। समीक्षा के द्वारा दर्शकों को घटनाओं के नाटकीय मूल्य तथा महत्त्व का समग्र परिचय प्राप्त होता था। यदि संस्कृत नाटक ग्रीक नाटकों से प्रभावित होता तो संस्कृत नाट्य जगत् में भी 'कोरस' की अवधारणा रहती, किन्तु कोरस की संस्कृत नाटकों से अनुपस्थिति भी यूनानी प्रभाव से असम्बद्ध करती है।

भारतीय रङ्गमञ्च और यूनानी रङ्गमञ्च में पर्याप्त अन्तर है। यूनान में नाटकों के अभिनय के लिए न कोई रङ्गशाला थी और न कोई परदा जैसी वस्तु ही थी, जिसके उठाने या गिराने की प्रथा रही हो। यूनान में नाटकों का अभिनय खुले मैदान में आकाश के नीचे होता था। अभिनेता पात्रों को आकर्षित करने के लिए ऐसी वेश-भूषा धारण करते थे, जिससे वे बहुत ही ऊँचे दिखायी पड़ते थे। परन्तु भारतीय नाट्य-परम्परा में ऐसी बात नहीं है। यहाँ प्राचीनकाल से प्रेक्षागृह या

नाट्य-मण्डपों में ही उनका [नाटकों] अभिनय होता रहा है । सम्राटों की राज-धानियों में रङ्गशालाएं होती थीं । यदि संस्कृत नाटक ग्रीक नाटकों से प्रभावित होता तो भारत में नाटक खुले मैदान में खेले जाते, परदे का प्रयोग नहीं होता, नाटकों के लिए नाट्य मण्डप और रङ्गशालाएं भी न होतीं ।

इस प्रकार उपर्युक्त कथनों एवं तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृत और ग्रीक नाटकों में इतने तात्त्विक भेद-प्रभेद हैं कि दोनों को स्वतंत्र और एक दूसरे से अप्रभावित कृतियाँ स्वीकार करना ही पूर्णतः न्यायसङ्गत है ।

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में विविध विद्वानों के मतों की विवेचना के पश्चात् यह कहने में तनिक भी सन्देह नहीं है कि नाटक मौलिक रूप से भारतीय वस्तु है । भारतीय नाट्य-परम्परा कहीं से आयातित नहीं है । इसका प्रादुर्भाव समग्र रूप से भारत में ही हुआ और यह नाट्य-परम्परा भारतीय धरती पर ही पुष्पित एवं पल्लवित हुई । भारतीय नाट्य गगनाङ्गण से विस्तीर्ण हुई सुगन्धि से ही भारत से इतर राष्ट्रों में नाट्योद्गम हुआ - सम्भवतः इस विचार में अतिशयोक्ति नहीं है । जिन विद्वानों ने भारतीय नाट्य को विदेशियों से प्रभावित बताने का प्रयास किया है उसको अकाण्ड-ताण्डव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता है ।

संस्कृत साहित्य में नाटकों का उद्गम बहुत पहले हो चुका था । वैदिक काल में भी नाटकों का अस्तित्व प्राप्त होता है । ऋग्वेद के सूक्तों से ऐसा प्रतीत होता है कि दर्शकों के मनोरञ्जन के उद्देश्य से सोम-विक्रय के समय एक प्रकार का अभिनय हुआ करता था । सोम के बेचने वाले शूद्र से सोम खरीदा जाता था । महाव्रत में श्वेत गोल आकार के एक चर्मखण्ड के लिए वैश्यों तथा शूद्रों में संघर्ष होता था, जिसमें वैश्यों की विजय होती थी । इस प्रकार के वर्णनों को प्रतीकात्मक कहा जा सकता है, जिसमें वैश्य प्रकाश का और शूद्र अन्धकार का द्योतक होता था ।[1]

संहिता[2] एवं ब्राह्मण[3] में 'शैलूष' शब्द प्राप्त होता है । शैलूष का अर्थ डॉ० कीथ ने गायक या नर्तक बताया है, किन्तु इससे 'नट' की द्योतना स्वीकार करने में भी कोई विरोध नहीं प्रतीत होता है । नृत्य का विवेचन तो कई स्थलों पर किया गया है । कौषीतकि ब्राह्मण में नृत्य, गीति तथा सङ्गीत की गणना मुख्य विद्याओं में की गयी है । महाव्रत में अग्नि के चारों ओर कुमारियों के नृत्य का वर्णन है तथा विवाह के समापन से पहले अग्निदेव के सम्मुख स्त्रियों के नाचने का वर्णन है ।

---

1. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 465.
2. वाजसनेयी संहिता, 30/4.
3. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/4/2.

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल जितना सङ्गीत कला से परिचित था उतना ही नाट्यकला से भी परिचित था किन्तु ऋग्वेद में भिन्न-भिन्न लोगों का आपस में वार्तालाप है, जिसे सम्वाद सूक्त कहते हैं, इसमें नाटक के तत्त्व उपस्थित हैं । सङ्गीत के आकर ग्रन्थ के रूप में सामवेद तो प्रसिद्ध ही हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाटक के विकास में जिन मूल तत्त्वों की आवश्यकता होती है, यथा - गीत, नृत्य तथा वाद्य आदि, उनका अस्तितत्त्व प्रचुर रूप से वैदिक युग में विद्यमान था ।

रामायण और महाभारत के काल में नाटकीय कोमल कला की तरफ भारतीय मनीषियों ने ध्यान दिया, इसमें कथमपि सन्देह नहीं है । शैलूष, नट और नर्तक का उल्लेख रामायण में अनेक स्थानों पर किया गया है । रामायण में वाल्मीकि एक स्थान पर कहते हैं कि जिस जनपद में राजा नहीं रहता है, उसमें नट और नर्तक प्रसन्न नहीं दिखायी देते हैं ।[1] रामायण के समय में नाटक कला का अस्तित्व असंदिग्ध रूप से प्रमाणित होता है । रामायण में नट और नर्तकों के समाज, अर्थात् गोष्ठी और मनोरंजन का वर्णन मिलता है ।[2]

---

1. नाराजके जनपदे प्रहृष्ट नटनर्तका: । वाल्मीकि रामायण 2/67/15.
2. बाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड 67/15 तथा 69/3.

महाभारत में भी नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।[1] पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'शिलालि'[2] तथा कृशाश्व[3] के द्वारा रचित नट सूत्रों का उल्लेख किया है । इससे यह प्रमाणित होता है कि नटों की शिक्षा के लिए स्वतन्त्र सूत्रग्रन्थों की रचना हो चुकी थी, जो इस काल में नाटक के प्रचार का द्योतक है । पतञ्जलि ने महाभाष्य में इस सन्दर्भ में काफी उपयोगी बातें बताई हैं । कंसं घातयति (कंस को मारता है), बलिं बन्धयति (बलि को बाँधता है) । इसमें प्रयोग की जाने वाली वर्तमान काल की क्रिया का समाधान करते हुए उन नटों (सौभिक या सौनिक) का उल्लेख किया है, जो अपरोक्ष रूप से सभी के सम्मुख कंस को मारते हैं एवं बलि को बाँधते हैं । यहाँ पर पतञ्जलि ने केवल इन नाटकों के नाम का ही उल्लेख नहीं किया है अपितु इनके अभिनय को भी इङ्गित किया है । पतञ्जलि द्वारा इन नाटकों का उल्लेख इस बात को प्रमाणित करता है कि विक्रम से पूर्व द्वितीय शताब्दी में नाटक का अभिनय दर्शकों के मनोरञ्जन का एक अत्यन्त उत्तम तथा सर्वप्रिय साधन था ।

---

1. आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायिकाः । बाल्मीकि रामायण, 2/67/15.

2. पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः, अष्टाध्यायी, 4/3/110.

3. कर्मन्दकृशाश्वादिनिः, 4/3/111.

वात्स्यायन, जो कि द्वितीय शताब्दी में हुए थे, अपने कामसूत्र में 'नागरक' के मनोरञ्जन का उल्लेख करते समय पक्ष या महीने के किसी दिन सरस्वती के मन्दिर में समाज (उत्सव) के होने तथा उसी समय बाहर से पधारे हुए नटों के द्वारा अभिनय किये जाने वाले नाटकों के प्रदर्शन का उल्लेख किया है ।[1]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में एक स्थान पर उल्लेख है कि जब कोई नाट्य मण्डली दूसरे देश से रङ्गमञ्च पर नाटक का प्रदर्शन करने के लिए आती थी तो उसे 5 पण राज्य को देना होता था । राजा का यह कर्त्तव्य था कि ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति करे, जो स्त्रियों को अभिनय, लिखना, चित्रकला, वाद्य (विशेषतः वीणा, वेणु और मृदङ्ग), हार बनाना, अपने शरीर को अलङ्कृत करना सिखा सकें और इन सब का खर्च राज्य को वहन करना पड़ता था ।[2]

उपर्युक्त उल्लेखों से यह प्रमाणित होता है कि वैदिक काल से लेकर विक्रम के समय तक नाटकों का प्रचलन इन देशों में था । नटों की शिक्षा के लिए भी ग्रन्थ रचे

---

1. पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्याः भवने नियुक्तानां समाजः ।
   कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणिकं दद्युः । (कामसूत्र)

2. संस्कृत नाटक समीक्षा, डॉ० इन्द्रपाल सिंह, प्रकाशक, साहित्य निकेतन कानपुर, पृ० 8.

गए थे । विक्रम के समय में हमारे आद्य नाटककार महाकवि कालिदास का प्रादुर्भाव हुआ और तभी से नाटकों की रचना एवं उनके प्रदर्शन की परम्परा अविच्छिन्न रूप से भारतवर्ष में चल रही है । नाटक की कमनीय कला भारत की अपनी स्वयं की सम्पदा है किसी दूसरे देश से उधार ली हुई नहीं है ।

संस्कृत नाट्य आचार्यों की प्रज्ञा सिद्धान्तों को निष्पन्न करने में जितना दक्ष है उतना ही उस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में देने में भी निपुण है । नाट्यो-द्गम को अगर भारतीय मनीषियों का सैद्धान्तिक पक्ष माना जाता है तो नाट्य मण्डप को उनका व्यवहारिक पक्ष स्वीकार करना पड़ता है । नाट्द-मण्डप नटों, नर्तकों, गायकों आदि की प्रयोगशाला है । रङ्गमञ्च का उदय प्राचीनता में नाटक के अभिनय से कम प्राचीन नहीं है बल्कि इसे यों कहा जा सकता है कि नाट्य अभिनय के साथ-साथ नाट्य-मण्डप का उदय हुआ । समग्र साधनों से परिपूर्ण भारतीय रङ्ग-मञ्च अखिल विश्व के रङ्गमञ्चों की तुलना में अपना अनुपम स्थान रखता है । भार-तीय रङ्गमञ्च की अपनी विशिष्टता है जिसके कारण उसका प्रभाव बृहत्तर भारत [जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों] के रङ्गमञ्चों पर अद्यावधि परिलक्षित होता है ।

रङ्गमञ्च के पुरातन नाम के रूप में रङ्गशाला अथवा प्रेक्षागृह शब्दों का प्रयोग होता था । भारतीय नाटक ने अपने शैशवावस्था का प्रारम्भ खुले गगन में

प्रारम्भ किया, किन्तु विघ्नों के कारण नाट्य के आचार्यों ने अनुभव किया कि इसे [नाटक को] बंद स्थान में खेला जाय । नाटक के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने नाट्य-शास्त्र के प्रथम अध्याय में बताया कि सर्वप्रथम अभिनीत नाटक 'महेन्द्रविजय' था ।[1] जिसमें देवों की विजय तथा दानवों की पराजय का प्रदर्शन किया गया । अपने पराजय को देखकर राक्षसगण हिंसा [विघ्न] करने लगे । इस विघ्न और कलह से बचने के लिए ब्रह्मा जी की आज्ञा से विश्वकर्मा ने प्रेक्षागृह निर्मित किया ।[2]

आचार्य भरतमुनि ने प्राचीन भारत के प्रेक्षागृह के नाट्य-मण्डप तीन प्रकार के बताए हैं, जो अधोलिखित हैं -

क. विकृष्ट,

ख. चतुरस्त्र, एवम्

ग. त्र्यस्त्र ।

---

1. ततस्तस्मिन् ध्वजमहे निहतासुरदानवे ।
   प्रहृष्टामरसङ्कीर्णे महेन्द्रविजयोत्सवे ॥

   पूर्वं कृता मया नान्दी ह्याशीर्वचनसंयुता ।
   अष्टाङ्गपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता ॥ ना०शा०, प्र०अ०, श्लोक सं० 55-56.

2. ततोऽचिरेण कालेन विश्वकर्मा महच्छुभम् ।
   सर्वलक्षणसम्पन्नं कृत्वा नाट्यगृहं तु सः ॥ वही, श्लोक सं० 80.

इन तीनों नाट्य-मण्डपों के परिमाण तीन प्रकार के होते हैं, जो अधोलिखित हैं -

क. ज्येष्ठ [बड़ा]

ख. मध्य [मझला]

ग. अवर [सबसे छोटा][1]

इन नाट्य गृहों का परिमाण हाथ तथा दण्ड के आधार पर निश्चित किया जाता है । इनके माप हैं एक सौ आठ, चौंसठ तथा बत्तीस हाथ की एक भुजा । एक सौ आठ हाथ वाला प्रेक्षागृह ज्येष्ठ, चौंसठ हाथ वाला प्रेक्षागृह मध्य, तथा बत्तीस हाथ वाला प्रेक्षागृह अवर [कनिष्ठ] कहलाता है । देवताओं का नाट्यगृह ज्येष्ठ, राजाओं का मध्यम तथा शेष सामान्य प्रजाजन के लिए अवर नाट्यगृह का निर्माण किया जाना चाहिए । इन समस्त प्रेक्षागृहों में मध्यम परिमाण का प्रेक्षागृह प्रशस्त होता है क्योंकि उसमें पाठ्य तथा गीत को सुखपूर्वक सुना जा सकता है । इस

---

1. विकृष्टश्चतुरश्रश्च त्र्यश्रश्चैव तु मण्डपः ।

तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथा वरम् ॥

ना०शा०, द्वि०अ०, श्लोक सं० 8.

प्रकार प्रेक्षागृहों के विकृष्ट, चतुरस्त्र तथा त्र्यस्त्र नामक तीन प्रकार के भेद बतलाए गये हैं ।[1]

---

1. प्रमाणमेषां निर्दिष्टं हस्तदण्डसमाश्रयम् ।
   शतं चाष्टौ चतुःषष्टिर्हस्ता द्वात्रिंश देव च ॥

   अष्टाधिकं शतं ज्येष्ठं चतुःषष्टिस्तु मध्यमम् ।
   कनीयस्तु तथा वेश्म हस्ता द्वात्रिंशादिष्यते ॥

   देवानां तु भवेज्जयेष्ठं नृपाणां मध्यमं भवेत ।
   शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीयः संविधीयते ॥

   प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रशस्तं मध्यमं स्मृतं ।
   तत्र पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यन्तरं भवेद् ॥

   प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारो विधिः स्मृतः ।
   विकृष्टश्चतुरस्त्रश्च त्र्यस्त्रश्चैव प्रयोक्तृभिः ॥

   ना०शा०, द्वि०अ०, श्लोक 9-13.

भरतमुनि ने बताया कि नाट्यगृहों का परिमाण हाथ तथा दण्ड के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिए । अब प्रश्न उठता है कि हाथ और दण्ड क्या हैं ? इनके लक्षण क्या हैं ? प्रेक्षागृहों के प्रमाण तथा लक्षण भरतमुनि ने अधोलिखित प्रकार से बताया है ।

प्रेक्षागृह के लक्षण तथा प्रमाण के विषय में नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में बड़ा ही सुस्पष्ट विवेचन किया गया है । अणु, रज, बाल, लीख (जूं का अण्डा), जूं, जौ, अङ्गुली, हस्त तथा दण्ड ये नौ प्रकार, नाप के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए परिमाप हैं ।[1]

आठ अणुओं का एक रज होता है, आठ रजों का एक बाल होता है, आठ बालों की एक लीख होती है, आठ लीखों की एक जूं होती है, आठ जूँ से एक जौ होता है तथा आठ जौ का एक अङ्गुल होता है । चौबीस अङ्गुल का एक हाथ

---

1. प्रमाणं यच्च निर्दिष्टं लक्षणं विश्वकर्मणा ।
   प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तच्चैव हि निबोधत ।।
   अणू रजश्च लिक्षायूका यवस्तथा ।
   अङ्गुलश्च तथा हस्तो दण्डश्चैव प्रकीर्तितः ।। ना०शा०, द्वि०अ०, पृ० 37.

तथा चार हाथ का एक दण्ड कहलाता है । इन्हीं प्रमाण-विधियों के अनुसार प्रेक्षा गृहों के आकार (प्रमाण) का निश्चय करना चाहिए ।[1]

पूर्वोल्लिखित नाट्य-मण्डपों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है -

क. विकृष्ट नाट्य-गृह आकार-प्रकार में सबसे बड़ा होता है । इसका परिमाण 108 हाथ होता है । यह नाट्य-गृह केवल देवताओं के लिए ही होता है । इसके आकार के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं प्राप्त होता है । तथापि ऐसी संभावना व्यक्त की जाती है, कि यह गोलाकार होता होगा ।[2]

ख. चतुरस्त्र नाट्य-मण्डप चौंसठ हाथ का होता था । इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह चौकोर होता होगा । इस नाट्य-गृह के क्षेत्र का समान विभाग कर तथा उसे सूत्र से (चारों ओर समान 32 x 32) नापते हुए उसके बाहरी भाग से

---

1. अण्वोऽष्टौ रज: प्रोक्तं तान्यष्टौ बाल उच्यते ।
   बालास्त्वष्टौ भवेल्लिक्षा यूका लिक्षाष्टकं भवेत् ।।
   यूकास्त्वष्टौ यवो ज्ञेयो यवास्त्वष्टौ तथाङ्गुलम्।
   अङ्गुलानि तथा हस्तश्चतुर्विंशतिरूच्यते ।।
   चतुर्हस्तो भवेद्दण्डो निर्दिष्टस्तु प्रमाणत: ।
   अनेनैव प्रमाणेन वक्ष्याम्येषां विनिर्णयम् ।। ना०शा०, द्वि०अ०, पृ० 37.
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ० 479.

सटी हुई ईंटों से दृढ़ दीवार उठानी चाहिए । इसमें भीतर की ओर दस स्तम्भों का निर्माण किया जाता है । विकृष्ट की अपेक्षा छोटा मण्डप होने से इसमें प्रेक्षकों को बैठने के लिए सीढ़ीनुमा बैठक का निर्माण किया जाता है, जिसे लकड़ी और ईंट से बनाया जाता है । ये सीढ़ियाँ धरातल से एक हाथ ऊपर उठते हुए इतनी ऊँचाई तक चली जाएँ जहाँ से रङ्गपीठ सीधा दिखायी दे सकता हो ।[1] नेपथ्यगृह की

---

1. चतुरस्त्रं समं कृत्वा सूत्रेण प्रविभज्य च ।
   बाह्यत: सर्वत: कार्या भित्ति: श्लिष्टेष्टका दृढा ॥

   तत्राभ्यन्तरत: कार्या: रङ्गपीठोपरि स्थिता: ।
   दश प्रयोक्तृभि: स्तम्भा: शक्ता: मण्डपधारणे ॥

   स्तम्भानां बाह्यतश्चापि सोपानाकृतिपीठकम् ।
   इष्टका - दारुभि: कार्यं प्रेक्षकाणां निवेशनम् ॥

   हस्त प्रमाणैरुत्सेधैर्भूमिभागसमुत्थितै: ।
   रङ्गपीठावलोक्य च कुर्यादासनजं विधिम् ॥

   ना०शा०, द्वि०अ०, पृ० 56-57.

रङ्गपीठ पर खुलने वाले एक जैसे (दो) दरवाजे रखना चाहिए । रङ्गमञ्च के सामने वाले भाग में प्रेक्षकों के प्रवेशार्थ एक अन्य दरवाजा बनवाना चाहिए और नटों के प्रवेशार्थ निर्मित द्वार का मुँह रङ्गमञ्च के सम्मुख रहना चाहिए । चतुरस्त्र नाट्यगृह का रङ्गपीठ आठ हाथ का चौकोन (8 x 8) समतल और वेदिका से युक्त रङ्गपीठ बनाना चाहिए ।[1]

त्र्यस्त्र नाट्य मण्डप की प्रत्येक भुजा 32 हाथ की होनी चाहिए । त्र्यस्त्र नाट्यमण्डप त्रिकोणाकृति का होता है एवं इसके मध्य में बनने वाले रङ्गपीठ की आकृति भी त्रिकोणात्मक होती है । नाट्य-गृह के प्रवेश-द्वार का इसी कोण में निर्माण करना चाहिए तथा रङ्गपीठ के पृष्ठभाग में दूसरा द्वार (पात्रों के प्रवेश

---

1. नेपथ्यगृहकञ्चैव ततः कार्यं प्रयत्नतः ।
   द्वारञ्चैकं भवेत्तत्र रङ्गपीठ-प्रवेशने ॥
   जनप्रवेशनं चान्यदाभिमुख्येन कारयेत् ।
   रङ्गस्याभिमुखं कार्यं द्वितीयं द्वारमेव तु ॥
   अष्टहस्तं तु कर्तव्यं रङ्गपीठं प्रमाणतः ।
   चतुरस्त्रं समतलं वेदिकासमलङ्कृतम् ॥ ना०शा०, द्वि०अ०, पृ० 58-59.

आदि के लिए जो कि नेपथ्य से हो। भी इसी प्रकार का बनवाना चाहिए ।
भित्ति एवं स्तम्भों के विषय में जो विधि चतरस्त्र नाट्य गृह के लिए लिख चुका हूँ
वही त्र्यस्त्र नाट्य गृह के लिए भी प्रयुक्त होती है ।[1]

रङ्गमञ्च के सबसे पहले भाग का नाम रङ्गशीर्ष होता है, जिसे 8 हाथ लम्बा
तथा 4 हाथ चौड़ा होना चाहिए । इसके ठीक आगे वाले भाग को नेपथ्यशाला
कहा जाता है ।[2] रङ्गशीर्ष से नेपथ्यगृह में आने के लिए एक दरवाजा का

---

1. त्र्यश्रं त्रिकोणं कर्तव्यं नाट्यवेश्म प्रयोक्तृभिः ।
   मध्ये त्रिकोणमेवास्य रङ्गपीठं तु कारयेत् ॥
   द्वारं तेनैव कोणेन कर्तव्यं तस्य वेश्मनः ।
   द्वितीयञ्चैव कर्तव्यं रङ्गपीठस्य पृष्ठतः ॥
   विधिर्यश्चतुरश्रस्य भित्तिस्तम्भसमाश्रयः ।
   स तु सर्वः प्रयोक्तव्यः त्र्यश्रस्यापि प्रयोक्तृभिः ॥ ना०शा०, द्वि०अ०,
   श्लोक सं० 106-108.

2. तस्यार्धेन विभागेन रङ्गशीर्षं प्रकल्पयेत् ।
   पश्चिमे च विभागेऽथ नेपथ्यगृहमादिशेत्॥ वही, श्लोक सं० 38.

निर्माण किया जाता है और इसी का उपयोग पात्रों के आने जाने के लिए किया जाता चाहिए । रङ्गपीठ के चारों ओर डेढ़ हाथ ऊँची मत्तवारणी (बरामदा) होनी चाहिए ।[1]

रङ्गशीर्ष के बनावट के सम्बन्ध में जो विधान नाट्य-शास्त्र में वर्णित है उसके अनुसार इसे न तो कछुए की पीठ की तरह होना चाहिए और मत्स्य पीठ की तरह, अपितु इसे दर्पण के समान समतल तथा चिकना होना चाहिए ।[2]

सभी प्रकार के नाट्यगृहों का निर्माण करने से पहले उचित भूमि का चुनाव करना चाहिए । तत्पश्चात् भूमि का शोधन स्वस्थ बैलों द्वारा हल चलाकर हड्डी,

---

1. रङ्गपीठस्य पार्श्वे तु कर्त्तव्या मत्तवारणी ।
   चतुःस्तम्भसमायुक्ता रङ्गपीठप्रमाणतः ॥
   अध्यर्धहस्तोत्सेधेन कर्त्तव्या मत्तवारणी ।
   उत्सेधेन तयोस्तुल्यं कर्त्तव्यं रङ्गमण्डलम् ॥ ना०शा०, द्वितीय अ०, श्लोक सं० 67-68.

2. कूर्मपृष्ठं न कर्त्तव्यं मत्स्यपृष्ठं तथैव च ।
   शुद्धादर्शतलाकारं रङ्गशीर्षं प्रशस्यते ॥ वही, श्लोक सं० 77.

कील आदि अपवित्र पदार्थों को भूमि से निकाल देना चाहिए । तदनन्तर उजले दृढ़ सूत्र से भूमि का नाप करना चाहिए । ऐसा करते समय पर्याप्त सतर्कता बरतनी चाहिए ताकि न तो सूत्र हाथ से छूटने पाये और न ही टूटने पाये क्योंकि ऐसा होने पर किसी अमङ्गल की आशङ्का बनी रहती है ।

नाट्य-मण्डप पर्वत की गुफा के आकार का होना चाहिए और द्विभूमि (पहले नीचा और फिर क्रमशः ऊँचा होने वाला या दुमञ्जिला) बनाया जाना चाहिए । इसमें झरोखे या खिड़कियों से हल्की-हल्की हवा आती रहनी चाहिए । यह तेज हवा से रहित (निर्वात) और गम्भीर शब्दों को गुँजाने वाला होता है । अर्थात् जिसमें उच्चारण किये गये शब्द की प्रतिध्वनि होती रहे । शिल्पी इसको निर्वात ही बनाए क्योंकि ऐसे मण्डप में सभी प्रकार के वाद्यों की ध्वनि में स्वरगत गाम्भीर्य बना रहता है ।[1]

---

1. कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्यमण्डपः ।
   मन्दवातायनोपेतो निर्वातो धीरशब्दवान् ॥
   तस्मान्निवातः कर्त्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ।
   गंभीरस्वरता येन कुतपस्य भवेदिति ॥
   
   ना०शा०, द्वि०अ०, श्लोक सं० 85-86.

गौरवपूर्ण संस्कृत जगत् का गुरुतम उपादान नाटक ही है । संस्कृत काव्य-गगनाजिर में देदीप्यमान सूर्य की तरह सम्पूर्ण संसार में अपनी आभा को विस्तीर्ण करने के कारण ही इस [नाट्य] गरिमामय अङ्ग का विशेष महत्त्व है । कविकुल गुरु महाकवि कालिदास द्वारा विरचित 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' नाटक ही तो है, जिसने संस्कृत साहित्य की सुष्ठु सुषमा, कमनीय कल्पना, मनोहारी रस-परिपाक तथा अन्यत्र अनुपलब्ध अद्वितीय उपमा को संसार के मनीषियों के सम्मुख अभिव्यक्त करके नाटक के महत्त्व को स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया ।

नाट्य जगत् का मूल्याङ्कन जब हम इस आलोक में करते हैं कि श्रव्य काव्य के आनन्द से वञ्चित रह जाने वाला व्यक्ति भी नाटक का मनोहारी अभिनय देखकर अलौकिक आनन्द की प्राप्ति करता है, तब नाटक का महत्त्व और बढ़ जाता है । श्रव्य काव्य श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा विद्वत्समुदाय को आनन्दित करती है जबकि नाटक चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा न केवल विद्वत्समुदाय को अपितु समग्र जनमानस को आह्लादित करता है । काव्य में आनन्द की प्राप्ति और रसानुभूति के लिए अर्थों का समझना अपरिहार्य होता है, जबकि नाटक में अर्थ को विधिवत् न जानते हुए भी पात्रों के वेश-भूषा, साज-सज्जा, हाव-भाव को

देखने मात्र से ही नाटक में प्रेक्षकों की प्रवृत्ति हो जाती है ।

जैसे विविध रङ्गों के सम्मिश्रण से चित्र, दर्शकों के चित्त में रस का स्रोत बहाता है वैसे ही सुसज्जित रङ्गमञ्च, वेश-भूषा आदि औचित्यपूर्ण उपादानों के सामाजिकों के हृदय में अलौकिक आनन्द निष्पन्न करते हुए चिरस्मरणीय प्रभाव छोड़ता है । संस्कृत साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ आलङ्कारिक विद्वान् वामन ने इसीलिए काव्य में रूपक (नाटक) को विशेष महत्त्व प्रदान किया है ।[1]

नाटक में रस के अनुभूति के लिए वातावरण स्वतः ही उपस्थित हो जाता है । रसानुभूति के लिए कल्पना करने की आवश्यकता नहीं रहती है । इन्हीं कारणों से सामान्य मनुष्यों में भी नाटक के लिए विशेष आकर्षण पैदा होता है । कवित्व का चरमोत्कर्ष नाटक को कहा जाय तो सम्भवतः औचित्यपूर्ण ही होगा जैसा किसी ने कहा भी है - नाटकान्तं कवित्वम् ।

नाटक के महत्त्व की चर्चा करते हुए आचार्य भरतमुनि ने नाटकों को सार्ववर्णिक कहकर पञ्चम वेद माना है । अन्य चार वेद तो केवल द्विज जातियों

---

1. सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः । तद्धि चित्रं चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात् ।
वामन, काव्यालङ्कार सूत्र 1/330-31.

के लिए ही उपादेय होते हैं परन्तु रूपक (नाट्य) का उपयोग सभी लोगों के लिए है ।[1] प्रत्येक व्यक्ति नाट्यानन्द का अधिकारी माना जाता है ।

नाटक के महत्त्व का मूल्याङ्कन करते समय नाटक में समाहित विषय वस्तु की उपेक्षा नहीं की जा सकती है । नाटक में ऐसा कोई विषयवस्तु नहीं है जिसका समावेश न किया गया हो । नाटक को आचार्य भरतमुनि ने तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन कहा है ।[2]

नाटक कम शक्ति वाले के हृदय में शक्ति का संचार करता है, वीरों के हृदय में उत्साह बढ़ाता है, मूर्खों को बुद्धि प्रदान करता है, विद्वानों में विद्वता का उत्कर्ष करता है । नाटक को लोकवृत्त का अनुकरण कहा गया है ।[3]

---

1. न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्र जातिषु ।
   तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ॥   ना०शा०, प्र०अ०, श्लोक सं० 12.

2. त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् । वही, श्लोक सं० 107.

3. लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।
   वही, श्लोक सं० 112.

नाटक के विषय में यह उक्ति तो प्रसिद्ध ही है कि यह भिन्न रुचि वाले लोगों के लिए एक सामान्य मनोरञ्जन का साधन है ।[1] भरतमुनि ने भी लिखा है कि नाटक धनियों के लिए मनोरञ्जन, दुःखितों के लिए आश्वासन, व्यवसायियों के लिए आय का स्रोत और व्याकुलों के लिए शान्ति प्रदान करने वाला होता है ।[2]

विश्व की भाषाओं तथा साहित्य के लिए संस्कृत भाषा भारतीयों की एक विलक्षण देने है । संस्कृत भाषा में सभ्यता के उद्गम के समय से ही दार्शनिकता और भाव गाम्भीर्य की एक अलौकिक झलक परिलक्षित होती है । संस्कृत भाषा देववाणी के महत्पद पर आसीन होकर अद्यावधि करोड़ों लोगों के हृदय को आह्लादित कर रही है ।

संस्कृत काव्य-परम्परा के अन्तर्गत नाटक की अपनी विशिष्ट परम्परा

---

1. नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम् ।

2. ईश्वराणां विलासाश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च ।

अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्विग्नचेतसाम् ॥ ना०शा०, प्र०अ०, श्लोक सं०111.

रही है । नाटक की विशेषताओं पर जब ध्यान केन्द्रित होता है तो एक बात स्पष्ट रूप से हमारे सम्मुख उपस्थित होती है कि नाटक में श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षु-रिन्द्रिय दोनों को समान अवसर प्राप्त होता है । ऐसा साहित्य के किसी अन्य क्षेत्र में नहीं देखने को मिलता है । श्रव्य-काव्य में कर्णेन्द्रिय पर ही अधिक बल पड़ता है । नाट्य-साहित्य दो इन्द्रियों के माध्यम से अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है । श्रव्य-काव्य को ग्रहण करने में केवल शिक्षित लोग ही समर्थ होते हैं जबकि नाट्य में अशिक्षित भी । यह बात पृथक् है कि शिक्षित और अशिक्षित दोनों में सामर्थ्य की मात्रा न्यूनाधिक हो सकती है ।

सूक्ष्म की तुलना में मूर्त वस्तु सदैव अधिक प्रभावोत्पादक होती है । मनुष्य द्वारा बताया गया वर्णन चाहे जितना ही रोचक क्यों न हो, परन्तु चित्र के सम्मुख वह प्रभावित करने के मामले में कथमपि नहीं ठहर सकता है ।

आँख और कान इन दोनों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा दृश्य काव्य,नाटक में जो रसानुभूति होती है उनमें सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि नाटक बाह्य जगत् से ही सम्बन्धित होता है । यद्यपि गीति काव्य में भावों की विद्यमानता रहती है, तथापि उनमें मानवता का इतना व्यापक प्राबल्य नहीं परिलक्षित होता है जितना कि दृश्य-काव्य में ।

संस्कृत नाट्य साहित्य की विशेषताओं पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत नाटकों का सुखान्त होना भी इसकी एक प्रमुख विशेषता है। सुखान्त नाटकों की यह सार्वभौमिक प्रक्रिया इसके विशेषता के क्षेत्र में पर्याप्त महत्त्व रखती है। 'ऊरुभङ्ग', कर्णभार, आदि एक दो नाटकों को छोड़-कर अन्य समस्त नाटक सुखान्त ही हैं। संस्कृत नाटकों की यूरोपीय नाटकों से तुलना करने पर यह एक भिन्न विशेषता प्रतीत होती है।

यद्यपि कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने सुखान्त नाटकों को संस्कृत साहित्य की एक कमी मानी है। इन विद्वानों का तर्क है कि सुखान्त नाटक व्यक्ति के आनन्द से सम्बन्ध रखते हैं, और हम उनकी विभिन्न मनोवृत्तियों एवं सामाजिक कुरीतियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत दु:खान्त नाटकों में जीवन का गम्भीर पक्ष स्वयमेव आभासित होता है और वह जीवन के गम्भीर, उन्नत एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष से सम्बन्ध रखते हुए हृदय के अन्तरतम् केन्द्र को प्रभावित करती है।

किन्तु भारतीय विद्वानों की यह अवधारणा है कि दुखान्त नाटक निम्नकोटि की स्थिति को द्योतित करते हैं। प्रेक्षकों के सम्मुख निर्दयता और बर्बरता का चित्रण दु:खान्त नाटकों में प्रस्तुत किये जाते हैं। वध एवं मारकाट के दृश्य सामाजिकों के अध:पतन के कारण बन सकते हैं। इसी विचार को दृष्टिगत

करके प्राचीन भारतीय मनीषियों ने नाट्य साहित्य को सुखान्त रखने का प्रयत्न किया ।

सुखान्त ग्रन्थों (भारतीय नाटक) की एक विशेषता यह भी है कि यह संसार के परिवर्तनशीलता के सिद्धान्त को वास्तविक ढंग से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है । अन्त में सुखान्त दृश्य का प्रदर्शन करने के लिए नाटक के मध्य में दु:खान्त वृत्तियों का यथास्थान समावेश रहता है जिसकी कल्पना करके प्रेक्षक संसार के क्लेशों का अपने समक्ष चित्रण देखते हैं । जैसे घनघोर अँधेरी रात के बाद सुन्दर एवं आनन्ददायक सूर्योदय की आशा की जाती है वैसे ही भयङ्कर स्थितियों के बाद भी मानव यह आशा करता है कि वह इस विषम सङ्कट को पार कर पुन: सुखमय स्थिति व्यतीत करेगा । अत: दु:खान्त स्थितियों के बाद नाटक के अन्त में उसकी सुखमय समाप्ति ही उचित है ।

भारतीय नाट्यशास्त्र की विशेषताओं में रस और वर्ण्य विषय की अपनी एक निराली विशेषता है । भारतीय नाटक में वर्ण्य विषय और रस का यथोचित विधान है । यदि एक रूपककार इतिवृत्त के आनुक्रमिक विकास की उपेक्षा करके रस के उत्थान में व्यापृत रहता है तो उसकी रचना सक्रिय नहीं हो पाती है और वह सामाजिकों का प्रेमभाजन नहीं बनता है किन्तु इसके विरुद्ध यदि

वह इतिवृत्त के उद्घाटन में ही अपनी शक्ति को समर्पित करता हुआ रस की उपेक्षा कर देता है तब भी उसकी रचना रसिकों को नहीं रास आती है और वह रूपककार अपने उद्देश्य से विरत हो जाता है ।

संस्कृत नाटक की विशेषताओं में नायक, नायिका, अन्य पात्र और यहाँ तक कि भाषायी व्यवस्था भी सुनिश्चित है । नाटक में नायक कैसा रहना चाहिए? नायिका कैसी रहनी चाहिए? कौन सी भाषा किस पात्र को बोलनी चाहिए? इन सब व्यवस्थाओं का सुव्यवस्थित रूप देखने को मिलता है ।

इस प्रकार संस्कृत नाटक की अनेक विशेषताओं में से सुखान्त नाटक की विशेषता, रस, छन्द, अलङ्कार, पात्र और अभिनय की विशेषता मुख्य विशेषता है । सम्पूर्ण विशेषताओं का वर्णन, विस्तार भय से नहीं किया जा रहा है ।

पिछले पृष्ठों पर नाटक के उद्भव के सम्बन्ध में जिन साक्ष्यों को प्रस्तुत किया गया है, उनके आधार पर यह सिद्ध होता है कि भारत में नाटक अथवा उसके अङ्ग किसी न किसी रूप में रामायण, महाभारत, पाणिनि, पतञ्जलि और वात्स्यायन के समय में प्रचलित थे । नाट्यशास्त्र से यह स्पष्ट है कि 'अमृतमन्थन' नामक समवकार और 'त्रिपुरदाह' नामक डिम का प्रथम बार मञ्चन किया गया, इसका

भी साक्ष्य पिछले पृष्ठों पर प्रस्तुत कर चुका हूँ । नाट्यशास्त्र का सैद्धान्तिक विवेचन स्वत: रूपक कला की तत्कालीन उन्नत स्थिति को प्रमाणित करता है । अब तक जो साक्ष्य प्राप्त होता है उनके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि ईसवी सन् तक भारतीय नाट्य कला उन्नत एवं विकसित हो चुकी थी ।

अभी तक जिन नाटककारों की नामावलि प्राप्त हुई है उनमें भास को प्रथम नाटककार माना गया है जिनकी कीर्ति-लता कालिदास से पूर्व ही चारों तरफ फैल चुकी थी । भास के समय से ही संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत नाटककारों का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है । कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना में स्र स्पष्ट रूप से भास का उल्लेख किया है[1] जिससे यह सिद्ध होता है कि भास, कालिदास के पूर्ववर्ती थे ।

बाणभट्ट ने भी 'हर्षचरित' में भास की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि भास के रूपकों का आरम्भ सूत्रधार से ही होता है । अपेक्षाकृत पात्रों की संख्या

---

1. "प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवे: कालिदासस्य कृतौ बहुमान:" - मालविकाग्निमित्र, प्रस्तावना ।

अधिक है । भास के नाटकों में पताका स्थानकों का प्रयोग है ।[1] इससे यह स्पष्ट है कि बाणभट्ट ने भी भास को पूर्ववर्ती स्वीकार किया है ।

इसी प्रकार दण्डी[2], भामह[3], वाक्पतिराज[4], राजशेखर[5] और

---

1. "सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
   सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ हर्षचरित, श्लोक सं0 15.

2. दण्डी ने अपने काव्यादर्श 2/226 में यह पङ्क्ति उद्धृत किया है -
   'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः'
   यह श्लोक भास के बालचरित 1/15 और चारुदत्त 1/19 में मिलता है ।

3. भामह ने 'काव्यालङ्कार' में (अध्याय 4 में) न्याय विरोध के उदाहरण में 'हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम' यह पद उद्धृत किया है । यही पद प्राकृत रूप में 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के प्रथम अङ्क में प्राप्त होता है -
   'अणेण मम भादा हदो, अणेण मम पिदा, अणेण मम सुदो ---'
   (श्लोक आठ के बाद)

4. भासम्मि जलणमित्ते कुंतीदेवे च यस्य रघु आरे ।
   सौबन्धवे अ बन्धम्मि हारीयन्दे अ आणन्दो ॥ (वाक्पतिकृत-गउडवहो)

5. भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
   स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥ - राजशेखर

अभिनवगुप्त[1] आदि काव्यकारों एवं काव्यशास्त्रियों की कृतियों में भास के व्यक्तित्व का गुणगान किया गया है ।

स्वर्गीय श्री टी० गणपति शास्त्री जी ने सर्वप्रथम भास के नाटकों को प्रकाश में लाने का स्तुत्य एवं महान् कार्य किया । टी० गणपति शास्त्री जी ने भास के 13 नाटकों का अन्वेषण करके उन्हें 'त्रयोदश त्रिवेंद्रम् नाटकानि' नाम से 1909 में प्रकाशित किया ।[2] टी० गणपति शास्त्री ने 13 नाटकों[3] के प्रकाशन के

---

1. क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम् ।

अभिनवगुप्त, 'भरतनाट्यविवृति'

2. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 679.

3. भास के 13 नाटक चक्र इस प्रकार हैं -

| | | |
|---|---|---|
| 1. दूतवाक्य | 5. मध्यम व्यायोग | 9. अविमारक |
| 2. कर्णभार | 6. पंचरात्र | 10. प्रतिमा |
| 3. दूतघटोत्कच | 7. अभिषेक | 11. प्रतिज्ञायौगन्धरायण |
| 4. ऊरुभङ्ग (दुखान्त) | 8. बालचरित | 12. स्वप्नवासवदत्ता |

एवम् 13. चारुदत्त ।

साथ ही भास का समय भी कालिदास से पूर्व माना है । भास के जो 13 नाटक स्व0 टी0 शास्त्री ने प्रकाशित किया उनको कुछ विद्वानों ने स्वीकार ही नहीं किया ।[1] वार्नेट महोदय ने इन नाटकों के कर्त्ता को किसी दक्षिण कवि को ही माना है ।[2] कतिपय विद्वानों ने इन नाटकों को केरल के कवियों द्वारा संशोधित स्वीकार किया है ।[3]

भास के 13 नाटकों के सन्दर्भ में आधुनिक खोजों के आधार पर स्पष्ट होता है कि उक्त तेरहों नाटकों के कर्त्ता भास ही हैं और वे किसी प्रकार के कटे-छँटे, संशोधित, संक्षिप्तीकरण आदि के रूप में न होकर अपने मूल रूप में प्राप्त होते हैं ।[4]

भास के समय को कतिपय विद्वानों ने ईसा की तीसरी शताब्दी में रखने का प्रयास किया है परन्तु नवीन अनुसन्धानों से स्पष्ट होता है कि महाकवि

---

1. ए0डी0 पुसलकर, भास, ए स्टडी, पृष्ठ 23-60.
2. वार्नेट - बुलेटिन आफ स्कूल आफ ओरियन्टल स्टडीज 3, पृ0 35, 520-521.
3. थोम्स - जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, पृष्ठ 826 (1928).
4. डा0 व्यास - संस्कृत कवि दर्शन, पृ0 228-230.

भास, नाट्यशास्त्रकार भरत तथा काम सूत्रकार वात्स्यायन से भी पहले हुए थे ।[1] लोकमान्य तिलक भास को कालिदास से पहले ही स्वीकार करते हैं ।[2] कतिपय विद्वानों ने भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है ।[3] नारायण काण्व का समय 53-41 ई०पू० था ।[4]

जब तक भास के नाटकों का प्रकाशन नहीं हुआ था तब तक शूद्रक को ही संस्कृत का प्रथम नाटककार और 'मृच्छकटिकम्' को प्रथम नाटक माना जाता था और शूद्रक का समय 220-197 ई०पू० माना जाता था किन्तु भास की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि शूद्रक का 'मृच्छकटिक' भास के

---

1. अनन्त प्रसाद बनर्जी, जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड ओडीसा रिसर्च सोसाइटी, 9, पृष्ठ 77.
2. लोकमान्य तिलक, गीता रहस्य, पृष्ठ 560.
3. जायसवाल, जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, पृष्ठ 256, (1913).
4. जयचन्द्र विद्यालङ्कार, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, 2, पृष्ठ 167-168.

'चारुदत्त' से बहुत प्रभावित है ।[1] इस प्रकार भास को शूद्रक का पूर्ववर्ती माना जाता है ।

भास के बाद कालिदास, और कालिदास के बाद अश्वघोष, शूद्रक, हर्षवर्धन, भवभूति, विशाखदत्त, नारायणभट्ट, मुरारि, अनङ्ग हर्ष, मायुराज, शक्तिभद्र, राजशेखर, क्षेमेश्वर, दिङ्नाग आदि नाटककारों की एक अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है । नाटककारों की यह परम्परा अखिल विश्व को अपनी विमल आभा से अद्यावधि चमत्कृत कर रही है ।

अपनी काव्य रचना के माध्यम से संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाने में जैन मतावलम्बियों ने स्तुत्य योगदान दिया है । जैन ग्रन्थों की मूल भाषा प्राकृत ही है । भगवान् महावीर ने आध्यात्मिक तत्त्वों का उपदेश जनता की भाषा में ही दिया था किन्तु कालान्तर में जैन धर्म को तर्क की ठोस नींव पर प्रतिष्ठित

---

1. एस0के0 वेलवलकर, दि रिलेशनशिप आफ् शूद्रकाज़ मृच्छकटिक टू दि चारुदत्त, आफ् भास, प्रोसीडिङ्ग्स आफ् फर्स्ट ओरियण्टल कान्फ्रेन्स, 1919, वाल्यूम 2, पृष्ठ 189-204.

करने के लिए संस्कृत भाषा का आश्रय लेना अनिवार्य हो गया । विद्वत्समुदाय की भाषा संस्कृत ही थी । यह हृदय तथा मस्तिष्क दोनों को प्रभावित करती थी । जैनियों को काव्य के माध्यम से हृदय को आह्लादित करने और तर्क के माध्यम से मस्तिष्क को पुष्ट बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई । अत: जैन-काव्यों तथा जैन तर्क ग्रन्थों को संस्कृत भाषा में निर्माण के लिए जैन विद्वान् अग्रसर हुए ।

संस्कृत भाषा का प्रयोग करने वाले जैन विद्वानों में 'समन्तभद्र' का नाम अग्रगण्य है । इन्होंने ही भक्ति रस से ओत-प्रोत स्तुत्य स्तोत्रों की रचना कर संस्कृत काव्यों के प्रणयन का श्रीगणेश किया । जैन चरित काव्यों की अपनी एक अलग विशेषता है जो ब्राह्मणों के द्वारा निर्मित काव्यों से उन्हें पृथक् करता है । दोनों ही धर्मों के कवि प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर अपने विचारों को व्यक्त करते हैं । मान्यता, आधार और उद्देश्य के सम्बन्ध में दोनों धर्मों में गहरा मतभेद है ।

संस्कृत में लिखे गये जैन चरित महाकाव्यों में 'वराङ्गचरित'[1] अधिक

---

1. माणिकचन्द्र जैन, ग्रन्थमाला बम्बई सेप्रकाशित, संख्या 40, बम्बई 1938, सम्पादक, डॉ0 ए0एन0 उपाध्ये ।

प्राचीन है । इसके सम्पादन का श्रेय डॉ0 ए0एन0 उपाध्ये को है । डॉ0 उपाध्ये ने 1938 ईसवी में इसका विमर्शात्मक संस्करण प्रस्तुत किया । इस काव्य के रचयिता का नाम 'सिंहनन्दी' था ।

'चन्द्रप्रभाचरित'[1] नामक जैन महाकाव्य भी संस्कृत में लिखा गया है । इसके रचनाकार के रूप में 'वीरनन्दी' का नामोल्लेख है । चन्द्रप्रभ के चरित का वर्णन करने वाला यह महाकाव्य 18 सर्गों में विभक्त है । महाकाव्य के लक्षणों से युक्त यह काव्य अपने विषय का आदिम काव्य माना जाता है ।

'पार्श्वनाथचरित'[2] के रचयिता संस्कृत काव्य के प्रणेता वादिराज थे । इसमें जैन सम्प्रदाय के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित वर्णित है । वादिराज अपनी काव्य प्रतिभा के साथ-साथ तार्किक बुद्धि के लिए भी विख्यात थे ।

'प्रद्युम्नचरित'[3] का प्रणयन 'महासेन' नामक कवि ने किया था । महासेन-

---

1. काव्यग्रन्थाङ्क 30, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1992.
2. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 288.
3. माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थामाला बम्बई से प्रकाशित, वि0 1973.

लाट वर्गट संघ के आचार्य थे जो गुजरात में निवास करते थे । 'प्रद्युम्नचरित' में 14 सर्ग हैं ।

इसी प्रकार शान्तिनाथ चरित, धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाण काव्य, जयन्त विजय, पद्मानन्द महाकाव्य, सनतकुमार महाकाव्य, मल्लिनाथ चरित, अभयकुमार चरित, विजयप्रशस्ति काव्य आदि ऐसे ग्रन्थ हैं, जो संस्कृत भाषा में लिखे गये किन्तु उनमें अनेक जैन आचार्यों का चरित कहा गया है ।[1]

हस्तिमल्ल का जैन नाट्य परम्परा में स्थान निर्धारित करते समय हमारी दृष्टि सर्वप्रथम हस्तिमल्ल की कृतियों पर पड़ती है जिनके आधार पर निःसङ्कोच यह कहा जा सकता है कि जैनियों की नाट्य-परम्परा को विकसित करने में महाकवि हस्तिमल्ल ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

विक्रान्तकौरवम्, अञ्जनापवनञ्जय, सुभद्रा और मैथिलीकल्याणम् की रचना करके हस्तिमल्ल ने जैन नाट्य की कड़ी को अत्यधिक दृढ़ता प्रदान की । हस्तिमल्ल ने अपनी रचनाओं के द्वारा जैन साहित्य को चमत्कृत किया है ।

---

1. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 247-254.

हस्तिमल्ल को उनकी सुव्यवस्थित कृतियों के आधार पर जैनियों की नाट्य-परम्परा में उच्चस्थान पर विभूषित करने में लेशमात्र भी कठिनाई नहीं होती है ।

यदि यह कहा जाय कि जैन नाट्य-साहित्य के जाज्वल्यमान हीरक महाकवि हस्तिमल्ल ने जैनियों की नाटक परम्परा में एक नये युग का आरम्भ करते हुए जैन-नाट्य-साहित्य में अपने को अप्रतिम स्थान पर प्रतिष्ठित किया, तो सम्भवतः औचित्यपूर्ण ही होगा ।

-----------::0::-----------

# तृतीय अध्याय

## मूल स्रोत एवं सारांश

## तृतीय-अध्याय

महाकवि हस्तिमल्ल द्वारा विरचित नाटकों की कथावस्तु एवम् उसके मूल स्रोत अधोलिखित हैं :-

### क. अञ्जनापवनञ्जय

प्रस्तुत नाटक में विद्याधर राजकुमारी अञ्जना का स्वयंवर, उसका विद्याधर राजकुमार के साथ विवाह तथा उनके पुत्र हनुमत का जन्म वर्णित है ।

महेन्द्रपुर में अञ्जनाके स्वयंवर की तैयारियाँ जोरों पर हैं ।

नायक 'पवनञ्जय' जो विद्याधर के राजा प्रह्लाद का लड़का है, ने नायिका को एक बार पहले देखा है तथा उसे प्रेम करने लगा है । अञ्जना अपनी सहेली 'वसन्तमाला' तथा अपनी दो चेटियों 'मधुकरिका' और 'मालविका' के साथ प्रवेश करती है । वे दोनों आपस में वार्तालाप कर रही हैं । उनके वार्तालाप का विषय है, होने वाला स्वयंवर तथा उसका परिणाम । लड़कियाँ एक झूठे स्वयंवर (Mock-Svayamvara) का आयोजन करती हैं, जिसमें 'वसन्तमाला', जो 'अञ्जना' का अभिनय करती हैं, : पवनञ्जय का अभिनय करने वाली अञ्जना के गले में एक माला डालती है । पवनञ्जय जो अपने साथी विदूषक, 'प्रहसित'

के साथ यह सब कुछ एक गुप्तस्थान या छिपे हुए स्थान से देख रहा है । तद-
नन्तर 'पवनञ्जय' आगे बढ़ता है और जैसे ही 'अञ्जना' शरमा कर जाने को उद्यत
होती है वह ॥पवनञ्जय॥ उसका हाथ पकड़ लेता है, लेकिन उसकी माता उसको
स्नान के लिए बुला लेती है और वह पवनञ्जय से विदा लेती है और
अपनी सहेलियों के साथ चली जाती है ।

स्वयंवर पहले हो चुका होता है और अञ्जना, पवनञ्जय को पतिरूप
में वरण करती है । विवाह हो जाने के बाद दुल्हन और बसन्तमाला आदित्यपुर
॥पवनञ्जय के पिता राजा 'प्रह्लाद' की राजधानी॥ में आ गयी है और उसके साथ
बड़ा ही भद्र ॥दयालुतापूर्ण॥ व्यवहार किया जा रहा है ।

पवनञ्जय और अञ्जना प्रमदवन में वकुलोद्यान देखने जाते हैं उनके बीच
प्रेम दृश्य आरम्भ होता है । पवनञ्जय अपने पिता के मंत्री 'विजयशर्मन्' से यह
जानकारी प्राप्त करता है कि राजा 'प्रह्लाद' वरुण के ऊपर आक्रमण करने वाले
हैं जो पश्चिमी समुद्र में पाटलिपुत्र में रहता है और जो लङ्का के राजा रावण
का शत्रु है तथा जिसने रावण के दो सेनापतियों को कारागार में बन्द कर रखा
है । चूँकि रावण के अनुरोध पर उसके दोनों सेनापतियों को छुड़ाने के लिए
'प्रह्लाद' अवश्य जायेंगे इसलिए वे ॥प्रह्लाद॥ चाहते हैं कि पवनञ्जय उनकी अनुपस्थिति

में राजधानी की देखभाल और सुरक्षा करे । लेकिन 'पवनञ्जय' अपने पिता को यह प्रेरित करता है कि उसे अकेले ही वरुण के विरुद्ध प्रयाण करने की अनुमति दें ।

वरुण और पवनञ्जय के बीच चार महीनों से युद्ध चल रहा है । पवनञ्जय युद्ध को बहुत धीमी गति से चला रहा है क्योंकि वह चाहता है कि वरुण का बहुत जल्दी विध्वंस न हो, नहीं तो रावण के दोनों सेनापतियों का जीवन खतरे में पड़ जायेगा । पवनञ्जय पूरे दिन सेना का निरीक्षण करने के उपरान्त कुमुदवती तीर [BANK OF LOTUS POND] पर आराम कर रहा है ।

प्राची दिशा में चन्द्रमा उदय हो रहा है । 'पवनञ्जय' एक मादा चक्रवाक को देखता है, जो अपने साथी से वियोग के कारण कृश हो रही है । इस प्रकार 'पवनञ्जय' को तुरन्त अपनी पत्नी 'अञ्जना' की याद आती है । वह प्रेमाभिलाषा से बहुत ही विचलित हो जाता है । अन्ततः वह तुरन्त विजयार्ध पर्वत पर जाने तथा अञ्जना से उसके महल में गुप्त रूप से मिलने का निश्चय करता है। वह एक विमान से आदित्यपुर जाता है और अञ्जना के कक्ष में जाकर उसके साथ रात व्यतीत करताहै और दूसरे दिन प्रातः युद्धक्षेत्र में वापस आ जाता है ।

वसन्तमाला के स्वगत भाषण (SOLILOQUY) तथा 'युक्तिमती' ﴾केतुमती की चेटी﴿ के साथ उसके वार्तालाप से यह पता चलता है कि 'पवनञ्जय' को 'अञ्जना' के यहाँ गये हुए चार महीने बीत चुके हैं तथा 'अञ्जना' के गर्भवती होने का सङ्केत दिखायी पड़ने लगा है । दोनों ﴾अञ्जना और पवनञ्जय﴿ रानी केतुमति की प्रतिक्रिया के विषय में काफी चिन्तित हैं क्योंकि महिलाओं की मर्यादा और चरित्र के विषय में रानी केतुमति काफी विशिष्ट विचार वाली महिला हैं । इसलिए जब वह अञ्जना की नाजुक दशा के ﴾गर्भधारण﴿ विषय में सुनेंगीं तो उनकी ﴾केतुमती﴿ क्या प्रतिक्रिया होगी ? इस विषय में अञ्जना और पवनञ्जय काफी चिन्तित हैं । दोनों आशा और प्रार्थना करते हैं कि केतुमति, 'अञ्जना' के प्रति कठोर और निर्दय न हों ।

'लब्धभूति' जो कि राजा के घरेलू मामलों को व्यवस्थित करने वाला (CHAMBER LAIN) कर्मचारी है । 'लब्धभूति' आदित्यपुर के प्रान्तों का निरीक्षण करने जाता है और 'विद्याधर भैरव क्रूर' से मिलकर रानी केतुमति के इस आदेश से अवगत कराता है कि उसको ﴾विद्याधर भैरव क्रूर﴿ अञ्जना को उसके माता-पिता के घर ले जाना है । क्रूर आदेश को स्वीकार करता है और उसके बाद तुरन्त उसका पालन करता है ।

अन्त में 'पवनञ्जय' वरुण को युद्ध में हरा देता है और खर-दूषण नामक रावण के दोनों सेनापतियों को छुड़ा लेता है । वरुण के साथ मित्रता का समझौता करके 'पवनञ्जय' विजयार्ध पर्वत पर विद्याधरों के साथ वापस होता है ।

पवनञ्जय और विदूषक विजयार्ध पर्वत पर वापस आते हैं और 'राजत-शिखर' पर विमान से उतरते हैं । युक्तिमति जो उसका स्वागत करने के लिए आयी है, से पवनञ्जय को यह पता चलता है कि अञ्जना गर्भवती है और अपने माता-पिता के साथ रहने के लिए महेन्द्रपुर चली गयी है । पवनञ्जय अब पहले महेन्द्रपुर जाने तथा अञ्जना के साथ वापस आने एवं अन्ततः अपने माता-पिता से मिलने का निश्चय करता है । अत्यन्त तीव्रगामी हाथी 'कालमेघ' पर चढ़कर पवनञ्जय तथा विदूषक महेन्द्रपुर की ओर बढ़ते हैं । मार्ग में वे दोनों 'नाभि-गिरि' पर स्थित 'सरोवण सरसी' के किनारे रुकते हैं । वे एक 'वनचर' तथा उसकी पत्नी से मिलते हैं तथा उनके द्वारा दिये गए विवरणों से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'अञ्जना' तथा वसन्तमाला वहाँ (महेन्द्रपुर) जाते समय रह चुकीं थीं, जो केतुमति से आदिष्ट एक भयानक आदमी के साथ ले जायी जा रहीं थीं । यद्यपि अञ्जना ने अपने माता-पिता के पास जाने से इनकार कर दिया था तथा जङ्गल में रहना पसन्द किया था । उसने और उसकी सहेली ने 'मातङ्गमालिनी'

नामक जङ्गल में प्रवेश किया था । इस पर पवनञ्जय मूर्च्छित हो जाता है । होश में आने पर वह अपनी पत्नी के लिए विलाप करता है । पवनञ्जय बिल्कुल निराशा से उठता है और जङ्गल में जाने तथा अञ्जना का पीछा करने का सङ्कल्प करता है । वह विदूषक को 'विजयार्ध पर्वत' पर विद्याधरों को लाने के लिए भेजता है ताकि अञ्जना को खोजने में वे सहायक हो सकें । अपने हाथी 'कालमेघ' द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ अब वह घने जङ्गल में घुसता है ।

गन्धर्वों के राजा 'मणिचूड' तथा उसकी पत्नी 'रत्नचूडा' के बीच संलाप से यह ज्ञात होता है कि 'अञ्जना' जिसे 'मणिचूड' ने भारी विपत्ति से बचाया था और जो इस समय उनके राज्य में पैतृक देख-रेख में रह रही है, ने एक बच्चे को जन्म दिया है । हालाँकि वह पति से वियोग के कारण बहुत बुरी स्थिति में है ।

'पवनञ्जय' जो 'अञ्जना' को खो देने के कारण पागल हो गया है, 'मातङ्गमालिनी' जङ्गल में इधर-उधर भटकता है, तथा सजीव एवं निर्जीव को सम्बोधित करता है और अञ्जना के बारे में उनसे पूछता है । सम्पूर्ण दृश्य कालिदास के विक्रमोर्वशीय, चतुर्थ अङ्क पर आधारित है ।

अञ्जना के बारे में कोई भी साक्ष्य न मिलने से बौखलाया हुआ तथा एकदम निराश होकर एवं लाचार होकर चन्दन के एक पेड़ के नीचे बैठ जाता है। उसकी आवाज दब गयी है, आखें आँसुओं से धुंधली हो गयी हैं तथा हृदय एक उत्तेजित एवं अशान्त हो गया है। 'पवनञ्जय' चन्दन के वृक्ष के सहारे झुका हुआ कुछ देर तक विश्राम करता है तथा आश्चर्य करता है कि क्या उसे कोई उसकी प्रिय पत्नी के बारे में बताएगा? इसके बाद 'पवनञ्जय' का मामा 'प्रतिसूर्य', जिससे राजा प्रह्लाद 'पवनञ्जय' को खोजने में मदद की प्रार्थना करते हैं। प्रतिसूर्य 'पवनञ्जय' को मकरन्दवापिका के किनारे उगी लताओं के समूह में प्राप्त करता है। पवनञ्जय गहरे चिन्तन में डूबा हुआ, आँखें बन्द किये हुए तथा भावनाओं से कम्पायमान शरीर वाला था। इससे प्रतिसूर्य' इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस अवस्था में पवनञ्जय को केवल अञ्जना ही प्रसन्न कर सकती है और उसे होश में ला सकती है। इसलिए प्रतिसूर्य घर लौट जाता है एवं 'अञ्जना' और 'वसन्तमाला' को उस स्थान पर भेजता है। पवनञ्जय को चन्दन की लताओं के कुञ्ज में देखने पर 'अञ्जना' उसकी ओर दौड़ती है तथा उसका आलिङ्गन करती है। प्रतिसूर्य, जो गन्धर्वों के राजा 'मणिचूड' के पास पवनञ्जय के खोज का शुभ समाचार देने गया है, अब पवनञ्जय के पास मिलने के लिए वापस आता है। पवनञ्जय भी अपनी प्रिय पत्नी के मामा से मिलकर बहुत खुश होता है।

पवनञ्जय के राज्याभिषेक की तैयारी आदित्यपुर के राजप्रासाद में जोरों पर हो रही है। छोटा लड़का 'हनुमत्' ले आया जाता है तथा प्रतिसूर्य 'पवनञ्जय' से उसका परिचय कराता है। आमतौर पर नगर में इस महोत्सव से भारी चहल-पहल है।

पवनञ्जय, अञ्जना, विदूषक तथा वसन्तमाला सभाकक्ष में प्रवेश करते हैं। पवनञ्जय मोती के मण्डप के नीचे राज सिंहासन पर बैठा हुआ है। तभी पुनर्मिलन के इस सौभाग्य के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। प्रतिसूर्य छोटे बच्चे हनुमत् के साथ आता है तथा पवनञ्जय से उसका परिचय कराता है। पूरा राजप्रासाद खुशी से झूम जाता है। परस्पर अभिवादनों और बधाइयों का आदान-प्रदान होता है। 'प्रतिसूर्य' 'मातङ्गमालिनी' जङ्गल में हुई घटनाओं का सविस्तार वर्णन करता है कि किस तरह अञ्जना और वसन्तमाला को जङ्गल में अपने भ्रमण के दौरान किन-किन परीक्षाओं से गुजरना पड़ा, किस तरह वे 'रत्नकूट' के पूर्वी खण्ड में स्थित 'पर्यङ्कगुहा' को आये और वहाँ महान् संन्यासी 'अमित-गति' से मुलाकात हुई और उन्होंने इस आश्वासन के साथ सान्त्वना दिया कि बहुत ही जल्दी उनके दुःख दूर हो जायेंगे, किस तरह वहाँ रहते हुए उनके ऊपर एक भयङ्कर, सिंह ने आक्रमण किया था? किस तरह उनकी अपील पर गन्धर्वराज

'मणिचूड' और उनकी पत्नी 'रत्नचूडा' ने उनकी सहायता की थी, किस तरह 'मणिचूड' ने शेर को मारा ?, किस तरह उसी दौरान अञ्जना ने एक लड़के को जन्म दिया ? किस तरह प्रतिसूर्य को उनके बारे में ज्ञान हुआ? और उन्हें 'अनुरुह' द्वीप में ले आया और यहाँ नवजात शिशु का उचित धार्मिक संस्कार किया गया, किस तरह बाद में राजा प्रह्लाद् तथा महेन्द्र द्वारा पवनञ्जय की खोज में सहायता करते समय 'मातङ्गमालिनी' जङ्गल में वनमाला के बीचो-बीच मकरन्दवापिका के किनारे उसने पवनञ्जय को खोज निकाला, इसके बाद किस तरह वह 'अनुरुह' द्वीप वापस जाकर अञ्जना और वसन्तमाला के साथ वापस लौटा और अन्ततः किस तरह पवनञ्जय और अञ्जना का मिलन हुआ ?

सभी अञ्जना को भयङ्कर शेर से बचाने के लिए गन्धर्वराज 'मणिचूड' को धन्यवाद देते हैं। मणिचूड, वरुण और रावण (जो परस्पर मित्र हो गये हैं) के आदेश पर विजयार्ध पर्वत की संप्रभुता पवन जय को सौंप देता है तथा इस आशय कि औपचारिक घोषणा भी कर देता है। पवनञ्जय सधन्यवाद अपने ऊपर दिये गये इस नवीन सम्मान को ग्रहण करता है। विद्याधर लोग झुके सिर तथा कृताञ्जलि होकर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। भरतवाक्य के साथ 'अञ्जनापवनञ्जय' नामक नाटक की समाप्ति होती है।

## कथा का मूल स्रोत

'अञ्जनापवनञ्जय' की कथावस्तु 'विमलसूरि' ॥द्वितीय शताब्दी ईसवी॥ के 'पउमचरिय' ग्रन्थ के अध्यायों (XV To XVIII) में प्राप्त होती है और आठवीं शताब्दी के 'रविसेन' के ग्रन्थ 'पद्मपुराण' के अध्यायों (XV To XVIII) में भी इसका उल्लेख है। इन दोनों ग्रन्थों के विवरण समान हैं। 'रविसेन' और 'विमलसूरि' द्वारा दिये गये विवरण तथा 'हस्तिमल्ल' द्वारा दिये गये विवरण में कई सन्दर्भों में वैभिन्य मिलता है -

1. 'पउमचरिय' तथा 'पद्मपुराण' में 'पवनञ्जय' को अनेक नामों से पुकारा गया है। जैसे - पवनगति, पवनवेग, वायुगति, वायुवेग, वायुकुमार आदि। 'अञ्जना' को भी इसी तरह से अञ्जना-सुन्दरी' नाम से पुकारा गया है। राजा महेन्द्र की पत्नी ॥अर्थात् अञ्जना की माता॥ को 'पउमचरिय' तथा 'पद्मपुराण' में 'हृदयवेगा' अथवा 'हृदयसुन्दरी' नाम दिया गया है, जबकि 'हस्तिमल्ल' के नाटक में उसका 'मनोवेगा' मिलता है। 'पउमचरिय' और 'पद्मपुराण' में राजा महेन्द्र को सौ पुत्रों का पिता, 'अरिन्दम्' और दूसरे का भी पिता कहा गया है, जबकि 'हस्तिमल्ल' केवल दो पुत्रों का उल्लेख करता है - 'अरिन्दम्' और प्रसन्नकीर्ति। 'पवनञ्जय' की माता को 'पउमचरिय' में कीर्ति-मति' कहा गया है।

2. 'पउमचरिय' तथा 'पन्दमपुराण' में स्वयंवर का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है । मंत्रियों के साथ मन्त्रणा करने के बाद राजा महेन्द्र 'पवनञ्जय' को अपनी पुत्री सौंपने का निश्चय करता है तथा समय पर राजा प्रह्लाद की सहमति प्राप्त कर लेता है ।

3. विवाह के तीन दिन पहले पवनञ्जय का मस्तिष्क अञ्जनासुन्दरी, वसन्त-माला तथा मिश्रकेशी के विरुद्ध पूर्वाग्रह से युक्त हो जाता है । वह पवनञ्जय समस्त स्थितियों को पूर्णतः गलत ढंग से समझता है, और किसी निर्मूल निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'अञ्जनासुन्दरी' उससे विवाह नहीं करना चाहती है, क्योंकि वह वास्तव में 'विद्युत्-प्रभ' से प्रेम करती है । पवनञ्जय 'अञ्जनासुन्दरी की हत्या करने पर उतारू है किन्तु अपने मित्र प्रहसित के द्वारा रोक दिया जाता है । वह उससे घृणा करने लगता है तथा उसके साथ प्रस्तावित अपने विवाह को निरस्त करके वापस अपने नगर लौटना चाहता है । किसी तरह पवनञ्जय अपने पिता के दबाव में आकर 'अञ्जना-सुन्दरी' से विवाह करने का निश्चय करता है, यद्यपि गुप्तरूप से वह विवाह के बाद उसे मार डालने का सङ्कल्प करता है ।

4. पवनञ्जय की घृणा अपनी पत्नी के प्रति कठोर हो जाती है तथा बीस वर्षों तक 'पवनञ्जय' 'अञ्जनासुन्दरी' के प्रति उदासीन बना रहता है । जबकि

वह 'अञ्जनासुन्दरी' दु:ख के कारण कृशकाय होती जा रही है । जब पवनञ्जय रावण की सहायता के लिए वरुण से युद्ध करने के लिए जाता है तो अञ्जनासुन्दरी द्वारा उचित विदाई तथा उज्ज्वल भविष्य की कामना न करने के कारण वह आवेश में अपनी पत्नी से झगड़ता है ।

5. जब पवनञ्जय मानस झील के किनारे एक विलखती चक्रवाकी को देखता है तब अचानक पवनञ्जय के विचार अपनी पत्नी के प्रति परिवर्तित होते हैं, और अब वह अपनी पत्नी को पाने की तीव्र इच्छा करता है तथा गम्भीरतापूर्वक उसके प्रति अपनी पूर्व निर्दयता पर पश्चाताप करता है ।

6. 'पन्दमपुराण' के अनुसार 'पवनञ्जय' चुपके से अपनी पत्नी से मिलने अपने शहर वापस जाता है और उसके साथ कई दिन व्यतीत करता है न कि एक रात, जैसा कि 'अञ्जनापवनञ्जय' और 'पउमचरिय' में कहा गया है । यद्यपि उसका उसके साथ कई रात रहना बताया गया है लेकिन फिर भी वह इसे अपने माता-पिता को बताना उचित नहीं समझता है, न तो उसके माता-पिता को यह ज्ञात ही हो पाता है । युद्ध क्षेत्र में वापस जाने के पूर्व उसे अञ्जना के गर्भवती होने का पता चलता है । 'अञ्जना' को वह आश्वस्त करता है कि गर्भ स्पष्ट होने के पहले वह उसके पास लौट आयेगा । 'पन्दमपुराण' के अनुसार पवनञ्जय

अञ्जना को एक रत्नों का कङ्गन देता है, किन्तु पउमचरिय के अनुसार वह एक स्वनामाङ्कित अङ्गूठी देता है ।

7. जब 'पवनञ्जय' की माता को 'अञ्जना' के गर्भ का पता चलता है तो वह बहुत दु:खी होती है । वह यह जानती है कि 'पवनञ्जय' 'अञ्जनासुन्दरी' से कितना अधिक घृणा करता है? उसे यह विश्वास नहीं होता है कि पवनञ्जय उससे गुप्त रूप से मिलने गया होगा । अत: वह उसे उसके माता-पिता के पास भेज देती है ।

8. राजा महेन्द्र भी अपनी लड़की को अपने घर में रखने को तैयार नहीं होता है, क्योंकि उसका चरित्र शङ्कित है । वह उसे अपने महल से निकाल देता है ।

9. भिक्षु अमितगति जो पर्यङ्क गुहा में रहते हैं वह उससे (अञ्जना) तथा उसकी सहेली वसन्तमाला से गर्भस्थ शिशु के पूर्व जन्म के बारे में बताते हैं और यह भी बताते हैं कि पहले अञ्जनासुन्दरी पति द्वारा क्यों उपेक्षित थी और वर्तमान वियोग भी क्यों है?

10. जब अञ्जना प्रतिसूर्य के विमान में चढ़ने लगती है तो उसका छोटा

बच्चा हँसते हुए विमान में कूदने की कोशिश करता है और इस तरह करने में वह नीचे पहाड़ के चट्टान पर गिर जाता है । चट्टानें टूट जाती हैं और उसको कोई चोट नहीं आती है और इस प्रकार उसका नाम भी श्रीशैल रखा जाता है । इसका दूसरा नाम हनुमत् भी है । क्योंकि बाल्यावस्था में प्रतिसूर्य द्वारा 'हनुरुह' द्वीप में इसका पालन-पोषण हुआ था ।

11. वरुण के साथ युद्ध की समाप्ति पर पवनञ्जय घर लौटता है और जब उसे मालूम होता है कि उसकी पत्नी को उसके पिता के घर भेज दिया गया है तो वह राजा महेन्द्र के घर आता है लेकिन उसे वहाँ न पाकर वह बहुत दु:खी होता है ।

12. पवनञ्जय 'भूतरवातवी' नामक जङ्गल में अञ्जना को खोजने जाता है । वह अपने माता-पिता को बताता है कि जब वह अपनी खोई हुई पत्नी को प्राप्त नहीं कर लेता है, उनके पास नहीं आयेगा ।

13. अपने पुत्र की दशा का पता चलने पर पवनञ्जय की माता केतुमती बहुत दु:खी होती हैं ।

14. विद्याधर लोग पवनञ्जय को मुनि की तरह ध्यान – मग्न अवस्था में

पाते हैं जो बिल्कुल मौन है। पवनञ्जय अपने माता-पिता को सङ्केत के माध्यम से यह सूचित करता है कि जब तक उसकी पत्नी नहीं मिल जाती है तब तक उसने मौन रहने की और मृत्युपर्यन्त भोजन न करने की प्रतिज्ञा कर लिया है।

उपर्युक्त भिन्न सन्दर्भों के अतिरिक्त हस्तिमल्ल ने बड़ी विश्वसनीयता से 'पउमचरिय' में उल्लिखित कथा का अनुसरण किया है तथा उसे पारम्परिक नाटक का रूप दिया है।[1]

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, भूमिका, पृ0 30-32.

## छ. विक्रान्तकौरवम्

महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' में हस्तिनागपुर के नृप महाराज 'सोमप्रभ' तथा वाराणसी के राजा अकम्पन की पुत्री 'सुलोचना' के स्वयंवर का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

गङ्गा के तट पर बसी हुई वाराणसी नगरी शोभा अत्यन्त मनोहारी थी । स्वयंवर में भाग लेने वाले आगन्तुक राजाओं का शिविर नगर से बाहर ही लगा हुआ था । इस स्वयंवर में चारों दिशाओं से अनेक राजा पधारे हुए थे। विजयार्ध पर्वत के निवासी विद्याधर भी इस स्वयंवर में विराजमान थे ।

महाराज अकम्पन की पुत्री राजकुमारी सुलोचना का नगर देवता की यात्रा के निमित्त जुलूस निकला हुआ था । सुलोचना पालकी में बैठी हुई थी । इसी यात्रा के दौरान आम्रवृक्ष के नीचे बैठे हुए 'जयकुमार' पर उसकी दृष्टि पड़ती है और यहीं से उसके हृदय में प्रेमारम्भ होता है । महाकवि हस्तिमल्ल ने सुलोचना और जयकुमार के हृदय में परस्पर अनुराग का अंकुरण बड़े सुन्दरता के साथ किया है । कवि दोनों का मिलन गङ्गा के किनारे उद्यान में कराता है जिससे दोनों के मध्य अङ्कुरित हुए अनुराग का विस्तार होता है ।

स्वयंवर मण्डप में सुलोचना जयकुमार के गलेमें स्वयंवरमाला डाल कर उसका वरण करती है । यहाँ उपस्थित अन्य निराश हुए राजकुमार, अर्ककीर्ति के नेतृत्व में युद्ध के लिए तत्पर होते हैं । युद्ध को टालने के लिए महाराज अकम्पन, अर्ककीर्ति को अपनी दूसरी पुत्री रत्नमाला देने का प्रस्ताव भेजते हैं किन्तु अर्ककीर्ति युद्ध के लिए दृढ़ रहता है फलतः जयकुमार और प्रतिपक्षी राजाओं के बीच युद्ध होता है। इस युद्ध में जयकुमार, अर्ककीर्ति को बाँध लेता है ।

अर्ककीर्ति की इस उत्तेजना और युद्ध की सूचना चक्रवर्ती भरत के पास निरवद्य मंत्री ने भेजी थी किन्तु महाराज भरत ने अपनी गम्भीरता के अनुसार ही व्यवहार किया और युद्ध में भाग नहीं लिया जिससे अकम्पन अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

काशीनरेश महाराज अकम्पन ने अपने प्रस्ताव के अनुरूप पहले अर्ककीर्ति के साथ रत्नमाला का विवाह किया तदनन्तर जयकुमार के साथ सुलोचना का विवाह होता है और भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है ।

## कथावस्तु का मूल उत्स

सुलोचना के स्वयंवर तथा उसका जयकुमार के साथ विवाह की कथा

जिनसेन के 'आदिपुराण' के XLIII To XLV पर्वों में आयी है । हस्ति-मल्ल ने आदिपुराण में दी गयी कथा का अनुसरण किया है और इसे संस्कृत नाटक-कारों के पारम्परिक ढंग से नाटकीय बना दिया है । आदिपुराण में दी गयी कथा इस प्रकार है :-

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र जिसे 'कुरुजाङ्गल' देश कहते हैं, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर है । वहाँ का राजा सोमप्रभ है, जो सोमवंश से सम्बन्धित है । उसका छोटा भाई 'श्रेयान्' तथा उसकी रानी 'लक्ष्मीवती' है । उसके पुत्र हैं जय अथवा जयकुमार तथा विजयादि चौदह अन्य भी उसी के पुत्र हैं । सोमप्रभ संसार से घृणा करने लगता है तथा सांसारिक जीवन त्याग कर अपने भाई के साथ स्वामी वृषभदेव के पास जाता है तथा समय पर मोक्ष प्राप्त करता है । जयकुमार उसका उत्तराधिकारी होता है एवं कुशलतापूर्वक शासन करता है । राजा अकम्पन, नाथवंश से सम्बन्धित थे तथा उनकी पत्नी का नाम सुप्रभा था । उनको हेमाङ्गद, सुकेतुश्री, श्रीकान्त आदि अन्य 1000 पुत्र थे । दो लड़कियाँ सुलोचना और लक्ष्मी-वती थीं । राजा ने अपने मंत्रियों से सुलोचना के विवाह के बारे में मन्त्रणा की तथा एक स्वयंवर आयोजित करने का निश्चय किया । स्वयंवर के लिए तैयारियाँ शुरू हुईं और सभी राजाओं को निमंत्रण भेजे गये । स्वयंवर के दिन सभी आमंत्रित

राजाओं - जयकुमार, अर्ककीर्ति, विद्याधर आदि का उचित सम्मान किया गया तथा एक विशाल एवं सुसज्जित पण्डाल में उन्हें बैठाया गया । कञ्चुकी महेन्द्रदत्त, सुलोचना को एक रथ में बैठाकर राजाओं से परिचय कराने लगा । (विक्रान्त-कौरवम् में कञ्चुकी की जगह प्रतिहार मिलता है) । सुलोचना सभी के सामने से गुजरी और अन्त में जयकुमार के पास आयी । कञ्चुकी ने देव मेघकुमार के विरुद्ध युद्ध में जयकुमार के वीरतापूर्ण कार्यों का सुलोचना को विस्तृत वर्णन दिया और उसे यह बताया कि किस तरह राजा भरत ने उत्तम सैन्य पद का सम्मान दिया था । सुलोचना, जयकुमार के गले में माला डाल देती है । इस प्रकार 'जयकुमार' स्वयं-वर में पहला भाग्यशाली राजकुमार था, जो चुना गया । दूसरे राजा स्वभावत: बहुत निराश हुए । उनमें से एक 'दुर्मर्षण' ने अकम्पन के इरादों का अर्ककीर्ति से गलत बयान दिया और उसे क्रोधित होने के लिए उसकाया । अर्ककीर्ति ने अकम्पन को जीतने तथा सुलोचना को छीनने का सङ्कल्प किया । बहुत से निराश राजा अर्ककीर्ति से जा मिले । अपने ही मंत्री 'अनवद्यमति' की प्रार्थनाओं के बावजूद तथा अकम्पन के मंत्रियों की अभ्यर्थनाओं के बावजूद भी अर्ककीर्ति ने सेनापति को बुलवाया एवं अकम्पन और जयकुमार के विरुद्ध जङ्ग की घोषणा कर दी । युद्ध शुरू हुआ और जयकुमार ने 'वज्रकाण्ड' नामक अपने धनुष से बहुत ही अच्छा प्रदर्शन

किया । दोनों में घनघोर युद्ध हुआ । अन्त में जयकुमार और अर्ककीर्ति में मल्ल युद्ध हुआ । जिसमें जयकुमार ने अर्ककीर्ति को बुरी तरह परास्त किया तथा उसे बन्दी बनाकर अकम्पन को सौंप दिया । राजा अकम्पन बहुत दुःखी हुए कि भरत के पुत्र से युद्ध की नौबत आ गयी । वह अर्ककीर्ति को शान्त करने लगे तथा उससे क्षमा माँगने लगे, क्योंकि जयकुमार ने उसे काफी अपमानित किया था एवं उसे अपनी छोटी पुत्री लक्ष्मीमति या अक्षमाला देने का आग्रह किया । यह अक्षमाला हस्ति-मल्ल के नाटक 'विक्रान्तकौरवम्' की रत्नमाला है । अर्ककीर्ति और उसके सहयोगी विद्याधर लोग अकम्पन द्वारा उचित सम्मान करके भेज दिए गये । अकम्पन ने भरत के पास भी एक दूत भेजकर युद्ध से उत्पन्न मनोमालिन्य को दूर करने की प्रार्थना की, क्योंकि अर्ककीर्ति युद्ध में हार गया था । भरत ने दूत की बात बहुत शान्ति-पूर्वक सुना और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनका लड़का अर्ककीर्ति वास्तव में गलत था और जयकुमार सही था । भरत के अनुसार अर्ककीर्ति वास्तव में दण्ड के योग्य था, लेकिन अकम्पन इसके विपरीत अपनी छोटी पुत्री का उससे विवाह कर उसको सम्मानित कर चुके थे, इसलिए भरत इस प्रकरण में बिल्कुल लाचार थे ।

जयकुमार और सुलोचना के विवाहोत्सव के पश्चात् जयकुमार अपने श्वसुर के घर कुछ दिन तक रहा तथा दाम्पत्य प्रेम का सुख लेता रहा। इसके बाद अपने मंत्रियों द्वारा अत्यावश्यक रूप से बुलाये जाने पर अपनी राजधानी चला गया।[1]

---

1. अञ्जनापवनञ्जय सुभद्रा नाटिका द्वय, भूमिका, पृ0 35-37.

## ग. मैथिलिकल्याणम्

प्रस्तुत नाटक में दशरथ पुत्र राम से मिथिला के जनक की पुत्री सीता के विवाह का वर्णन है। यह वर्णन सीता द्वारा स्वयंवर में राम के वरण के बाद का है। राम ने धनुष की डोरी को खींचकर तोड़ दिया है। 'वज्रावर्त' नामक वह धनुष राजा बलि से सम्बन्धित है।

राम जो सीता को बिना देखे ही पहले से उनसे प्रेम का विचार करने लगे हैं। 'उपवनदोला गृह' के पास कामदेव के मन्दिर में राम सीता से मिलते हैं जो वसन्तोत्सव के दौरान वहाँ झूला-झूलने गयी हैं। सीता राम के सुन्दरता पर आश्चर्य करती हैं और उन्हें देखकर मुग्ध हो जाती हैं। वह अपनी सहेली की आवाज सुनती हैं जो उन्हें बुला रही है। इसलिए वह राम से विदा लेकर चली जाती है। राम, सीता को विचित्र सुन्दरता के विचार में डूबे हुए हैं और अपने आपको उनके द्वारा गृहीत पाते हैं।

राम अभी सीता के विचार में मग्न हैं, उन्हें सीता को देखने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। अपने मित्र विदूषक 'गार्ग्यायण' के सुझाव पर राम

माधवी वन जाते हैं जो राजमहल से दक्षिण की ओर स्थित है । वहाँ पर भी उनका कष्ट लेशमात्र भी कम नहीं होता है । अब सीता और उनकी सहेली विनीता माधवी वन आती हैं और विदूषक तथा राम के बीच चल रहे वार्तालाप को सुन लेती हैं । कुछ शब्द जो कि राम के द्वारा कहे जाते हैं, सीता द्वारा गलत ढंग से समझ लिये जाते हैं जिससे सीता यह सोचती हैं कि राम उससे प्रेम नहीं करते हैं । वह मूर्च्छित हो जाती हैं । राम और उनके मित्र विदूषक आगे दौड़ते हैं । राम सीता को प्रसन्न करने की कोशिश करते हैं लेकिन वह ईर्ष्या से इतना अभिभूत हैं कि राम से दूर रहना चाहती हैं । राम, सीता को अपने शब्दों का वास्तविक अर्थ समझाकर खुश करना चाहते हैं जिसको सीता ने गलत समझ लिया था। राम, सीता के प्रति पुन: अपना गहरा प्रेम निश्चित करते हैं । जैसे-जैसे सन्ध्या नजदीक आती है, राम और सीता बहुत ही अनिच्छापूर्वक परस्पर विदा लेते हैं और चले जाते हैं ।

सीता की परेशानियाँ बढ़ रही हैं और सीता की दूतिनी कलावती राम को सीता की दुर्दशा से परिचित कराने के लिए जाती हैं । राम भी सीता को पाने के लिए उग्र हैं और अपना समय माधवी वन में ही बिता रहे हैंतथा बहुत ही निराश अवस्था में हैं । कलावती राम को सीता की कष्टप्रद स्थिति से अवगत

कराती है और सीता द्वारा केतकी की पङ्खुड़ी पर लिखे गये एक संदेश को हस्तगत कराती है । राम बार-बार उस संदेश को पढ़ते हैं । कलावती राम को यह सुझाव देती है कि वे चुपके से शाम को माधवीवन के दक्षिणी हिस्से में स्थित 'चन्द्रकान्तधारागृह' में जायँ, जहाँ सीता अपना समय काट रही हैं ।

अब महाकवि हस्तिमल्ल सीता को प्रमदवन में दिखाते हैं । सीता के बुखार को कम करने के लिए समस्त शीतलकर औषधियाँ उनकी सहेलियाँ उन्हें लगाती हैं किन्तु इन सब औषधियों का सीता के ऊपर कोई असर नहीं पड़ता है अपितु सीता की दशा और बिगड़ जाती है । अब राम विदूषक के साथ मन्मथधारागृह में प्रवेश करते हैं जहाँ वह सीता को पाते हैं । सीता प्रेम की मारी हुई है तथा राम की प्रतीक्षा कर रही है । राम और विदूषक कुछ समय के लिए एक तरफ खड़े हो जाते हैं और सीता तथा उसकी सहेली का वार्तालाप सुनते हैं । सीता, राम के न आने से निराश होने लगती है और उसकी सहेली 'विनीता' यह प्रस्ताव करती है कि माधवीवन में हुई घटनाओं का अभिनय करना चाहिए । 'विनीता' राम का तथा सीता स्वयं अपना अभिनय करती है । जब यह अभिनय किया जा रहा है उसी समय राम अचानक दौड़े-दौड़े आते हैं और उन दोनों के सम्मुख अपने को प्रकट करते हैं तथा सीता का हाथ पकड़कर उन्हें सहारा देते हैं । राम सीता

के डर और घबड़ाहट को मिटाने के लिए सान्त्वनादायक शब्द बोलते हैं, तभी सीता अपनी माता 'वसुधा' के द्वारा बुला ली जाती है तथा बहुत ही अनिच्छापूर्वक विदा लेती हैं।

प्रारम्भिक दृश्य से पता चलता है कि सीता के स्वयंवर की तैयारियाँ चल रही हैं। जहाँ वह उस वीर को प्रदान की जायेगी जो 'वज्रावर्त' धनुष की डोरी खींचेगा। जो राजा स्वयंवर के लिए एकत्र हुए हैं उन्हें सूचित किया जाता है कि वे तैयार हो जाएं। तदनुरूप सभी राजा तैयार होकर स्वयंवर मण्डप में शीघ्रतापूर्वक जाते हैं। राम और लक्ष्मण भी सभामण्डप में जाते हैं। महाराज जनक सभागार में आते हैं और सीता को भी स्वयंवर मण्डप में ले जाने की आज्ञा देते हैं। कई राजा धनुष पर अपना जोर अजमाने के लिए आते हैं लेकिन अपने प्रयास में विफल हो जाते हैं। अन्ततः राम आगे बढ़ते हैं। राम केवल धनुष की डोरी ही नहीं चढ़ाते हैं बल्कि उसे एकदम तोड़ देते हैं। धनुष के टूटने से भयानक शब्द होता है। सभी लोग राम का स्वागत करते हैं और महाराज जनक यह आदेश देते हैं कि राम-सीता के विवाह का उत्सव शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाय। आकाश से एक आवाज यह घोषणा करती है कि राम मुक्ति के पहले अन्तिम जीवन में पुरुषोत्तम हैं। इसके बाद उचित साज-सज्जा एवं वातावरण में विवाह मनाया

जाता है । इस प्रकार मैथिलिकल्याण नामक नाटक समाप्त होता है ।[1]

## कथावस्तु का मूल स्रोत

सीता के स्वयंवर तथा उसका राम के साथ विवाह की कथा 'विमलसूरि' के 'पउमचरिय' के सत्ताइसवें उद्देश और रविसेन के 'पद्मपुराण' के सत्ताइसवें पर्व में समान रूप से आयी है । कथा को नाटकीय बनाने में निःसन्देह महाकवि हस्तिमल्ल ने पूर्व की समस्त विशदताओं को छोड़ दिया है । जैसे -

1. राजा जनक का 'अर्धबरबरस' के आक्रमण से अपनी राजधानी जाने के लिए राम के साथ सीता के विवाह का सङ्कल्प करना ।

2. नारद का सीता के कक्ष में अनाधिकार प्रवेश एवं उनका वहाँ से निष्कासन ।

3. राम के साथ प्रस्तावित विवाह के द्वारा निराश करके सीता से बदला लेने की योजना ।

4. विद्याधर इन्दुगति द्वारा राजा जनक का अपहरण ।

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, सुभद्रानाटिका च, पृ0 23-25.

5. राजा जनक का बलात् इन्दुगति की यह शर्त स्वीकार करना कि दशरथ पुत्र राम यदि धनुष की डोरी खींचने में सफल होंगे तभी सीता से विवाह करेंगे अन्यथा इन्दुगति अपने पुत्र 'भामण्डल' के लिए सीता को बलात् ले जायेगा ।

बजाय इसके हस्तिमल्ल ने 'मैथिलिकल्याण' के पहिले अङ्क में यह स्थिति पैदा करते हैं, जिसमें सीता राम को कामदेव के मन्दिर में अचानक मिलती है और सीधे उनसे प्रेम करने लगती है । इसके आगे हस्तिमल्ल प्रेम का यह चित्रण करते हैं जिसमें राम और सीता दोनों को वियोग दु:ख का दर्शन कराया है । उन दोनों का प्रथम मिलन माधवीवन में होता है (द्वितीय अङ्क) । इसके बाद दोनों की दशा गम्भीर हो जाती है ।

सीता का राम को सन्देश जिसमें अपने प्रेम व्यथित दशा की सूचना तथा अन्तत: प्रेमापूर्ति की आशा होती है, (तीसरा अङ्क) और दूसरा मिलन 'चन्द्रकान्त धारागृह' में होता है (चतुर्थ अङ्क) ।

इस प्रकार स्वयंवर के पहले हस्तिमल्ल ने अपना पूरा ध्यान केवल कथा के प्रेम-व्यवहारों पर ही केन्द्रित रखा है और संस्कृत नाटक के पारम्परिक ढंग से

प्रस्तुत किया है । इसलिए हम 'मैथिलिकल्याणम्' को 'त्रोटक'[1] की संज्ञा से अभि-
हित कर सकते हैं ।

(भूमिका, अञ्जनापवनञ्जय सुभद्रानाटिका च, पृष्ठ 33-34)

---

1. सप्ताष्टनवपञ्चाङ्कं दिव्यमानुषसंश्रयम् ।

त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यङ्कम् सविदूषकम् ॥

- साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, पृष्ठ 273.

## घ 'सुभद्रा' नाटिका

प्रस्तुत नाटक में विद्याधर राजा 'नमि' की बहन तथा कच्छराज की पुत्री सुभद्रा का प्रथम तीर्थङ्कर वृषभ के पुत्र राजा भरत के साथ विवाह का वर्णन है ।

राजा भरत की दिग्विजय यात्रा में विजय अभियान का पता विदूषक 'कात्यायन' और राजा भरत के संलाप के दौरान चलता है । राजा भरत अचानक विद्याधर की कन्या 'सुभद्रा' को वेदीवन में देखता है । 'राजताचल' (विजयार्ध) के क्षेत्र में वह घूम रही है । राजा सुभद्रा से गहरे प्रेम का विचार करता है तथा उसकी उपस्थिति स्वीकार करता है । जब सुभद्रा के साथ वार्तालाप में राजा लगा हुआ होता है तभी रानी 'वैलासी' वहाँ आती है । 'वैलासी' राजा विलास की पुत्री है । सुभद्रा तुरन्त हड़बड़ा कर वहाँ से चल पड़ती है । राजा की ईमानदारी के सम्बन्ध में रानी के मन में शङ्काएँ उत्पन्न होती हैं । वह उन्हें सान्त्वना देने की कोशिश करता है लेकिन बहुत अधिक सफल नहीं होता है ।

राजा की प्रेम-व्यथा और अधिक गम्भीर हो जाती है । एक बार फिर वह 'वेदीवन' में विनोद के लिए जाता है । राजा वेदीवन में सुभद्रा का

चित्र बनाता है और उसी को देखने में ध्यानमग्न रहता है । सुभद्रा और उसकी सहेली 'मन्दारिका' मन्दारवृक्षों के झुरमुट में धीरे-धीरे पहुँचती है जहाँ राजा अपने मित्र विदूषक के साथ बैठकर स्वनिर्मित सुभद्रा के चित्र को देख रहा है । रानी 'वैलासी' भी उस स्थान पर आती है और चुपके से उसकी करतूतों को देखती है तथा राजा की प्रेम-व्यथित बातें सुनती है । उसका धैर्य टूट जाता है और आवेश में राजा के पास पहुँचती है । राजा और विदूषक चित्र के विषय में क्षमा माँगने की कोशिश करते हैं लेकिन रानी उनकी बात बिल्कुल नहीं मानती है और आवेश में वहाँ से चली जाती है । राजा की क्षमा-याचनाओं तथा प्रेम-प्रदर्शनों पर ध्यान नहीं देती है । सुभद्रा जो राजा और रानी के बीच घटित इस सम्पूर्ण दृश्य को देख चुकी है, अब प्रवेश करती है । राजा उसे समझाता है कि रानी के प्रति उसके विचार एवं व्यवहार दाक्षिण्य की भावना से प्रेरित है । वह पूरे मनोयोग से 'सुभद्रा' को प्रेम करता है । राजा सुभद्रा का हाथ पकड़ लेता है लेकिन तभी उसकी सहेली उसे बुलाती है तथा वह राजा से विदा लेकर चली जाती है राजा गम्भीर दुःख में डूब जाता है ।

सुभद्रा प्रेमरोग से गम्भीर रूप से रुग्ण है । वह राजा को एक प्रेम-पत्र लिखती है और उसकी सहेली 'मन्दारिका' इसे एक अशोक वृक्ष पर लटका देती है।

राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं तथा सुभद्रा को चिन्तित मुद्रा में पाते हैं, जो प्रेम के दर्द से सतायी हुई है। सुभद्रा तथा उसकी सहेली अशोक वृक्ष तथा मैत्राती लता के विवाहोत्सव का आयोजन करती हैं। विदूषक उनके पास उपहार के बहाने पहुँचता है एवं राजा भी उनके पास जाता है तथा सुभद्रा का हाथ पकड़ लेता है जो रानी से काफी डरी हुई है। इसी स्थान पर रानी तथा उसकी चेटी राजा को मनाने के लिए आती हैं लेकिन जब रानी राजा को सुभद्रा का हाथ पकड़े हुए देखती है तब एकदम क्रुद्ध हो जाती है। सुभद्रा लज्जित होकर धीरे से समीप के झुरमुट की ओर चली जाती है। राजा, रानी से क्षमा माँगता है और उसको साष्टाङ्ग प्रणाम करता है। हालाँकि रानी आवेश में उसके सङ्केतों को ठुकरा देती है तथा अपनी चेटी के साथ चली जाती है। राजा अब सुभद्रा के प्रेम-पत्र को अशोक वृक्ष की शाखा से प्राप्त करता है और उसे बार-बार पढ़ता है। सुभद्रा राजा के द्वारा प्रेम-पत्र x पढ़ने के व्यापार को झुरमुट से देखती है, तथा उसके प्रति अपने प्रेम को पुष्ट करती है। यह घोषणा होती है कि नमिराज अपनी बहन सुभद्रा का विवाह राजा भरत से करेंगे। इससे राजा भरत और सुभद्रा को असीम सन्तोष होता है।

राजा अपने प्रेम-इच्छाओं तथा रानी के गुस्से के कारण बहुत परेशान

है । विद्याधर का राजदूत 'ताद्दर्यदत्त' यह सूचना लेकर आता है कि राजा 'नमि' अपनी बहन तथा विद्याधरों के सम्पूर्ण सैन्य-बल के साथ आ रहे हैं । राजा भरत अपनी प्रियतमा के पुनर्मिलन की आशा से बहुत खुश होता है । इसी बीच राजा नमि रानी 'वैलासी' को यह सूचना देता है कि वह अपनी बहन सुभद्रा का विवाह राजा भरत से करना चाहता है, क्योंकि ज्योतिषियों ने यह भविष्यवाणी की है कि सुभद्रा एक चक्रवर्ती की पत्नी और रानी बनेगी । रानी वैलासी इस प्रस्ताव पर अपनी सहमति दे देती है । सुभद्रा और रानी जो अब तक एक दूसरे के प्रति अमित्रमय थे अब मित्रमय हो गये । राजा भरत इन विकास कार्यक्रमों से काफी प्रसन्न हैं और वह आदेश निकालते हैं कि राजा 'विलास' को मध्यमोत्तर खण्ड का स्वामी बना दिया जाय और युवराज 'चक्रसेन' को पश्चिम खण्ड का स्वामी बनाया जाय । राजा नमि विद्याधरों से अनुगामित हो वहाँ पहुँचता है, वह अपनी बहन सुभद्रा को राजा भरत को सौंप देता है और वे दोनों विवाह के बन्धन में बंध जाते हैं । इस प्रकार सुभद्रानाटिका समाप्त होती है ।

## नाटिका का मूल स्रोत

राजा भरत (प्रथम चक्रवर्ती सम्राट) तथा सुभद्रा (विद्याधर राजा नमि

की बहन) के विवाह की कथा का उल्लेख 'जिनसेन' के 'हरिपुराण' के XXXII वें अध्याय तथा 175वें चरण में किया गया है।[1] इसी कथा पर आधारित सुभद्रा नाटिका एक नाटकीय विस्तारमात्र है। कवि ने विषयवस्तु को संस्कृत में पारम्परिक ढंग से वर्णित किया है तथा नाटिका के पारम्परिक ढाँचे में उसे उपनिबद्ध

---

1. नमिश्च दिनमिश्चैव विद्याधरधियौ ।
   स्वसारधनसामग्र्या प्रभुं द्रष्टुमुपेयतुः ॥

   विद्याधरधरासारधनोपायनसंपदा ।
   तदुपानीतयानन्यलभ्यणलोद् विभोर्धृतिः ॥

   तद्वाकृतरत्नौघैः कन्यारत्नपुरःसरैः ।
   सरिदोघैरिवोदन्वानपूर्यत तदा प्रभुः ॥

   स्वसारं च नमेर्धन्यां सुभद्रां नाम कन्यकाम् ।
   उदुवाह स लक्ष्मीवान् कल्याणैः खेचरोचितैः ॥

   तां मनोज्ञां रसस्येव स्तुतिं सम्प्राप्य चक्रभृत् ।
   स्वं मेने सफलं जन्म परमानन्दनिर्भरः ॥

   भूमिका, अञ्जनापवनञ्जय सुभद्रानाटिका च, पृ० 33.

किया है ।[1] जैसा कि श्री हर्ष ने रत्नावली में किया है - प्रथम अंक में ही प्रेम, वियोग, रानी तथा नायिका की ईर्ष्या से उत्पन्न दुरूहता, विशेष उपचार के परिणामस्वरूप असमय में वृक्षों का फूलना तथा उचित लताओं से उनका विवाह, रानी का राजा के विराग भाव से उत्पन्न क्रोध का दृश्य, राजा का रानी के सामने झुकना और उसके प्रति प्रेम का विरोध, नायिका द्वारा राजा को प्रेमपत्र भेजना, रानी का प्रेम में अपने नये प्रतिद्वन्द्वी से मैत्री जिसे वह पहचानती है तथा अपने चचेरी बहन के रूप में स्वीकार करती है । ज्योतिषियों द्वारा यह भविष्य-वाणी, कि चक्रवर्ती की पत्नी नायिका का ही होना और अन्त में उसके विवाह आदि का होना ।[2]

---------::0::---------

---

1. नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका ।
   प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ॥
   स्यादन्तःपुरसम्बद्धा सङ्गीतव्यापृताथवा ।
   नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा ॥
   संप्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः ।
   देवी पुनर्भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥
   पदे पदे मानवती तद्वशः सङ्गमो द्वयोः ।
   वृत्तिः स्यात् कैशिकी स्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः ॥

   साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेदः, पृष्ठ 269-272.

2. अञ्जनापवनञ्जय, सुभद्रानाटिका च, पृष्ठ 32-33.

## चतुर्थ अध्याय

## पात्रों का चरित्र-चित्रण

## चतुर्थ-अध्याय

## पात्र-परिचय

महाकवि हस्तिमल्ल ने अपने नाटकों में पात्रों की सङ्ख्या, अङ्कों का विभाजन तथा श्लोकों की सङ्ख्या को अत्यधिक संतुलित ढंग से प्रस्तुत किया है। महाकवि हस्तिमल्ल विरचित उपलब्ध नाटकों में पात्रों की सङ्ख्या, अङ्कों की संङ्ख्या तथा श्लोकों की सङ्ख्या आदि का विवरण इस प्रकार है :-

### क. विक्रान्तकौरवम्

1. सूत्रधार
2. पारिपार्श्वक: [मारिष]
3. विशारद:
4. नन्द्यावर्त:
5. विदूषक:
6. वैतालिक:
7. प्रतीहार: [महेन्द्रदत्त]
8. सौविदल्ल:
9. विट:
10. पुरुष:

11. रत्नमाला

12. मन्थरक:

13. कञ्चुकी

14. मन्दर:

15. हेमाङ्गद:

16. अकम्पन

17. सुलोचना

18. नवमालिका

19. तरलिका

20. मन्दारमाला

21. प्रतीहारी

22. गन्धमालिनी

23. जयकुमार

24. अर्ककीर्ति

25. भरत

महाकवि हस्तिमल्ल द्वारा रचित 'विक्रान्तकौरवम्' में अङ्कों की सङ्ख्या 6

तथा श्लोकों की सङ्ख्या 403 है जिसका पृथक्-पृथक् विवरण इस प्रकार है :-

| अङ्क | श्लोक सङ्ख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| प्रथम | 41 | 1 - 35 |
| द्वितीय | 36 | 36 - 77 |
| तृतीय | 77 | 78 - 123 |
| चतुर्थ | 106 | 124 - 191 |
| पञ्चम | 85 | 192 - 247 |
| षष्ठ | 58 | 248 - 273 |
| | 403 | |

विक्रान्तकौरवम् नाटक में हस्तिमल्ल ने अङ्कों का नामकरण इस प्रकार किया है :-

हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' के प्रथम अङ्क का नाम 'वाराणसी दर्शन' रखा है। इसकी जानकारी 'विक्रान्तकौरवम्' के 'प्रथम अङ्क' की समाप्ति पर स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है। हस्तिमल्ल ने स्फुट रूप से लिखा है - 'इति श्री गोविन्द-

स्वामिन: सूनुना हस्तिमल्लेन विरचिते विक्रान्तकौरवीय नाटके वाराणसी दर्शनो नाम प्रथमोऽङ्कः समाप्त: ।[1]

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' के द्वितीय अङ्क का नाम 'गङ्गामज्जन' रखा है । द्वितीय अङ्क का 'गङ्गामज्जन' नाम रखने का उल्लेख द्वितीय अङ्क की ही समाप्ति पर किया गया है । हस्तिमल्ल ने लिखा है - इति श्रीकविहस्तिमल्लेन विरचिते कौरवपौरवीयनाटके 'गङ्गामज्जनं' नाम द्वितीयोऽङ्कः समाप्त: ।[2]

तीसरे अङ्क का नामकरण महाकवि हस्तिमल्ल ने 'स्वयंवरयात्रा' किया है । इस सन्दर्भ में 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक के तृतीय अङ्क के अन्त में 'हस्तिमल्ल' ने लिखा है - 'इति श्री हस्तिमल्लेन विरचिते सुलोचना नाटके 'स्वयंवरयात्रा' नाम तृतीयोऽङ्कः ।[3]

चतुर्थ अङ्क का नाम महाकवि हस्तिमल्ल ने 'कौरवपौरवीय' रखा है । चतुर्थ अङ्क की समाप्ति पर उन्होंने लिखा है - 'इति श्री हस्तिमल्लेन विरचिते सुलोचना नाटके कौरवपौरवीयो नाम चतुर्थोऽङ्कः समाप्त: ।[4]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 35.
2. वही, पृष्ठ 77.
3. वही, पृष्ठ 123.
4. वही, पृष्ठ 191.

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक के पाँचवें अध्याय का नाम 'सङ्केतगृह' रखा है । इसका नामकरण करते हुए हस्तिमल्ल ने लिखा है - 'इति श्री हस्तिमल्लेन विरचिते सुलोचना नाटके सङ्केतगृह नाम पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।'[1]

छठवें अङ्क का नाम महाकवि हस्तिमल्ल ने 'कौतुक बन्ध' रखा है । इसका नामकरण करते हुए हस्तिमल्ल ने छठवें अङ्क की समाप्ति पर लिखा है - 'हस्तिमल्लेन विरचितः कौतुकबन्धो नाम षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।'[2]

महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक का सूक्ष्म अनुशीलन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हस्तिमल्ल को 'विक्रान्तकौरवम्' के तीन अन्य नाम भी अभीष्ट थे, जो इस प्रकार हैं -

1. विक्रान्त कौरवीय
2. कौरव पौरवीय
3. सुलोचना

---

1. 'विक्रान्तकौरवम्', पृष्ठ 247.
2. वही, पृष्ठ 273.

इसका प्रमाण यह है कि हस्तिमल्ल ने प्रथम अङ्क के पुष्पिका वाक्य में विक्रान्त कौरवीय[1], द्वितीय अङ्क के पुष्पिका वाक्य में कौरवपौरवीय[2] तथा तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम अङ्क की पुष्पिका में सुलोचना[3] नाम लिया है ।

ख. 'अञ्जनापवनञ्जय

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक के प्रकरण में पात्रों की जो सङ्ख्या बतायी है वह कुल तीस है :-

1. सूत्रधार
2. पारिपार्श्वक
3. अरिंदम्
4. पवनञ्जय
5. विदूषक

---

1. "इति श्रीगोविन्दस्वामिनः सूनुना हस्तिमल्लेन विरचिते विक्रांतकौरवीयनाटके वाराणसीदर्शनो नाम प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ।" विक्रान्तकौरवम्, प्र०अ०, पृष्ठ 35.

2. "इति श्रीकविहस्तिमल्लेन विरचिते कौरवपौरवीयनाटके गङ्गामज्जनं नाम द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ।" वही, द्वि०अ०, पृष्ठ 77.

3. "इति श्रीहस्तिमल्लेन विरचिते सुलोचनानाटके सङ्केतगृहं नाम पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः" वही, प०अ०, पृ० 247.

6. मालतिका

7. मधुकरिका

8. प्रमदवनपालिका (प्रथमा, द्वितीया)

9. अञ्जना

10. कृतमिश्रकेशा

11. कृतकाञ्जना

12. वसन्तमाला

13. उद्यानाध्यक्ष (प्रथम, द्वितीय)

14. प्रतीहारी

15. अमात्य

16. शारावती

17. युक्तिमति

18. कञ्चुकी

19. चेट

20. क्रूर

21. सेनापति

22. दूत

23. वनचर

24. लवलिका

25. चमूरक

26. मणिचूड

27. रत्नचूडा

28. प्रतिसूर्य

29. हनुमान् ।

अञ्जनापवनञ्जय नामक नाटक में महाकवि हस्तिमल्ल ने सात अङ्कों एवं 186 श्लोकों की सङ्ख्या को इस प्रकार व्यवस्थित किया है :-

| अङ्क | श्लोक सङ्ख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| प्रथम | 20 | 1 - 20 |
| द्वितीय | 23 | 21 - 36 |
| तृतीय | 20 | 37 - 50 |
| चतुर्थ | 19 | 51 - 66 |
| पञ्चम | 30 | 66 - 86 |
| षष्ठम् | 58 | 87 - 104 |
| सप्तम् | 16 | 105 - 119 |
| | 186 | |

## ग. सुभद्रानाटिका

महाकवि हस्तिमल्ल ने स्वरचित 'सुभद्रानाटिका' में कुल चौदह पात्रों का समायोजन किया है । जो इस प्रकार है :-

1. सूत्रधार
2. नटी
3. राजा
4. विदूषक
5. सुभद्रा
6. मन्दारिका
7. देवी
8. चेटी
9. मञ्जारिका
10. सेनापति
11. प्रतीहारी
12. तार्क्ष्यदत्त
13. कञ्चुकी
14. नमि

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'सुभद्रा' नाटिका में चार अङ्कों एवं 134 श्लोकों की सङ्ख्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

| अङ्क | श्लोक सङ्ख्या | पृष्ठ |
|---|---|---|
| प्रथम | 41 | 1 - 21 |
| द्वितीय | 27 | 21 - 45 |
| तृतीय | 29 | 45 - 73 |
| चतुर्थ | 37 | 73 - 91 |
| | 134 | |

जैन साहित्य के जाज्वल्यमान हीरक महाकवि हस्तिमल्ल द्वारा विरचित आयासपूर्वक उपलब्ध हुए नाटकों में अङ्कों एवं श्लोकों की सङ्ख्या को पृथक्-पृथक् ग्रन्थों में अधोलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है :-

| नाटक का नाम | कुल अङ्क | कुल श्लोक |
|---|---|---|
| 1. विक्रान्तकौरवम् | छः | 403 |
| 2. अञ्जनापवनञ्जय | सात | 186 |
| 3. सुभद्रानाटिका | चार | 134 |
| योग | सत्रह | 723 |

## पात्रों का मूल्याङ्कन

## विक्रान्तकौरवम्

. जयकुमार

'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में महाकवि हस्तिमल्ल ने हस्तिनागपुर के राजा सोमप्रभ के पुत्र जयकुमार और वाराणसी के राजा अकम्पन की पुत्री सुलोचना के स्वयंवर का वर्णन है ।

जयकुमार काशीराज की पुत्री सुलोचना के स्वयंवर में भाग लेने के लिए अपने पूरे लाव लश्कर के साथ काशी के समीप एकान्त और स्वच्छ जगह पर डेरा डालता है । जैसा कि कवि के 'विक्रान्तकौरवम्' के प्रथम अङ्क से स्पष्ट होता है - अर्द्ध पुनरस्मत्स्वामिन: कौरवेश्वरस्य शिविरं नातिदूरे वाराणस्या विविक्त एव प्रदेशे निवेशितम् ।आत्मानं निर्वर्ण्य। मार्गश्रमलघूकरणो त्साद्यं च न: शरीरम् । यावदिदानीं कौरवेश्वरभवनं गत्वा प्रियवयस्यं नंद्यावर्तं पश्यामि । ।परिक्रम्यावलोक्य च। अहो प्रत्यग्रसंनिविष्टस्य कौरवेश्वरशिबिरस्य महती वृत्तांतता ।[1]

जयकुमार वाराणसी में प्रवेश करता है । जहाँ नगर देवता की यात्रा चालू थी । वह इस नगर देवता की यात्रा की शोभा को देखता है । नगर की शोभा

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 8.

को देखता है । नगर की शोभा का वर्णन महाकवि हस्तिमल्ल ने इस प्रकार किया है -

वाराणसी में कहीं अत्यधिक रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिकों के आवागमन से जिनमें चलना भी कठिन था ऐसे मार्गों को, कहीं कमल की बेड़ियों से युक्त कोमल अञ्जलियों के समूह से सुन्दर हजारों भक्तजनों से व्याप्त मन्दिरों को, कहीं खिले हुए फूलों की मकरन्द-सम्बन्धी सुगन्ध से व्याप्त वायु से युक्त उपवनों को, कहीं मकरतोरणों में खचित रत्नों की किरणों के अग्रभाग से युक्त गलियों को देखते हुए क्रम से एकान्त स्थान की उत्सुकता के कारण एक आम्रवृक्ष के नीचे जयकुमार बैठ गया ।[1]

नगर देखने की यात्रा के दौरान जब जयकुमार काशीराज की पुत्री सुलोचना को देखता है तो एकदम से व्यथित हो उठता है । सुलोचना को देखने के बाद जयकुमार की स्थिति एकदम बिगड़ जाता है । उसकी दशा का वर्णन करते हुए हस्तिमल्ल ने कहा है कि - अथ तस्यां प्रथमतरानुभूयमानमन्मथरसमंथरितविभ्रमायां तिरोहितायां क्रमेण काशीराजसुतायां कौरवेश्वरस्तन्मार्गदत्तदृष्टिरित्थमभूत् । मूढ इव विलिखित इव उत्कीर्ण इव विशीर्ण इव मुषित इव आविष्ट इव द्रुत इव दीन इव ।[2]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 16.

2. वही, पृष्ठ 20.

कौरवेश्वर महाराजा जयकुमार ने उस सुलोचना के सौन्दर्य के विषय में कहा कि - वह श्रृङ्गार की श्रेष्ठ परिणति है, समस्त संसार की कोई मोहिनी विद्या है, सौन्दर्य रूप श्रेष्ठ लक्ष्मी की उत्कृष्ट पदवी है, काम की जवानी का भारी मद है, रति के प्रवाहों की नदी है, हाव-भाव रूप सम्पदाओं की क्रीडा है और सौन्दर्य का अखण्ड पवित्र बाजार है, - इसी को हस्तिमल्ल ने पद्य रूप में इस प्रकार लिखा है -

श्रृङ्गारस्य गरीयसी परिणतिर्विश्वस्य संमोहिनी
विद्या काप्यपरा(परा)च पदवी सौन्दर्यसारश्रियाम् ।
उद्दामो मदनस्य यौवनमद: कुल्या रतिस्रोतसां
केलिर्विभ्रमसंपदामविकलो लावण्यपुण्यापण: ॥

महाराज जयकुमार सुलोचना के ऊपर आसक्त हैं । जब जयकुमार कौतुक, सम्मान और अनुराग के साथ उसे देखता है तो उसका धैर्य कामदेव के बाणों के समूह से खण्डित हो जाता है । क्षण-क्षण में भीतर ही भीतर नष्ट होते हुए धैर्य के कारण जयकुमार का हृदय चञ्चल हो उठता है और उठते हुए हजारों दुर्निवार मनोरथों से

---

1. विक्रान्तकौरवम्, प्रथम अङ्क, पृष्ठ 23.

जयकुमार दुःखी होता है । उस समय के जयकुमार के मन में विचार उत्पन्न होता है कि -

आघ्राणव्यवधायिना स्तनतटे किं चंदनेनामुना
किं गाढं परिरंभमन्तरयता स्थूलेन हारेण वा ।
संधानेन किमुत्तरीयसिचयेनेच्छाविहारं दृशो-
र्यद्वा यत्स्पृहणीयमस्ति सुलभास्तस्यान्तराया अपि ॥[1]

अर्थात् सूँघने में व्यवधान उत्पन्न करने वाले, स्तनतट पर लगे हुए इस चन्दन का क्या प्रयोजन ? गाढ़ आलिङ्गन को रोकने वाले स्थूल हार का क्या प्रयोजन ? और नेत्रों के इच्छापूर्ण बिहार को रोकने वाले उत्तरीय वस्त्र का क्या आवश्यकता है ? अथवा जो वस्तु चाहने के योग्य होती है उसके बाधक भी सुलभ होते हैं ।

जयकुमार, सुलोचना के अवलोकनों से पिया गया, विचलित हुआ, घायल हुआ, बेड़ी से बद्ध हुआ, डराया गया और पराजित किया गया है । जयकुमार के इस पराजय को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है :-

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 25.

लज्जाश्रृंखलया मनाग् नियमितैस्स्मेरोल्लसत्तारकैः ।
किंचित्कुंचितलोचनांतचलितैर्लीलोयतभ्रूलतैः ।
तस्याः प्रस्फुरदार्द्रकौतुकरसस्निग्धैरहं प्रेक्षिते -
रापीतश्चलितः क्षतो निगलितस्संतर्जितो निर्जितः ॥[1]

अर्थात् जो लज्जा रूपी साँकल से कुछ-कुछ बँधे हुए थे, जिनकी पुतलियाँ हर्ष से विकसित हो रही थीं, जो कुछ-कुछ निमिलित नेत्र के अन्त भाग से चले रहे थे, जिनमें भौंह रूपी लताएं ऊपर की ओर उठ रही थीं, तथा जो उठते हुए नवीन कौतुक रस से स्निग्ध थे, ऐसे उसके अवलोकनों से मैं (जयकुमार) पीया गया, घायल हुआ, विचलित हुआ, डराया गया और पराजित किया गया हूँ ।

जयकुमार यह मानता है कि सुलोचना उसके प्रेम को स्वीकार करती है । क्योंकि वह जयकुमार, विदूषक से कहता है कि दर्पण में मेरा प्रतिबिम्ब पड़ रहा था इसलिए वह दर्पण उसके (सुलोचना) हृदय को संतुष्ट करने वाला था । इसी प्रसङ्ग को महाकवि हस्तिमल्ल ने जयकुमार से इस प्रकार व्यक्त करवाया है -

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 26.

शौत्येन वा रुचिरतो बहुमानतो वा

मन्येत वा किमपि कारणमन्यदेव ।

संक्रान्तमत्प्रतिम इत्यथवास्तु तस्या -

स्संतर्पणोथ हृदयस्य स दर्पणोऽभूत् ।।[1]

इष्ट स्त्री से अनुराग प्रकट करने वाले पुरुष को बदले में अनुराग प्रदान करना वास्तव में कामदेव का अचूक अस्त्र है । जयकुमार काम भावना से पीड़ित है तथा कहता है कि :-

स्निग्धैर्वलितयंत्रणाविचलितैस्तस्या: कटाक्षेहितै-

रीषत्प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचकैस्सख्या समं जल्पितै: ।

मध्ये चोच्छ्वसितस्तनैर्विहसितैर्दंतांशुनीराजितै:

काम: कामपि मे करोति मनस: कामं परामुत्कताम् ।।[2]

अर्थात् लज्जा की यन्त्रणा से, उसके स्नेह पूर्ण कटाक्षों से, जिनमें नीचे का ओंठ रूपी बिम्बफल कुछ-कुछ हिल रहा है ऐसे सखी के साथ होने वाले निरर्थक वचनों से

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 27.
2. वही, पृष्ठ 28.

और बीच-बीच में स्तनों को उभार उठा देने वाले दाँतों का किरणों से सुशोभित हास्य से कामदेव इच्छानुसार मेरे ﴾जयकुमार﴿ मन में अद्भुत तथा अत्यधिक उत्कण्ठा उत्पन्न कर रहा है ।

काशीराज की पुत्री सुलोचना के अतिशय सौन्दर्य के कारण उसमें आकर्षण की अद्भुत शक्ति है । महाराजा जयकुमार उसकी तरफ एकदम से आकर्षित हैं । हस्तिमल्ल ने जयकुमार से स्पष्ट रूप से कहलवाया है :-

सत्त्वं विलुप्तमिव तप्तमिवाङ्गमङ्गं
धैर्यं विशीर्णमिव दीर्णं इवान्तरात्मा ।
चेत: प्रलीनमिव लीन इव प्रबोधो
मान: प्रमृष्ट इव कृष्ट इवास्मि चाहम् ॥[1]

अर्थात् ऐसा जान पड़ता है कि मानो सत्त्व बिल्कुल ही लुप्त हो गया हो, प्रत्येक अङ्ग सन्तप्त हो गया हो, धैर्य गल गया हो, चेतना छुप गयी हो, मन साफ हो गया हो और मैं ﴾जयकुमार﴿ खिंच गया होऊँ ।

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 30.

राजा जयकुमार विदूषक से अपने संताप को प्रकट करते हुए कहता है कि :-

संकल्पशतविधुरितो धैर्यपरिस्खलनजातवैलक्ष्यः ।
लक्ष्यीकृतः शराणां निसर्गकठिनेन मदनेन ॥[1]

अर्थात् सैकड़ों सङ्कल्पों से मैं [जयकुमार] दुःखी रहा हूँ, धैर्य के छूट जाने से मैं [जयकुमार] लज्जित हो रहा हूँ, तथा स्वभाव से कठोर काम ने मुझे अपने बाणों का निशाना बना रखा है ।

महाकवि हस्तिमल्ल विरचित उपर्युक्त पद्यों का अनुशीलन करने से यह स्पष्ट होता है 'विक्रान्त-कौरवम्' का नायक महाराज जयकुमार, काशीराज की पुत्री एवं 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक की नायिका एवं अतिशय सौन्दर्य की अधिकारिणी सुलोचना पर अनुरक्त है और कामदेव इस नायक को संतप्त कर रहा है ।

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 31.

गङ्गा के तट पर स्थित उद्यान की शोभा अत्यन्त मनोहारी है । सभी लोग गङ्गा स्नान और उसके अतिशय रमणीय स्थान को देखने के लिए लालायित हैं । महाराज जयकुमार, विदूषक के साथ उद्यान में सुलोचना को देखने के लिए बेचैन हैं । जयकुमार की बेचैनी को निम्नलिखित पद्य से समझा जा सकता है :-

यच्चक्रीकरणं करेण सदयं यद्वा नखोल्लेखनं
गण्डाभ्यामुपगूहनं यदसकृद्वक्त्रेण यत्पीडनम् ।
आघ्राणं कुचयोर्यदुत्पुलकयोर्यच्चार्पणं नेत्रयो-
र्यद्वा चूचुकचुम्बनं व्रजतु तद् द्रष्टुं च तां नाप्नुमः ॥[1]

अर्थात् रोमाञ्चित स्तनों को हाथ से दबाकर चपटा करना, अथवा दयापूर्वक नखों से आघात करना, गालों से आलिङ्गन करना, बार-बार मुख से पीड़ित करना, सूंघना, नेत्रों में लगाना अथवा उनके अग्रभाग का जो चुम्बन करना है वह तो दूर रहा, हम [जयकुमार] तो उसे देखने के लिए भी नहीं पा रहे हैं ।

---

1. विक्रान्तकौरवम्, द्वितीय अङ्क, पृष्ठ 56.

जयकुमार के इस कथन को सुनने के बाद विदूषक कहता है कि हे मित्र ! उसके देखने का उपाय है । तदनन्तर राजा पूछता है कि किस तरह ? तब विदूषक कहता है कि - सौविदल्ल ने कहा था कि सौभाग्य स्नान के लिए काशीराज पुत्री सुलोचना यहाँ आवेगी ।[1] विदूषक का यह कथन सुनकर महाराज जयकुमार सुलोचना के पधारने की आशा में अत्यन्त में व्यग्र हो जाते हैं । इसी बीच सुलोचना नवमालिका आदि सखियों के साथ उद्यान में प्रवेश करती है तथा एक वृक्ष के नीचे बैठकर जयकुमार विषयक वार्ता करती है । तभी अचानक विदूषक कहता है कि - यहीं कहीं स्त्रियों का वार्तालाप सुनाई पड़ रहा है और उनको तरफ देखकर पूछता है कि क्या यह माननीय काशीराज की पुत्री ही हैं ? उसको राजा उत्कण्ठा के साथ देखता है और मन में विचार करता है कि 'यह वह सौन्दर्य की नदी है जिसमें सांति रोककर डूबे हुए मेरे नेत्र

---

1. विदूषक: - वअस्स अत्थि तिस्सा दंसणोवाओ । ‡वयस्य अस्ति तस्या दर्शनोपाय:‡

राजा - वयस्य कथमिव ।

विदूषक: - भणिदं खु अम्हाणं सोविदल्लेण लल्लेण, आगमिस्सदि सोहग्गमज्जणत्थं एत्थ कासीराअउत्तित्ति । ‡भणितं खल्वस्माकं सौवि[illegible]ल्लेन लल्लेन । आगमिष्यति सौभाग्यमज्जनार्थमत्र काशीराजपुत्रीति ।‡

- विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 57.

तैरने के लिए स्थान भी नहीं पा रहे हैं, मेरा [जयकुमार का] स्वभाव से चञ्चल मन इस समय जिसमें स्थिर हो रहा है और जिसके द्वारा काम मेरे हृदय को इच्छानुसार भीतर ही भीतर व्यथित कर रहा है ।[1]

राजा जयकुमार सुलोचना के मनोहारी सौन्दर्य को देखकर मन ही मन उस लावण्यमयी राजकुमारी के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहा है । इसी समय नवमालिका

---

1. विदूषक: - [कर्णं दत्त्वा] वअस्स एत्थ एव्व पिअंगुपाअवमूले इत्थिआजणालाओ सुणिज्जइ । [वयस्यात्रैव प्रियंगुपादपमूले स्त्रीजनालाप: श्रूयते ।]

[दृष्ट्वा] कहं एसा तत्तहोदी कासीराअउत्ती । [कथमेषा तत्रभवती काशीराजपुत्री ।]

राजा - [निर्वर्ण्य सोत्कंठं]

इयं सा लावण्यामृतसरिति यस्यां मम दृशौ
निरुच्छ्वासं मग्ने पदमपि लभेते, न तरितुम् ।
स्थिरीभूतं यस्यां प्रकृतितरलं संप्रति मनो
यया काम: कामं हृदयमिदमंतर्व्यथयति ॥

विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 67-68.

और सुलोचना घूमती हैं । विदूषक कहता है कि ये लोग इधर ही आ रही हैं ? राजा सोचता है कि अब क्या करें ? अथवा स्वयं आती हुई इनका मिलना निर्दोष है ।[1]

सुलोचना अपने सामने राजा को देखकर विचार करती हैं कि - अहा, दैव ने उन्हीं को यहाँ ला दिया । जयकुमार को देखने के बाद सुलोचना लज्जा के साथ मुँह फेर लेती है और सोचती है कि अब क्या किया जाय ।[2]

जयकुमार यहाँ धृष्टता करता हुआ सा प्रतीत होता है । वह अपने मन में सोचता है कि यह उत्तम अवसर है और सुलोचना के पास पहुँचकर उसे सान्त्वना देते हुए

---

1. विदूषक - वअस्स इदो एव्व कहं आअच्छंति ।वयस्य इत एव कथमागच्छतः।
   राजा - सखे किमत्र कुर्मः । अथवा स्वयमासीदंत्योरनयोरदुष्ट एव यादृच्छिक उपनिपातः । - विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 71-72.

2. सुलोचना - ।अग्रतो राजानं दृष्ट्वा सलाध्वसं समौत्सुक्यं चात्मगतं। अहो सो एव्व एत्थ समाणीदो देव्वेण । ।अहो स एवात्र समानीतो दैवेन ।।

   सुलोचना - ।सलज्जमपवार्य। हला किं एत्थ करिअदु ।हला किमत्र क्रियतां।

   - वही, पृष्ठ 72.

कहता है कि "जिसके द्वारा अपराध किये जाने पर भी सरलता से रुका हुआ क्रोध अवकाश नहीं पाता है । फिर इस सखि ।नवमालिका। के अपराध न करने पर भी व्यर्थ ही कुपित होकर तुम कहाँ जा रही हो ? तभी नवमालिका कहती है कि हे अन्दारे । अपूर्व दर्शन के कारण समादरणीय इन महानुभाव के वचनों का क्यों उल्लंघन करती हो ? राजा नवमालिका से पूछता है कि - ये कुपित क्यों हो गयी हैं । नवमालिका कहती हैं कि - इन्हीं से पूछ लीजिए । सुलोचना ईर्ष्या के साथ नवमालिका को देखती है । इसी बीच जयकुमार कहता है कि - सुन्दरि । प्रसन्न होओ प्रसन्न ।[1]

---

1. राजा ।स्वगतं। अयमवसर: । ।उपसृत्य ससांत्वनं।। अयि सरले -

येन व्यलीकेपि कृते, न कोपो दाक्षिण्यरुद्धो लभतेऽवकाशम् ।
तस्मिन् जनेऽस्मिन्नकृतापराधे कुतो वृथा त्वं कुपिता प्रयासि ॥

विदूषक - कहं कोवणा अत्तहोदी । ।कथं कोपनात्रभवती। ।

नवमालिका - अदक्खिणे कहं अपुव्वदंसणसंभावणीअस्स इमस्स जणस्स वअणं लंघेसि ।
।अदक्षिणे कथमपूर्वदर्शनसंभावनीयस्यास्य वचनं लङ्घयसि ।।

राजा - सखि कुत: अत्यसौ कुपिता ।

नवमालिका - इमं एव्व पुच्छइ । ।इमामेव पृच्छ।
।सुलोचना सेर्ष्यं नवमालिकां पश्यति।

राजा - सुन्दरि प्रसीद प्रसीद । विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 73.

जैन परम्परा के उत्कृष्ट कवि महाकवि हस्तिमल्ल ने अत्यधिक चतुराई के साथ 'विक्रान्तकौरवम्' के नायक जयकुमार का मिलन नायिका सुलोचना से करवाया है। जयकुमार और सुलोचना जब परस्पर आमने सामने होते हैं तो सुलोचना का मुँह फेर लेना और मुँह फेरने के बाद भी जयकुमार का अवसर पाकर सुलोचना के पास पहुँचना और क्रुद्ध होने का कारण पूछना, यह प्रदर्शित करता है कि जयकुमार अवसर की तलाश में था और अवसर पाने पर सुलोचना से वार्तालाप करने की धृष्टता करता है। नवमालिका भी जयकुमार को सुलोचना से ही कुपित होने का कारण पूछने को कहती है। इससे स्पष्ट होता है कि सखि ने भी जयकुमार की सुलोचना से वार्ता करने में सहायता किया।

काशीराज की पुत्री सुलोचना के स्वयंवर में अनेक प्रतिभाशाली राजा उपस्थित हैं। इन राजाओं में एक अर्ककीर्ति नामक राजा भी उपस्थित है। स्वयंवर में प्रतिहार और सुलोचना की सहेली नवमालिका, सुलोचना के साथ प्रवेश करती है। प्रतिहार एक एक करके सभी राजाओं एवं राजकुमारों का परिचय कराता है किन्तु सुलोचना किसी के गले में स्वयंवर-माला नहीं डालती है। अन्ततः प्रतिहार और नवमालिका काशीराज की पुत्री राजकुमारी सुलोचना को लेकर स्वयंवर में उस स्थान पर पहूँचते हैं, जहाँ महाराज सोमप्रभ के पुत्र जयकुमार बैठे हुए हैं। प्रतीहार उनका

परिचय कराता है ।[1]

जैसे ही प्रतिहार बताता है कि यह महाराजा जयकुमार हैं, वैसे ही राज-कुमारी सुलोचना सङ्कोच करके खड़ी रह जाती है । प्रतिहार अपने मन में सोचता है कि सुलोचना का चित्त योग्य स्थान पर ही लगा है । नवमालिका मुसकराकर कहती है कि प्रियसखि ! क्या दूसरी ओर चलें ? सुलोचना ईर्ष्या और लज्जा के साथ अपना मुख झुका लेती है तब नवमालिका कहती है कि - तो फिर स्वयंवर-माला ली जावे । सुलोचना सङ्कोच और लज्जा के साथ स्वयंवर-माला लेती है और दोनों हाथों से राजा जयकुमार के कन्धे पर माला छोड़ देती है ।[2]

---

1. रूपेण कान्त्या महसा महिम्ना शौर्येण दानेन पराक्रमेण ।
   बिभ्रत्परां कीर्तिमनन्यलभ्यां तस्यैष पुत्रः शमितारिसत्रः ॥ विक्रान्तकौरवम्, पृ० 117.

2. ॥इति सर्वे नाट्यमास्ते॥
   प्रतिहार - ॥विभाव्य॥ स्थान एव लग्नमस्याश्चेतः ।
   नवमालिका - ॥सस्मितं॥ पिअसहि किं अण्णदो गमिस्सामो । ॥प्रिय सखि किमन्यतो गमिष्यामः ।॥
   ॥सुलोचना साभ्यसूयवैलक्ष्यं मुखं नमयति॥
   नवमालिका - तेण हि गह्णंदु एसा सअंवरमाला । ॥तेन हि गृह्यतामेषा स्वयंवरमाला॥
   ॥सुलोचना सलज्जमादत्ते॥
   नवमालिका - पिअसहि इदो एहि । ॥प्रिय सखि इत एहि॥
   नवमालिका - सहि किदत्थेहि एह्णिं तुह मणोरहाइं ।॥सखि कृतार्थेदानीं तव मनोरथान् ।
   ॥इति सुलोचना हस्ताभ्यां राज्ञः स्कन्धे मालामामोचयति॥
   - वही, पृष्ठ 119-120.

स्वयंवर माला छोड़ने के पश्चात् जयजयकार की ध्वनि उठने लगी । तभी एक ओर कोलाहल की आवाज सुनाई पड़ी कि - हे कौरव । हे कौरव । सौभाग्यसम्बन्धी गर्वरूपी रोग से फूली हुई तुम्हारी इन भुजाओं को सब लोग अभी युद्ध में कटी हुई देखेंगे । युद्ध के लिए उत्सुक ये बहुत से राजा तुम्हारे मान का निरादर करने तथा शीघ्र ही तुम्हारी स्त्री - सुलोचना को हरने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।[1] सब लोग इसको सुनते हैं । इस कोलाहल और युद्ध की बात को सुनकर सुलोचना, नव-मालिका, प्रतीहार और पुरुष स्वयंवर मण्डप से बाहर चले जाते हैं ।

यहीं पर महाराज जयकुमार युद्ध की धमकी देने वालों के वध के निमित्त प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं कि - अरे उगले हुए क्षत्रिय कीटों । सुनो इस प्रतिज्ञा को - क्रोध रूपी पिशाच से जिसकी दया रुक गयी है ऐसा यह भयङ्कर कौरव, तुम्हारे उस

---

1. भो भो कौरव कौरव क्षणमिमौ सौभाग्यदर्पाम्यो-
   च्छूनौ संगरभंगुरौ तव भुजौ पश्यंतु सर्वेजना: ।
   भूपाला: प्रतिपालयन्ति भवतस्त्वां युद्धबद्धस्पृहा:
   कर्तुं मानविमाननां द्रुतमभी हर्तुं च ते मानिनीम् ॥

   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 120.

वक्षःस्थल से जिसकी अस्थियाँ बाणों के प्रहार से टूटने के कारण शिथिल पड़ गयी हैं और चूते हुए मस्तिष्क के खण्डों से जिसका मांस ऊपर नीचे हो गया है, मानरूपी कील को उखाड़ता हुआ भय के कारण पहले ही छोड़ने के इच्छुक एवं व्यर्थ के क्रोध से शोचनीय तुम्हारे प्राणों को अभी तुरन्त छेदेगा ।[1]

स्वयंवर में आये हुए राजाओं में से कूत के राजा 'दुर्मर्षण' तथा कुछ अन्य राजा स्वभाव से ही असहिष्णु थे । अतः वे सब अर्ककीर्ति के पास गये और काशीराज अकम्पन के ऊपर यह आरोप लगाये कि अकम्पन, कौरव जयकुमार के पक्षधर हैं । अतः उन्होंने यहाँ पर इतने अधिक राजाओं को बुलाकर जयकुमार की गुणज्ञता प्रमाणित करने के लिए जयकुमार के गले में माला डलवायी है ।[2]

---

1. वक्षः प्रस्थात् क्षुरप्रप्रहतिविघटितग्रंथिबंधश्लथास्थन -
   श्च्योतन्मस्तिष्कशाकलस्थपुटितपिशितादुत्खनन् मानशङ्कुम ।
   त्रासातंकाज्जिहासून प्रथमतरमसून् मोघसंरंभशोच्या -
   नाच्छेत्स्यत्येष रोषग्रहविधृतघृणः कौरवो भैरवो वः ॥ [illegible], पृ0 122.

2. आहूय शाठ्यात् सकलान्नरेन्द्रानकम्पनः कौरव पक्षपाती ।
   गुणित्वमारोपयितुं जयस्य तस्यायमारोपयतिस्म मालाम् ॥ वही, पृष्ठ 127.

उन राजाओं ने अर्ककीर्ति को भड़काते हुए यह भी कहा है कि पिता के आदेश का पालन करते हुए सुलोचना ने आप (अर्ककीर्ति) के रहते हुए भी किसी अन्य का वरण किया, यह एक चिन्तनीय बात है ।[1]

इन दुष्ट एवं असहिष्णु राजाओं की भड़काने वाली बात को सुनकर अर्ककीर्ति ने कहा - मेरे द्वारा अभी जयकुमार की वीरता तथा उसके गुणों को नष्ट कर दिया जायेगा ।[2]

सुराष्ट्र देश के राजा भीम ने भी आग में घी डालने के सदृश अर्ककीर्ति को भड़काते हुए यह कहा कि - दुर्बल कुरु और काशी के सैन्य बल में क्या चक्रवर्ती का आदर हो सकता है ? चक्रवर्ती, जयकुमार और अकम्पन की सेना को समझते ही क्या

---

1. पितुस्तु सकेतमलंघनीयं सुलोचना साप्यनुपालयंती ।
त्वयि स्थिते श्लाघ्यगुणाभिरामे शोच्या कमप्यन्यमभूद् वृणाना ॥
विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 127.

2. बाढं तेऽद्यविशीर्यंते तस्मिन्नारोपिता गुणाः ।
आरोपिते ससंरंभं चापकोट्यां मया गुणे ॥
वही, पृष्ठ 128.

हैं ? भीम ने यह भी कहा कि आप केवल दर्शक ही बने रहें । कायरता से हीन ये अकम्पन के पक्षधर कौन हैं ? कौरव अपना बल कहाँ दिखाते हैं ? भीम ने अपने को अर्ककीर्ति के भौंहों का किङ्कर बताते हुए कहा कि हम लोग बहुत हैं और शत्रुओं का नाश करने के लिए अलग-अलग खड़े हैं ।[1]

भीम आदि राजाओं की इस प्रकार की बात सुनकर अर्ककीर्ति की क्रोधाग्नि भड़क उठी और अर्ककीर्ति ने कहा कि - जो नष्ट हुई शूरवीरता से उद्दण्ड हो रहा है, झूठे ही मध्यस्थ बनता है, जिसने अत्यधिक कष्ट किया है तथा जो अन्याय के मार्ग पर चला रहा है, ऐसे अकम्पन को तुरन्त कम्पित करता हूँ ।[2]

---

1. प्रतीहारः - निसर्गभीषणचेष्टितः सौराष्ट्रो भीमः ससंरम्भमवोचत् । का वा चक्रवर्तिन आस्था विशृङ्खलसंयतंघट्टदुर्बले कुरुकाशिबले ।

   तदत्र - आस्तामप्रतिचक्रविक्रमधनः कामं भवान् प्रेक्षकः
   केऽमी शौर्यविपर्ययप्रलघवः क्रोर्जन्ति ते कौरवाः।
   युद्धाबद्धधियः पृथक्पृथगमी सज्जा वयं भूरिशः
   शत्रूणां दमनाय दुर्दमभुजास्त्वद्भ्रूलताकिंकराः ॥ विक्रान्तकौरवम्, पृ० 129.

2. अध्यस्तशौर्योद्धतमेव मिथ्यामध्यस्थमस्थानकृतातिसंधिम् ।
   किमन्यदन्यायपथप्रवृत्तमकंपनं संप्रति कम्पयामि ॥ वही, पृष्ठ 130.

चक्रवर्ती भरत के पुत्र अकम्पन की बात सुनकर नीति. निरवद्य नाम का मंत्री, जिसको चक्रवर्ती भरत महाराज ने अर्ककीर्ति को यात्रा की व्यवस्था के लिए भेजा था - अर्ककीर्ति को डाँटते हुए कहा - युवराज ! जिस व्यक्ति ने प्रशम गुण के द्वारा मन के समस्त कपटी भाव को शान्त कर दिया है ऐसे काशीराज अकम्पन के सन्दर्भ में तुम्हारी यह अनादर की बुद्धि लाभप्रद नहीं हो सकती है । तुम्हारे विचारक पिता इन्हें अपने पिता से अन्य नहीं समझते हैं तथा वृषभदेव के पुत्र महाराज भरत उद्दण्ड पुत्रों को भी सहन नहीं कर सकते हैं ।[1]

निरवद्य मंत्री ने अर्ककीर्ति को समझाते हुए यह भी कहा कि तुम कौरवेश्वर को समझते क्या हो ? उसने अर्ककीर्ति को समझाते हुए कहा कि जब महाराज भरत की सेना पानी में उतरा रही थी तो जयकुमार ने ही आग्नेय बाण छोड़कर 'पुष्करावर्तक'

---

1. अमुष्मिन् राजर्षौ प्रशमशमितस्वान्तकुसृतौ

न काशीनामीशे तव विगणनासौ गुणवती ।

पितुश्चैनं नान्यं कलयति मनस्वी तव पिता

सुतानप्युद्वृत्तान्न च [illegible] सहते ॥

1-आन्तकौरवम्, पृष्ठ 132.

आदि मेघों को भस्म करके इधर-उधर फैला दिया था ।[1]

निरवद्यमंत्री ने यह भी कहा है कि - चक्रवर्ती महाराज भरत का चक्र आगे रहने मात्र से ही प्रशंसनीय है किन्तु प्राय: कठिन कार्यों की सिद्धि में सोमप्रभ का पुत्र जयकुमार ही प्रशंसा को प्राप्त होता है ।[2]

क्षत्रियों की इस विशाल सभा में निरवद्यमंत्री, जयकुमार की प्रशंसा करते हुए उसकी कीर्ति को डाँट रहा था । मंत्री के वचनों को सुनकर क्षत्रियों का समूह संतर्जित हो रहा था । तभी कौरवेश्वर जयकुमार के पराक्रम की अत्यधिक प्रशंसा सहन न करने

---

1. सप्ताहं सप्तसप्तिस्थगनकृततमः स्तोमविस्तारमग्ने

   मूच्छापारिप्लवेऽस्मिन् भरतप्रतिबले विक्लवे प्लाव्यमाने ।

   वर्षन्तः संतताभिः प्लुतिपिहितदिशः पुष्करावर्तकाद्या

   येनैकेनाक्रियंत ज्वलनशरमुचा भस्मसात्कारकीर्णाः ॥

   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 132.

2. पुरस्सरणमात्रेण श्लाघ्यं चक्रं विशां प्रभोः ।

   प्रायो दुःसाध्यसंसिद्धौ श्लाघते जय एव सः ॥

   वही, पृष्ठ 32.

वाला अर्ककीर्ति, निरवद्य मंत्री का अनादर करता हुआ कठोरता के साथ कहा -तुम्हें कौरव के यश की स्तुति करने में बहुत अधिक कवित्व प्राप्त है । अर्ककीर्ति कहता है कि - जो बरसात होने के कारण फैले हुए रूई के ढेर के समान थे, जिनका स्वभाव ही क्षणमात्र में बिखरना था, जो सदैव घूमने के कारण स्थायी नहीं थे, जो हवा के बहने से प्रेरित थे, ऐसे मेघ जयकुमार सम्बन्धी पराक्रम की विरुदावली के पहले स्थान पर नहीं सकते हैं ।[1]

लोगों के बहुत समझाने-बुझाने के बाद भी अर्ककीर्ति शान्त नहीं हुआ । उसने युद्ध की घोषणा कर दी तथा वहाँ उपस्थित राजाओं ने भी अपने को, जो जिस दल में जाना चाहता था उस दल में जाने की घोषणा कर दी । इसी क्रम में उज्जियनी के राजा जयन्त ने मित्रता के कारण सोमप्रभ के पुत्र जयकुमार का पक्ष लेने की घोषणा कर

---

1. कौरवयशःश्लाघने किमप्यनल्पीयः कवित्वम् ।

पश्य -

कथमिव जलसाराकीर्णतूलौघतुल्याः

क्षणविशरणशीलाः शाश्वतभ्रांतिलोलाः ।

श्वसनचलननुन्नाः [illegible]

प्रथममिह निधानं कौरवस्यांबुवाहाः ॥ विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 133.

दी ।[1]

अर्ककीर्ति के बुआ का लड़का सुनमि है अतः वह अर्ककीर्ति के पक्ष में गया है तथा मेघप्रभ जयकुमार की मौसी का लड़का है अतः मेघप्रभ जयकुमार के साथ है । 'विजयार्ध गिरि' का स्वामी सुनमि जिसके पक्ष में है उसी के पक्ष में विद्याधरों का समूह भी है ।[2]

जयकुमार और अर्ककीर्ति दोनों की सेनाओं ने रणक्षेत्र की ओर प्रयाण किया । सेना का प्रयाण हस्तिमल्ल ने बहुत ही उत्तम ढंग से किया है - कहीं अवकाश रहित, वेगशाली अहङ्कारी अश्व समूह के कठोर खुरों के घात से खुद जाने के कारण बढ़ी हुई वेग से चलने के कारण तथा दुष्ट मद से उन्मत्त हाथियों के समूह सम्बन्धी-चरणों के सम्मर्द से उड़ती हुई, निरन्तर चलते हुए पैदल सैनिकों के समूह-सम्बन्धी पैरों के परिवर्तन से उठी हुई और कहीं निरन्तर चलते हुए रथ सम्बन्धी पहियों के समूह से खुदने के कारण वृद्धि को प्राप्त हुई पृथ्वी तल की सेना से उठी मध्यलोक की धूलि का समूह

---

1. उज्जयनीपतिर्जयंतश्चिरविरूढसौहार्दचोदितः कौरवस्य पक्षतां प्रत्यवादि ।
   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 149.

2. विशां प्रभोरात्मजमर्ककीर्तिं [illegible] सुनमिः प्रपन्नः ।
   मेघप्रभोऽभूत्प्रविचिंत्य मातृष्वस्रीयतामस्य जयस्य गृह्यः ॥
   वही, पृष्ठ 149.

समस्त दिशाओं के समूह को अन्धा कर रही है ।[1]

युद्ध को घोषित करने वाले वाद्य यन्त्र बज उठते हैं । चलते हुए नृप दल के युद्ध सम्बन्धी उद्योग को सूचित करने वाले शङ्ख शब्द कर रहे हैं और आकाश के अन्तराल को व्याप्त करने वाले एवं काहल वाद्य के शब्द से मिला हुआ सेनाओं का कलकल शब्द फैल रहा है ।[2]

पराक्रम से उद्भट, रण-सम्बन्धी रस के रसिक योद्धाओं के सैकड़ों बाणों के पतन से सब लोगों के आवागमन को नष्ट करने वाला अत्यधिक मारकाट से युक्त युद्ध

---

1. स यत्राभूद्विद्याधरमुकुटसंघट्टकषण-
   क्वणत्पीठीकोणस्तुनमिरधिपो राजतगिरेः ।
   उदीच्यां भूमोपि त्वरितमथ संभूय सकल-
   स्तदायत्तस्तस्मादजनि विद्याधरजनः ॥ विक्रान्तकौरवम्, पृ० 149.

2. रसति समरभेरी भैरवारावधीरं
   चलितनृपतिसैन्योद्योगशंखा ध्वनन्ति ।
   प्रसरति च चमूनां ग्रस्तरोदोऽन्तरालः
   कलकलनिनदोऽयं काहलध्वानगर्भः ॥ वही, पृष्ठ 143.

होने लगता है ।[1] इन दोनों ठाकुरों के साथ जो असंख्य सेना है उनके बीच होने वाले युद्ध विषयक कथनोपकथन से पूरा क्षेत्र व्याप्त हो रहा है ।

उपर को उछाल दो, टुकड़े-टुकड़े कर दो, काट दो, खींच दो, कूट दो, बिखेर दो, फेंको, रोक दो, जला दो, मोड़ो, मिलाओ, पछाड़ो, भेद दो, पीटो, मारो, इसी प्रकार के शब्दों के उच्चारण से पूरा रण-क्षेत्र व्याप्त हो रहा है ।[2]

अर्ककीर्ति एवम् जयकुमार की सेना के धुरन्धर योद्धा परस्पर आक्रमण कर रहे थे । कुलूत देश का स्वामी राजा 'दुर्मर्षण' जो अर्ककीर्ति का समर्थक और अत्यन्त

---

1. जयमिह सुभटानां शौर्यसारोद्भटानां
 रणरसरसिकानां वर्तते वर्धते च ।
 शरशतविनिपातक्षुण्णसर्वाभिसार:
 प्रचुरसमभिहारस्साम्प्रतं संप्रहार: ॥ विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 153.

2. उन्नयाघूर्णय कुट्टय छिन्दखण्डयारुंध संधानय
 भिंधि छिंधि मथान ताडय जहि व्यावर्तयापातय ।
 विद्ध्यास्फालय भंज रुंधि विकिर व्याकर्ष चूर्णोद्धरे -
 त्येवं प्रायमिहोच्चरद्वच इदं व्याजायते व्योमनि ॥ वही, पृष्ठ 153.

पराक्रमी है, जो अत्यधिक वेगशाली और ऊँचे 'आङ्गारेयक' नामक हाथी पर सवार होकर युद्ध में भ्रमण कर रहा है।[1] उधर 'दुर्मर्षण' के जवाब में नंद्यावर्त, जो महाराज जयकुमार का समर्थक है, शत्रुओं का मस्तक फोड़ रहा है, 'प्रास' नामक शस्त्र से उलट रहा है, हाथों में धनुष लेकर चारों ओर बाण वर्षा कर रहा है तथा व्यूहों को मुरार के समान विघटित करता हुआ वीरता के साथ घूम रहा है।[2]

कुलूत नरेश दुर्मर्षण की भुजा को नन्द्यावर्त खण्डित कर देता है और दुर्मर्षण की भुजा से मोटी धार निकलने लगती है।[3]

---

1. चरति युधि विलोहितानितिप्रभनितिक्त्य कुलूतभूमिपः ।
   हरितमधिघुसत्त्वमुन्नतं पवनजवं गजमांगरेयकम् ॥ विक्रान्तकौरवम्, पृ० 154.

2. मूर्ध्नः स्फोटयति द्विषां द्विमणिभिर्लोहान् द्विमन् गोलकान्
   कुन्तैः कृन्तति शक्तिभिर्विशसति प्रासैर्विपर्यस्यति ।
   पर्यायेण करद्वयार्पितधनुर्दिग्वक् शरान् वर्षति
   व्यूहानेव विसारस्थया विघटयन् विक्राम्य [illegible] ॥ वही, पृ० 155.

3. रिपुशरमुण्डितात्भुजाद् स्मर[illegible] कुलूतभूमेः ।
   क्षरति रुधिरपूर्णसारणी सृतिरिव वीररसस्य निस्सृता ॥ वही, पृ० 156.

ऐसा भी प्रमाण प्राप्त होता है कि सोमप्रभ के पुत्र जयकुमार और चक्रवर्ती भरत के पुत्र अर्ककीर्ति के समर्थन में उनके भाइयों ने भी युद्ध किया ।[1] महाकवि हस्तिमल्ल ने दोनों राजाओं के भाइयों के युद्ध का वर्णन अतिशय मनोहारी ढंग से किया है । दोनों कुमार युद्ध-कौशल में एक दूसरे से कम नहीं हैं ।

इस महायुद्ध में विद्याधरों द्वारा छलपूर्ण युद्ध करने का प्रमाण प्राप्त होता है।[2] एक तरफ से सभी विद्याधर लोग युद्ध कर रहे हैं और एक तरफ मेघप्रभ अकेला लड़ रहा है ।[3] इस स्थान पर महाकवि हस्तिमल्ल ने अधर्म युद्ध की ओर सङ्केत किया है ।

---

1. अर्ककीर्त्यवरजस्तुरगस्थः स्थैर्यशौर्यसदृशं तुरगस्थम् ।
   संजयंतमजितंजय एनं कौरवानुजमसावभियुङ्क्ते ॥

   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 165.

2. इतो दृश्यतां छलबहुलं वैधाधरं युद्धम् । वही, पृ० 167.

3. कहं एक्कदो सव्वोवि विज्जाहरलोओ एक्कदो अ एक्को मेहप्पहो । हद्धि हद्धि किं एत्थ होहिइ । (कथमेकतस्सर्वोपि विद्याधरलोक एकतश्चैको मेघप्रभः । हा धिक् हा धिक् किमत्र भविष्यति ।)

   वही ।

इस प्रकार हस्तिमल्ल ने बहुत से राजाओं को एक दूसरे से युद्ध करते हुए प्रदर्शित किया है । जयकुमार और अर्ककीर्ति के भाई भी युद्धरत हैं । इस सम्पूर्ण महासमर में जयकुमार और अर्ककीर्ति का युद्ध सर्वाधिक भयङ्कर और बीभत्स है । दोनों एक दूसरे के ऊपर बाणों की वर्षा कर रहे हैं । जयकुमार और अर्ककीर्ति परस्पर एक दूसरे के अस्त्र-शस्त्र को विफल बनाने में लगे हुए हैं ।

जैसे समुद्र के अधिष्ठाता मागध नाम के व्यन्तर पर विजय प्राप्त करते समय मगरमच्छों के संचार सम्बन्धी वेग को जीतता हुआ, भरत चक्रवर्ती का रथ लहरों से चोट करने वाले समुद्र को विघटित करता था, वैसे ही वेग से डर पैदा करने वाला सम्राट पुत्र अर्ककीर्ति का रथ शीघ्र ही कौरवों के [illegible] को भेदता हुआ विघटित कर रहा है ।[1]

---

1. तरंगैराघ्नानं रथ इव पितुर्व्यंतरजये

समुद्रं निर्मुद्रं जितमकरसंचाररभसः ।

कुरूणां निर्भिन्दन् झटिति [illegible]

रथः सम्राट्सूनोर्विघटयति वेगप्रतिभयः ॥

विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 177-178.

युद्ध क्षेत्र में अर्ककीर्ति और जयकुमार दोनों का परस्पर वार्तालाप बहुत ही आकर्षक है । यथा - अर्ककीर्ति कहता है कि म्लेच्छों के युद्ध में कुरुओं की आत्मीयता को देखते हुए पिताजी ने 'पहले मैं प्रहार करूँ - पहले मैं प्रहार करूँ' इस प्रकार के प्रतिज्ञाबद्ध वीरों के रहते हुए भी वीररस से अनभिज्ञ आपके लिए शीघ्र ही वीरपट्ट बाँधकर जिस अर्ककीर्ति को उत्पन्न किया था, आज सुविस्तृत होकर उठी हुई कीर्ति को अर्ककीर्ति क्रोध से अपहृत करता है ।[1]

अर्ककीर्ति के वचनों को सुनकर जयकुमार ने इस प्रकार कहा - जैसे सूर्य के सामने आने वाले चन्द्रमा का प्राणांश हो जाता है, वैसे ही मेरे सामने आने वाले बाणों से स्पृष्ट तुम्हारे (अर्ककीर्ति) पक्ष का ही नाश होने वाला है ।[2]

---

1. म्लेच्छानां समरे कुरोः स्वजनतां तातेन संपश्यता
वीराणां प्रथमेष्वहंप्रथमिकाबद्धप्रतिज्ञेष्वपि ।
बद्ध्वा वीररसानभिज्ञभवतो ज्ञाग्वीरपट्टं कृता
कीर्तिस्तां विततोत्थितामपहरत्यधार्ककीर्तिः क्रुधा ॥

विक्रान्तकौरवम्, पृ० 178.

2. शीतांशोरिव तीक्ष्णांशुं तव मामुपसर्पतः ।
बाणैः स्पृष्टस्य पक्षस्य प्रणाशः प्रांशु [illegible] वही, पृष्ठ 179.

जयकुमार का उत्तर देते हुए अर्ककीर्ति कहता है कि - यह अर्ककीर्ति सूर्य है और चन्द्रवंश में उत्पन्न हुए तुम चन्द्रमा हो इसलिए अरे मूर्ख । अर्ककीर्ति के सम्मुख जाते हुए तुम्हारा ही क्षय होगा ।[1]

महाराज जयकुमार और अर्ककीर्ति के मध्य कथनोपकथन चल ही रहा था कि अर्ककीर्ति ने ऐसे धनुष को नम्रीभूत किया जो सहस्त्रों बाणों को उगलने से भयङ्कर था, कठोर वज्रपात से होने वाले विशाल शब्द के समान, आस्फालन के विशाल शब्द से धीर है, जिसने शत्रु राजाओं की व्यूह रचना को हठपूर्वक विघटित कर दिया है तथा जो युद्ध सम्बन्धी माया से अत्यन्त कुपित है ।[2]

---

1. अर्ककीर्तिरसावर्कः सोमस्त्वं सोमवंशजः ।
   अमुमास्कंदतो मूढ तवैव प्रत्युत क्षयः ॥

   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 179.

2. नमतु शरसहस्रोद्गारसंरंभभीमः
   परुषपविनिपातस्फारविस्फारघोरः ।
   हठविघटितशत्रुक्षत्रियव्यूहबंधः
   स्समरनिकृतिचंडः सामि कोदंडदंडः ॥ वही, पृष्ठ 181.

तदनन्तर विलम्ब को न सहने वाला जयकुमार कहता है कि - तुम्हारे रक्षक के रूप में जो ये आठ चन्द्र तुम्हारे रथ को घेरे हुए हैं, मैं उन्हें अमोघ बाणों से तुरन्त नष्ट कर देता हूँ। हो सकता है कि अष्टचन्द्र के नष्ट होने के बाद तुम युद्ध की इच्छा छोड़ दोगे ।[1]

जयकुमार ने इस प्रकार कहकर अर्ककीर्ति के रथ की रक्षा करने वाले अष्टचन्द्र को नष्ट कर दिया। अष्टचन्द्रों के नष्ट हो जाने के पश्चात् अर्ककीर्ति लज्जित होकर, अमावस्या की रात्रि के समान कान्ति हीन तथा सभी मनोरथों से रहित महाराज चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति असहाय होकर युद्धक्षेत्र में खड़ा है ।[2]

जयकुमार यहाँ पर अपनी उदारता का परिचय देते हुए कहता है कि चूँकि तुम महाराज भरत के पुत्र हो इसलिए मैं अब भी तुम्हारे ऊपर दया करता हूँ। जयकुमार कहता है कि क्षमा करना हमारा पैतृक धन है। अतः तुमसे यही कहता हूँ कि तुम

---

1. येऽमी रथं ते परिवारयन्ते भवत्परित्राणकृतोऽष्टचंद्राः ।
निहन्मि तानेव शरैरमोघैस्त्वं तावदा त्यक्ष्यसिचेद्युयुत्सा ॥
विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 181.

2. अष्टचंद्रविनिपातविलक्षो नष्टचंद्रतिथिनिष्प्रभ एषः ।
चक्रवर्तितनयस्य रथोऽद्य कुण्ठिताखिलमनोरथ आस्ते ॥ वही, पृष्ठ 182.

स्वेच्छा से स्वगृह चले जाओ अन्यथा तुम यमराज के घर ही जाओगे । इसके अति-रिक्त तुम्हारी कोई और गति नहीं होगी ।[1]

जयकुमार की उदारतापूर्ण वाणी को सुनकर अर्ककीर्ति की क्रोधाग्नि भड़क उठी तथा उसने जयकुमार को ललकारते हुए कहा कि अरे कौरव्य ! येन केन प्रकारेण युद्ध का निषेध कर अपना प्राण बचाकर भागना चाहते हो क्या ? अर्ककीर्ति ने अहंकार पूर्ण वाणी में कहा कि सौभाग्य और विक्रम को प्रदान करने वाली माला हमारे सीने पर थोड़े ही लटक रही है । लेकिन तुम्हारे वक्षःस्थल पर जो स्वयंवरमाला लटक रही है, उसको मेरे बाण अभी तुरन्त काट डालते हैं ।[2]

---

1. इदानीमत्यस्ति त्वयि भरतसूनौ मम घृणा
   क्षमा त्युद्वृत्तेषु द्रविणमिह नः पैतृकमिदम् ।
   व्रज स्वैरं युद्धाद् स्वगृहमथवा प्रेतभवनं
   गतिस्तातर्यिकी न पुनरिह काप्यस्ति भवतः ॥
   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 182.

2. कथमपि रणं प्रत्याख्याय स्थिरीकृतजीवितः
   क्व पुनरधुना कौरव्य त्व ...... ।
   उरसि लुठति मे नो सौभाग्यविक्रमदायिनी
   मम तु विशिखाश्छिंदन्त्येते स्वयंवरमालिकाम् ॥ वही, पृ० 183.

जयकुमार ने यहाँ पर शूरवीरों की तरह अर्ककीर्ति की बातों का उपहास बड़े व्यङ्ग्यात्मक ढंग से किया है, न कि क्रोधपूर्वक। जयकुमार, अर्ककीर्ति पर व्यङ्ग्य करते हुए कहता है कि - अरे वाह! यह तुम्हारी बहुत बड़ी बहादुरी है कि तुम फूलों को भी [स्वयंवर-माला] छेदने के लिए तैयार खड़े हो। अर्थात् तुम सुकुमार वस्तु का ही छेदन करने में समर्थ हो, कठोर वस्तुओं अथवा [illegible] से दूर रहने की कोशिश करते हो।[1]

ईर्ष्यालु अर्ककीर्ति ने जयकुमार द्वारा कहे गये इस प्रकार के वचनों को सुनकर कहा कि - यह अस्थिर मेघ नहीं है, चञ्चल आकाश धनुष नहीं है, नश्वर बिजली नहीं है और अति छोटी जल की बूँदे भी नहीं हैं, लेकिन मैं तुम्हें जीतने वाला अर्ककीर्ति हूँ, बहुत अधिक मजबूत हमारा धनुष है, हानि-रहित इसकी डोरी है और प्रहार करने के लिए बाण हैं।[2]

---

1. कथमुपहासोल्लासमाह कौरवः। अहो ते दुष्करकारिता यत्कुसुमान्यपि छेत्तुमातिष्ठसे। विक्रान्तकौरवम्, पृ० 183.

2. नायं तोयधरोऽस्थिरश्चलवपुर्नैतच्चलत्कार्मुकं
   नेयं प्रक्षयिणी तडित्प्रलघवो नैतेऽप्यपां बिंदवः।
   जेताहं भवतोऽर्ककीर्तिरलघुस्थेमेदमस्मद्धनु-
   र्ज्याहानौ विमुखेयमस्य विशिखाश्चैते प्रहारोन्मुखाः॥ वही॥

अर्ककीर्ति की ईर्ष्या और अहंकार से युक्त भाषा को सुनकर जयकुमार ने कहा कि हे चक्रवर्ती भरत पुत्र ! (पक्ष में नाट्य के आचार्य भरत के पुत्र) तुम नट के कार्यों में अच्छी तरह निपुण हो, इसलिए तुम वीर रस के प्रयोगों से रहित होकर अपनी इस तरह की की प्रशंसा करते जा रहे हो ।[1]

ऐसा सुनकर अर्ककीर्ति की भौंहे तन गयीं, ललाट-तट को भीषण एवं कठोर करते हुए कहा कि हे अहंकारी ! मर्यादारहित !. कामोन्मत्त ! ... से मुखर ! कुरुकुल कलङ्की ! वस्तुतः तू आज विरुद्ध स्वभाव का हो गया है, इसलिए तुम मेरे पूज्य पिताजी के प्रति भी उपहास से युक्त शब्दों का प्रयोग कर रहा है । सेवा से शरण देने वाले पिताजी कुरुओं को स्वजन की भाँति समझते हैं । उनके लिए भी तुमने अनादर प्रदर्शित करने वाले शब्दों का प्रयोग किया है । पिता की निन्दा को सहन न करने वाले अर्ककीर्ति ने ललाट-प्रदेश को खण्डित करने वाला, यमराज की डाढ़ों के समान भयङ्कर धारों वाला, वेग से उत्पन्न, अत्यन्त भयावह फलक वाला भाला

---

1. कथमवगणनादारुणमाह कौरवः । अयि भो भरतपुत्र साधु शिक्षितोऽसि नटविभाग-कार्यां यद्वीररसोदारप्रयोगै[illegible]नित्यमेवं विकत्थसे ।

विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 184.

जयकुमार के ऊपर फेंक दिया ।[1]

शूरवीर, रणकौशल में निपुण, सोमप्रभ के पुत्र महाराज जयकुमार ने अर्ककीर्ति द्वारा फेंके गये भाले को न केवल मार्ग में ही चूर-चूर कर डाला अपितु यह भी कहा - अरे अरे पौरव । देखो-देखो-जो हिलते हुए घण्टारूपी जिह्वा के संचालन से उत्पन्न आक्रन्दन से विरस है, चञ्चल ध्वजपट के बहाने जिसकी चोटी के बालों का समूह बिखर रहा है, जो तुम्हारे मरण की सूचना दे रहा है ऐसा, यह तुम्हारी पताका का अग्रभाग मेरे बाण से कटकर पृथ्वी पर तुम्हारे सामने पड़ रहा है ।[2]

---

1. हंत विमुक्क एव्व पोरवेण कअंतदाढाकरालधारापेरंतो रभसुप्पडनभीसण सरिल्लो सणभल्लो ।हंत विमुक्त एव पौरवेण कृतांतदंष्ट्राकरालधारापर्यंत: रभसोत्पतनभीषण-शरवान् भल्ल: ।। विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 185.

2. कहं अद्धपह एव्व कोरवेण तहसुम्मोक्कसमुद्दे हिं सरणिअरेहिं चुण्णिदो सो भल्लो। ।कथमर्धपथ एव कौरवेण तहसोन्मुक्तसमुद्रैः शरनिकरै: चूर्णित: स भल्ल: ।।

ललद्घंटा जिह्वो लुठनरचिताक्रंदविरसं

शिर: केतोरेतन्निपतति पुरस्तात्तव भुवि ।

विमुक्तव्याजेन ध्वजपट शिखा सेनानिचयं

मदीयास्त्रच्छिन्नं तव च निधनं भाव्युपदिशत् ।। वही.

अर्ककीर्ति, जयकुमार के तरकश, कवच, धनुष, बाण, घोड़े, ध्वजा और सारथि को एक साथ खण्डित करने की प्रतिज्ञा करते हुए कहता है - रे रे कौरव । सम्प्रति तुझको अवसर दे रहा हूँ, अतः भयरहित होकर, तुमने शूरवीरों के जितने वचन पहले सुन रखा है उनको इच्छानुसार प्रत्येक क्षण दुहरा ले । उसके बाद क्षण मात्र में अस्त्र-शस्त्र तथा सारथि को एक साथ छोड़े हुए सैकड़ों बाणों से खण्डित देखेगा ।[1]

अर्ककीर्ति की इस प्रतिज्ञा को सुनकर, प्रतिज्ञा और उसकी त्वरित सिद्धि में निपुण जयकुमार ने अर्ककीर्ति के धनुष की डोरी को काट दिया और अर्ककीर्ति का धनुष-दण्ड युद्ध में शत्रु के द्वारा हत होकर, निर्जीव-डोरी रहित (पक्ष में प्राणरहित) होने से निश्चेष्ट हो गया है ।[2]

---

1. संधातुमेकतममुत्सहते पृषत्कं
   यावद्भवान् धनुषि वाञ्छितसंप्रहार: ।
   अस्मत्पतत्रिमुखलूनतया तवेयं
   तावद्द्विधा भवती पश्य शरासनज्या ॥
   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 186.

2. पश्य कोदंडदंडोऽयमर्ककीर्तेर्गतौजस: ।
   निर्जीवित्तिमितो जात: शत्रुणा समरे हत: ॥ वही, पृष्ठ 187.

जयकुमार ने अर्ककीर्ति की डोरी काटकर तुरन्त अर्ककीर्ति के रथ पर चढ़कर लज्जा के कारण चुपचाप बैठे हुए अर्ककीर्ति को पकड़ लिया । अर्ककीर्ति की सेना इतस्ततः भाग गयी तथा जयकुमार की विजय का कोलाहल उठ खड़ा हुआ । अर्ककीर्ति का कपट रूपी वज्र उसके ही मस्तक पर पड़ गया । महाकवि हस्तिमल्ल द्वारा प्रस्तुत इस महासङ्ग्राम में यह कुसमति का पुत्र जयकुमार युद्ध की इच्छा से उद्धत लोगों के बाहुबल के गर्व के भार को अच्छी तरह उतारकर भरत के पुत्र अर्ककीर्ति की दोनों भुजाओं को बाँध रहा है । इसके पक्ष के लोग आकर छुड़ावें ।[1]

इस प्रकार सुलोचना द्वारा स्वयंवर माला जयकुमार के गले में डाल देने के कारण और ईर्ष्यालु एवं अहंकारी अर्ककीर्ति के हठ के कारण जो सङ्ग्राम जयकुमार और अर्ककीर्ति में हुआ उसमें कौरवेश्वर जयकुमार की उत्कृष्ट सेना विजय को प्राप्त हुई और

---

1. अयमयमिह युद्धाविद्धगर्वोद्धतानां

भुजबलमदभारं स्वैरमध्यावरोप्य ।

नियमयति भुजौ द्वौ भारतस्यार्ककीर्ते -

र्युधि कुसमतिसूनुर्मोचयंत्वेतदीया: ॥

विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 188.

पौरव अर्ककीर्ति की सेना पराजय को प्राप्त हुई ।[1]

हस्तिमल्ल महाकवि ने अपने 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक के नायक महाराज जयकुमार को अपने उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध नायक के रूप में प्रस्तुत किया है । जयकुमार में प्रतिबद्धता कूट-कूट कर भरी हुई है । जयकुमार अपने प्रेम के प्रति भी आश्वस्त है । वह सुलोचना को पाने के लिए किसी स्तर तक जा सकता है । इसका स्फुट उदाहरण स्वयंवर माला पहनने के बाद अर्ककीर्ति से युद्ध करना और उसे युद्ध में पराजित करना ।

जयकुमार की उदारता भी 'विक्रान्तकौरवम्' के चतुर्थ अङ्क में 182 पृष्ठ पर ध्यातव्य है । वह अर्ककीर्ति के रथों की रक्षा करने वाले अष्टचन्द्रों को खण्डित करने के बाद भी अर्ककीर्ति से कहता है कि - हमारा पैतृक धन है शरणागत को क्षमा करना ।

जयकुमार लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अवसर का सही उपयोग करने में भी

---

1. परा जयमसौ प्राप्ता कौरवस्य पताकिनी ।

   पराजयमसौ प्राप्ता पौरवस्य पताकिनी ॥

   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 189.

निपुण है । क्योंकि वह अवसर पाने पर अपनी प्रेयसी सुलोचना से वार्तालाप करने में तनिक भी विलम्ब नहीं करता है ।

इस प्रकार हम जयकुमार को धीरोदात्त कोटि के नायक के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं क्योंकि वह अत्यन्त पराक्रमशाली है, क्षमाशील है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दृढ है ।[1]

## सुलोचना

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में काशी के राजा अकम्पन की पुत्री 'सुलोचना' को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है । सुलोचना ने सर्वप्रथम सोमप्रभ पुत्र जयकुमार को नगर देवता की यात्रा के दौरान देखा था । हस्तिमल्ल ने सुलोचना को जयकुमार का दर्शन अधोलिखित ढंग से कराया है -

अथ तपदि यदृच्छाबद्धलक्ष्यां वलक्षा-
धुतिशबलितपातां कौरवे गौरवेण ।

---

1. महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्त दृढव्रतः ॥ दशरूपकम्, द्वितीय प्रकाश, कारिका 4, पृष्ठ 107.

न्यधित दृशमपांगासंगिनीं स्निग्धमुग्धां

कुवलयदलदामश्यामलां कोमलाङ्गी ॥[1]

अर्थात् जाती हुई सुलोचना ने बड़े गौरव के साथ कुरुराज पर शीघ्र ही अपनी वह दृष्टि डाली, जिसका लक्ष्य अनायास ही बद्ध हुआ था, जिसकी चितवन सफेद कान्ति से चित्रित थी, जो कटाक्षों से युक्त थी, स्नेहपूर्ण तथा मनोहर थी और नीलकमलदल की माला के समान श्यामवर्ण थी ।

सुलोचना गङ्गा तट के उद्यान में बैठी हुई यह विचार कर रही है कि स्वेच्छा से दर्शन के सुख को देने वाले उन महाबाहु ने यह भी नहीं सोचा कि कन्याओं को देखना कुल के विरुद्ध है और मैं उनके द्वारा एक साथ नेत्रों की विहारस्थली बना ली गयी । सुलोचना सोचती है कि स्वयंवर करने की इच्छुक मैं स्वयं थी परन्तु नेत्रों के लिए पूर्णचन्द्रस्वरूप उन्होंने मुझे पहले ही खिले हुए सफेद कमल के समान स्निग्ध बरौनियों से युक्त सफेद एवं बड़े-बड़े नेत्रों स्वयं वर लिया ।[2]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 20.

2. वही, पृष्ठ 61-62.

सुलोचना को लेकर जब स्वयंवर में प्रतिहार जयकुमार के आसन् के पास पहुँचता है और बताता है कि कि यह सोमप्रभ का पुत्र महाराज जयकुमार हैं, तो सुलोचना वहीं रुक जाती है और अपने में विचार करती है कि क्या आर्यपुत्र हैं ? (कामचेष्टा को प्रकट करती है) अरे, जब कि इन महानुभाव को देखने के लिए भी समर्थ नहीं हूँ, तब गले में माला कैसे छोडूँगी ?

(इस प्रकार वह लज्जा से सङ्कोच कर खड़ी रह जाती है)

सुलोचना ईर्ष्या और लज्जा के साथ मुख झुका लेती है । वह सुलोचना लज्जा के साथ स्वयंवर-माला लेती है और दोनों हाथों से राजा के कन्धे पर माला छोड़ देती है ।[1]

तदनन्तर काशीराज अकम्पन के द्वारा सुलोचना सोमप्रभ के पुत्र जयकुमार को अर्पित की जाती है । महाराज अकम्पन कहते हैं कि हे कौरव कुमुदचन्द्र ! मैं तुम्हारे लिए यह गुणरूपी रत्नों से परिपूर्ण सुलोचना अर्पण करता हूँ । आप इसे स्वीकृत करें, आप इसके स्वयंवृत पति हैं । इसलिए इस समय धन की धारा को

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 119.

वर्षाने वाला तुम्हारा हाथ दान सम्बन्धी जल की धारा को ग्रहण करें तथा पृथ्वी के कर ‡राजस्व‡ ग्रहण की उपेक्षा कर सुलोचना के कर ‡हाथ‡ को स्वीकार करें ।[1]

इस प्रकार अकम्पन राजा जयकुमार के हाथ में जल धारा छोड़कर सुलोचना का हाथ अर्पित करते हैं ।[2]

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्त कौरवम्' नामक नाटक में सुलोचना को लज्जाशील स्त्री प्राय तथा नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है । सुलोचना महाराज जयकुमार का वरण करना चाहती है किन्तु लज्जावश वह स्वयंवर में सकुच कर खड़ी रह जाती है । वह स्वत: यह नहीं कहती है कि स्वयंवर माला ले आओ । बल्कि जब उसकी सहेली नवमालिका उससे कहती है कि सखि ! क्या दूसरी ओर चला जाय तो सुलोचना नवमालिका की ओर ईर्ष्या, लज्जा तथा सङ्कोचपूर्ण नेत्रों से देखती है ।

---

1. इयं मया कौरवकैरवेन्दो तुभ्यं वितीर्णा गुणरत्नपूर्णा ।
   सुलोचना स्वीक्रियतां च तस्या:स्वयं वृतेन प्रथमं वरेण॥
   वसुधारावर्षी ते प्रतीच्छतु कर: प्रदानजलधाराम् ।
   गृह्णातु च करमस्या विगणितपृथ्वीकरादान: ॥ विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 269.

2. राज्ञो हस्ते सलिलधारामावर्ज्य हस्तमस्या अर्पयति । वही, पृष्ठ 269.

सुलोचना में उच्छृङ्खलता का दर्शन नहीं होता है । सुलोचना जयकुमार को देखना चाहती है किन्तु जब वह गङ्गा तट के उद्यान में अचानक जयकुमार के सामने पड़ जाती है तो वह अपना मुँह वापस फेर लेती है और नवमालिका से कहती है कि सखि ! अब क्या होगा ।[1]

अकम्पन

हस्तिमल्ल ने अपने 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में अकम्पन को सुलोचना के पिता एवं काशी के राजा के रूप में प्रस्तुत किया है । महाराज अकम्पन ने ही अपनी पुत्री के स्वयंवर का आयोजन किया था ।

महाराज अकम्पन को एक चरित्रवान् एवं उदार पात्र के रूप में हस्तिमल्ल ने प्रस्तुत किया है । अकम्पन ने जिस उदारता का परिचय अर्ककीर्ति और जयकुमार के युद्ध के दौरान दिया वह वस्तुतः स्तुत्य है । जब स्वयंवर में राजकुमारी सुलोचना ने माला जयकुमार के गले में डाल दी तो ईर्ष्यालु अर्ककीर्ति ने जयकुमार से युद्ध करने और काशीराज की पुत्री सुलोचना का हरण करने की प्रतिज्ञा कर ली । महाराज काशीनरेश अकम्पन, युद्ध की विभीषिका टालने और शान्ति के लिए अपने दूत प्रतिहार

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 72.

को अर्ककीर्ति के पास भेजकर, अपनी दूसरी कन्या 'रत्नमाला' को देने का प्रस्ताव करके अपनी उदारता का परिचय दिया है।[1] यह एक दूसरी बात है कि उस समय अर्ककीर्ति ने महाराज अकम्पन के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और युद्ध के अपने अहङ्कारपूर्ण निर्णय पर अडिग रहा।

महाराज अकम्पन का उदात्त चरित्र हमें उस समय शिखर पर दिखायी देता है जब वे अर्ककीर्ति की पराजय के बाद भी अपनी दूसरी पुत्री 'रत्नमाला', अर्ककीर्ति को देने में विलम्ब नहीं करते हैं। महाराज अकम्पन यदि चाहते तो अर्ककीर्ति के पराजित होने पर उसे रत्नमाला न प्रदान करते, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया और अर्ककीर्ति के हारने के बाद भी वे 'रत्नमाला' उसी को प्रदान करते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं समझना चाहिए कि काशीराज अकम्पन उससे डर गये थे, बल्कि वे भविष्य में भी दोनों राजवंशों के साथ शान्ति चाहते थे। इसलिये काशी नरेश अकम्पन, सुलोचना तो जयकुमार को बाद में प्रदान करते हैं और

---

1. इयं तनूजा मम रत्नमाला गुणाधिकं त्वां सदृशी गुणेन।
   अनन्यसाधारण-भागधेयं वरं वृणीतां मदनुज्ञयैव ॥

विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 135-136.

रत्नमाला को, अर्ककीर्ति को पहले ही प्रदान कर देते हैं ।[1]

## भरत

महाराज चक्रवर्ती भरत को हस्तिमल्ल ने अपने नाटक 'विक्रान्त-कौरवम्' में एक उदात्त एवं महान् पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है । महाराज भरत की महानता को निरवद्य मन्त्री ने उस समय स्पष्ट किया है, जब अर्ककीर्ति, काशीराज अकम्पन के लिए अनादरपूर्ण शब्दों का प्रयोग करता है । निरवद्य मंत्री, अर्ककीर्ति को समझाते हुए कहता है कि तुम्हारे पिता महाराज चक्रवर्ती भरत अशिष्ट पुत्रों को भी सहन नहीं करते हैं ।[2] इससे स्पष्ट होता है कि जो व्यक्ति अपने पुत्रों की

---

1. अनुपमगुणगुर्वीं रत्नमालां प्रदाय
   प्रथमतरममुष्मै सत्कृतिप्रीणिताय ।
   भरतपतिरनेन स्वैरमाराधितो भूत्
   स्वकुलमपि गरिम्णाऽयोजि संबंधभारात् ॥
   विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 248.

2. अमुष्मिन् राजर्षौ प्रशमशमितस्वांतकुसृतौ
   न काशीनामीशे तव विगणनासौ गुणवती ।
   पितुश्चैनं नान्यं कलयति मनस्वी तव पिता
   सुतानप्युद्वृत्तान्न च वृषभसूनुस्स सहते ॥ वही, पृष्ठ 131-132.

सुलोचना के हरण की प्रतिज्ञा कर लेता है । उसी के परिणामस्वरूप वह युद्ध में पराजित होता है और बाँध लिया जाता है । यहाँ पर अर्ककीर्ति विधिवत् अपमानित होता है और वह असहाय होकर युद्ध क्षेत्र में खड़ा रहता है ।

अर्ककीर्ति एक अशिष्ट और उद्दण्ड पात्र के रूप में भी हमारे सामने प्रस्तुत होता है । जब निरवद्य, अर्ककीर्ति को समझा रहा है तो वह अनादरपूर्वक निरवद्य मंत्री की बात को बीच में ही काटकर कहता है कि - यद्यपि वह कौरव पराक्रमियों में विख्यात है, यह ठीक है, लेकिन इस सन्दर्भ में युद्धरूपी कसौटी के रहते हुए मात्र आपके वचन ही प्रमाण नहीं हो सकते हैं । इसलिए आप शूर-वीरता की कथा से उत्पन्न हुई इसकी बलवत्ता को अभी युद्ध में शीघ्र ही बिखरती हुई देखेंगे ।[1]

इससे यह स्पष्ट होता है कि अर्ककीर्ति एक अशिष्ट पात्र है । उसकी अशिष्टता में कथमपि सन्देह नहीं हो सकता है । क्योंकि वह अपने से बड़े लोगों की बातों को बीच में काट देता है ।

---

1. ख्यात: पराक्रमिषु यद्यपि कौरवोऽसौ

सत्यत्र युद्ध निकषे न गिर: प्रमाणम् ।

आर्यस्तु पश्यतु तदस्य विशीर्यमाणं

शौंडीर्यमाशु युधि शौर्यकथासमुत्थम् ॥ विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 134 ॥

उद्दण्डता को सहन नहीं कर सकता है वह दूसरों की उद्दण्डता को कैसे सहन करेगा ? अर्थात् चक्रवर्ती महाराज भरत की महत्ता एवं उदात्तता इस रूप में श्लाघनीय है कि किसी की भी उद्दण्डता और शिष्टता सहन नहीं करते हैं, चाहे वह उनका पुत्र हो या कोई अन्य व्यक्ति । महाराज भरत को हस्तिमल्ल ने एक 'शिष्टाचारप्रिय' राजा के रूप में उपस्थित किया है ।

महाराज चक्रवर्ती भरत का मूल्याङ्कन जब हम इस आलोक में करते हैं कि वे अपने पुत्र अर्ककीर्ति का पक्ष न लेकर युद्ध में तटस्थ रहे, तो उनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है ।

## अर्ककीर्ति

हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्त-कौरवम्' में अर्ककीर्ति को प्रतिनायक[1] के रूप में प्रस्तुत किया । अर्ककीर्ति चक्रवर्ती भरत का पुत्र है । अर्ककीर्ति ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार तथा हठी के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है । यदि अर्ककीर्ति स्वयंवर सभा में अपने हठ पर अडिग न रहता और 'रत्नमाला' को ग्रहण कर शान्त हो जाता तो सम्भवत: हमें उसका मूल्याङ्कन हठी पात्र के रूप में न करना पड़ता । अहंकारवश अर्ककीर्ति ने किसी की बात न मानी और जयकुमार के बध की एवं

---

1. लुब्धो धीरोद्धत: स्तब्ध: पापकृद् व्यसनी रिपु: ।
   तस्य नायकस्येत्थंभूत: प्रतिपक्षनायको भवति । यथा रामयुधिष्ठिरयोर् रावण-दुर्योधनो । दशरूपकम्, द्वितीय प्रकाश, पृ० 121.

अर्ककीर्ति में स्वविवेक का अभाव पूर्णतः परिलक्षित होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि अर्ककीर्ति, कुरूत देश के स्वामी दुर्मर्षण आदि राजाओं के कहने से ही स्वयंवर में क्रुद्ध हुआ और भड़क उठा । अर्ककीर्ति में यदि थोड़ी बहुत भी विवेक-शक्ति होती तो वह सोचता, कि जब सुलोचना स्वयं ही जयकुमार का वरण कर चुकी है तो मुझे [अर्ककीर्ति] वरण करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । अर्ककीर्ति से जब दुर्मर्षण ने कहा कि अकम्पन, जयकुमार का पक्षपाती है और उसके गले में माला डलवायी है । तब अर्ककीर्ति कहता है कि अभी मेरा धनुष जयकुमार में आरोपित गुण-शूरवीरता आदि का नाश कर देगा ।[1]

अर्ककीर्ति का अहङ्कार ही उसके पराजय का कारण भी बना है । अर्ककीर्ति के अहङ्कार का यह दृश्य ध्यातव्य है -

नायं तोयधरो स्थिरश्चलवपुर्नैतद्धियत्कार्मुकं
नेयं प्रक्षायिणी तडित्प्रलघ्वो नैतेप्यपां बिंदवः ।

---

1. बाढं ते द्यविशीर्यते तस्मिन्नारोपिता गुणाः ।
आरोपिते ससंरंभं चापकोट्यां मया गुणे ॥
विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 128.

जेताहं भवतोर्ककीर्तिरलघुस्थेमेदमस्मद्धनु-

ज्याहानौ विमुखेयमस्य विशिखाश्चैते प्रहारोन्मुखाः ॥[1]

अर्थात् वह अपनी प्रशंसा करते हुए कहता है कि - यह अस्थिर मेघ नहीं है और ये अतिशय छोटी जल की बूँदे नहीं हैं, यह नश्वर बिजली भी नहीं है किन्तु मैं तुमको जीतने वाला अर्ककीर्ति हूँ, अत्यधिक मजबूत हमारा धनुष है, यह हानि से रहित इसकी डोरी है और यह प्रहार करने के लिए हमारा धनुष बाण है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हस्तिमल्ल ने अर्ककीर्ति का उत्थान ईर्ष्या, अहङ्कार और अविवेकी पात्र के रूप में करते हुए उसका अवसान बहुत ही लज्जा और अपमानजनक पात्र के रूप में किया है ।

## 'अञ्जनापवनञ्जय'

### पवनञ्जय

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'अञ्जनापवनञ्जय' नामक नाटक में 'पवनञ्जय' को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है । पवनञ्जय विद्याधर के राजा 'प्रह्लाद' का लड़का

---

1. विक्रान्तकौरवम्, पृष्ठ 183.

है । जो 'अञ्जना' से प्रेम करता है । अञ्जना को उसने पहले कहीं देखा था । अञ्जना और उसकी सहेलियों द्वारा किये जा रहे झूठे स्वयंवर को पवनञ्जय और विदूषक छिपकर देखते हैं । इस झूठे स्वयंवर में अञ्जनापवनञ्जय का तथा वसन्तमाला, अञ्जना का अभिनय करती है । वसन्तमाला (अञ्जना), अञ्जना (पवनञ्जय) के गले में स्वयंवर माला डाल देती है । इसके तुरन्त बाद पवनञ्जय जो कि छिपकर इस मिथ्या स्वयंवर को देख रहा था, अञ्जना और वसन्तमाला के सम्मुख उपस्थित होता है । अञ्जना लज्जा के वशीभूत होकर चलने को उद्यत होती है किन्तु पवनञ्जय अञ्जना का हाथ पकड़ लेता है । इसी समय अञ्जना की माँ उसे स्नान के लिए बुला लेती है और वह पवनञ्जय से विदा लेकर सखियों के साथ चली जाती है ।[1]

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम पवनञ्जय का मूल्याङ्कन एक धृष्ट अभिनेता के रूप में भी कर सकते हैं । क्योंकि पवनञ्जय, अवसर पाने पर जरा भी देर नहीं करता है और अञ्जना के पास पहुँचकर उसका हाथ पकड़कर उससे वार्तालाप की धृष्टता करता है ।

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, प्रथम अङ्क, पृष्ठ 17-19.

पवनञ्जय का मूल्याङ्कन हम एक पितृ-भक्त और आज्ञापालक पुत्र के रूप में कर सकते हैं। क्योंकि जब पवनञ्जय को यह पता चलता है कि उसके पिता प्रह्लाद रावण के दो सेनापतियों को छुड़ाने के उद्देश्य से वरुण के ऊपर आक्रमण करना चाहते हैं तो वह स्वयं अपने पिता प्रह्लाद को इस बात के लिए राजी कर लेता है कि अकेले ही वरुण के ऊपर आक्रमण करने की उसे (पवनञ्जय) आज्ञा दें।[1]

पवनञ्जय का मूल्याङ्कन हम एक प्रेमासक्त नायक के रूप में भी कर सकते हैं। पवनञ्जय और वरुण के बीच युद्ध चल रहा है। पवनञ्जय पूरे दिन सेना का निरीक्षण करने के पश्चात् कुमुद्वतीतीर (BANK OF LOTUS POND) पर आराम

---

1. अमात्य: - एवं चाभ्यर्थितो महाराज: कुमारमाहूय पुरं परिपालयितुमत्रैव समवस्थाप्य स्वयं प्रस्थानाय प्रारभते।

पवनञ्जय: - (सहासम्) आर्य कुतोऽयमस्थान एव तातस्य प्रस्थानसंरम्भ:।

निर्भिन्नद्विरदेन्द्रमस्तकतटीनिर्मुक्तमुक्ताफल-
श्रेणीदन्तुरदन्तकुन्तविवरो यो राजकण्ठीरव:।
सोऽयं मानमहान् स्वयं मृगशिशुव्यापादनव्यापृत:
किं कीर्त्यन्तरमात्मनो जनयति प्रख्याततच्छौर्योचितम्॥

तदिदानीमेतावन्मात्रे वस्तुनि ममैव तावद् गमनेन पर्याप्तम्।

अञ्जनापवनञ्जय, द्वितीयोऽङ्क:, पृष्ठ 34.

कर रहा है । इसी समय वह एक मादा चक्रवाक को देखता है, जो अपने साथी से वियोग के कारण दुर्बल हो रही है । इसे देखकर पवनञ्जय, अञ्जना से मिलने के लिए व्यग्र हो जाता है और वह एक विमान से रात में ही अञ्जना से मिलने जाता है और रात उसके साथ बिताकर पुनः प्रातःकाल युद्धक्षेत्र में आ जाता है ।[1]

---

1. (उभावारुह्य विमानयानं निरूपयतः)

पवनञ्जयः - (विमानवेगं निर्वर्ण्य)

ज्योत्स्नाम्भसि व्योममयः पयोधौ धावन्तमत्राशु विमानपोतम् ।
अद्यानुधावन्निव लक्ष्यतेऽसौ प्रालेयरोचिः परिवारपोतः ॥

---

(ततः प्रविशति विरहोत्कण्ठिता अञ्जना, शिशिरोपचारव्यग्रा च वसन्तमाला।)

---

पवनञ्जयः - (श्रुत्वा दृष्ट्वा च, आत्मगतम्) कथमिदानीमवस्थान्तरे वर्तते प्रिया । इयं हि

तन्वी विश्लथनीविबाष्पाविललोचना सनिःश्वसिता ।
आस्त्रस्तकेशपाशा संगम इव वर्तते विरहे ॥

अञ्जना - हा अज्जउत्त, कआ मे दंसणसुहं देसि । (हा आर्यपुत्र, कदा मे दर्शनसुखं ददासि ।) (इति मुह्यति)

पवनञ्जयः - (ससंभ्रममुपसृत्य) प्रिये, समाश्वसिहि ।

अञ्जना - (समाश्वस्य दृष्ट्वा च सोच्छ्वासम्) कहं अज्जउत्तो । (कथम् आर्यपुत्रः)

(प्रत्युत्थातुमिच्छति ।)

पवनञ्जयः - अलमलमतियन्त्रणया तत्रैव स्वैरमास्यतां तन्वि ।
साक्षात् कटाक्षसाध्ये दासजने कोऽयमुपचारः ॥

अञ्जनापवनञ्जय, पृष्ठ 46-50.

इससे यह सिद्ध होता है कि पवनञ्जय प्रेमासक्त और कामी नायक है । क्योंकि वह अपनी कामेच्छा को रोक नहीं पाता है तथा उसके शमन् के लिए अञ्जना के पास पहुँच जाता है ।

महाकवि हस्तिमल्ल ने पवनञ्जय को वीर योद्धा के रूप में भी प्रस्तुत किया है । पवनञ्जय युद्ध में वरुण को हरा देता है और रावण के दोनों सेनापतियों खर-दूषण को छुड़ा लेता है । पवनञ्जय को एक उदार राजकुमार के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है । पवनञ्जय की यह उदारता ध्यातव्य है कि वह वरुण को हराने के बाद उससे मित्रता का समझौता कर लेता है । तत्पश्चात् पवनञ्जय विजयार्ध पर्वत पर लौटता है ।[1]

इस प्रकार जैन परम्परा के उत्कृष्ट कवि हस्तिमल्ल ने 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक में पवनञ्जय को एक प्रेमासक्त, वीर और उदार पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है ।

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, पञ्चमोऽङ्कः, पृष्ठ 66-70.

## अञ्जना

महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'अञ्जनापवनञ्जय' नामक नाटक में 'अञ्जना' हमारे सम्मुख नायिका के रूप में प्रस्तुत होती है । अञ्जना को हस्तिमल्ल ने एक चरित्रवती नारी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है ।

अञ्जना उस समय काफी चिन्तित है जब वह गर्भवती हो जाती है । उसकी चिन्ता का कारण यह है कि सब लोग जानते हैं कि पवनञ्जय तो युद्धक्षेत्र में है, तब कैसे अञ्जना ने गर्भ धारण किया है ? जबकि वस्तुत: पवनञ्जय विमान द्वारा रात्रि में अञ्जना के पास आता है और उसके साथ रात्रि व्यतीत करता है और सुबह युद्धक्षेत्र में चला जाता है । इसी रात्रि प्रवास के समय अञ्जना गर्भ धारण करती है । अञ्जना केतुमति के कारण विशेष रूप से चिन्तित है क्योंकि केतुमति महिलाओं के चरित्र के विषय में काफी कठोर महिला है ।[1]

अञ्जना यहाँ पर धर्मसङ्कट में पड़ी हुई सी प्रतीत होती है क्योंकि जब उसका पति पवनञ्जय रात्रि में युद्धक्षेत्र से उससे मिलने आता है तो उसको वह रोक

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, पृष्ठ 51-54.

नहीं पाती है, अन्यथा पतिदेव का अपमान होता और मिलने के चार महीने बाद जब उसे गर्भ के सङ्केत मिलने लगते हैं तो वह सामाजिक लज्जा के कारण अत्यन्त दुःखी है ।

अञ्जना जब 'विद्याधर भैरवक्रूर' के द्वारा अपने माता-पिता के घर ले जायी जा रही है तो उसने माता-पिता के घर जाने से इनकार कर दिया और अपनी सहेली के साथ लोक-लज्जा के कारण 'मातङ्गमालिनी' नामक जङ्गल में रहने लगती है ।[1]

अञ्जना का स्व-पति पवनञ्जय से वियोग होने पर महाकवि हस्तिमल्ल ने अञ्जना को एक पतिव्रता विरहिणी के रूप में बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है ।[2]

अञ्जना और पवनञ्जय के मिलन के समय अञ्जना द्वारा पवनञ्जय को देखना, आश्चर्य करना और सहसा पवन जय के समीप पहुँचकर, गले से लगना,

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, पृष्ठ 83.

2. वही, पृष्ठ 88.

अञ्जना के अभिसार की उत्कण्ठा को द्योतित करता है ।[1]

इस प्रकार हस्तिमल्ल ने अञ्जना को लोक-लज्जा से डरने वाली, पति का सम्मान करने वाली, वियोगिनी एवं त्वरित अभिसार में निपुण नारी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है ।

## सुभद्रानाटिका

### राजा भरत

महाराज भरत को हस्तिमल्ल ने अपने 'सुभद्रा' नामक नाटिका के नायक के रूप में प्रस्तुत किया है । राजा भरत 'वेदिवन' में विदूषक के साथ भ्रमण कर रहा है । यहीं पर राजा भरत विद्याधर कन्या सुभद्रा को देखता है । सुभद्रा 'राजताकला' (विजयार्ध) के क्षेत्र में घूम रही है । राजा भरत यहीं पर सुभद्रा के साथ प्रेम-विषयक वार्ता कर रहा है । तब तक रानी वहाँ पहुँच जाती है और सुभद्रा वहाँ से चली जाती है ।[2]

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, पृष्ठ 103.

2. सुभद्रानाटिका, पृष्ठ 15-16.

राजा भरत की प्रेम व्यथा और गम्भीर होती है । राजा भरत 'वेदि-वन' में बैठकर स्वतः बनाये हुए सुभद्रा के चित्र को देख रहा है, तभी रानी 'वैलाती' भी वहाँ पहुँच जाती है । राजा भरत क्षमा माँगने की कोशिश करता है किन्तु रानी उसकी बात नहीं मानती है । भरत और वैलाती के बीच हुए इस घटना-क्रम को सुभद्रा झुरमुटों में छिपकर देखती है तथा रानी वैलाती के चले जाने पर सुभद्रा राजा के पास पहुँचती है । राजा उसे बताता है कि रानी का यह व्यवहार दाक्षिण्य की भावना से प्रेरित है । इसके बावजूद राजा सुभद्रा से प्रेम करता है और उसका हाथ पकड़ लेता है । तभी उसकी सहेली उसे बुला लेती है और वह राजा से विदा लेकर चली जाती है ।[1]

हस्तिमल्ल ने राजा भरत को सुभद्रा को प्राप्त करने के लिए रानी 'वैलाती' को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए प्रस्तुत किया है ।[2] इससे यह स्पष्ट है कि

---

1. सुभद्रानाटिका, पृष्ठ 43-44.
2. राजा - सुन्दरि, कोऽयं प्रत्युत प्रणामः ।अग्रतो भूत्वा। देवि,

   स्पृष्टुमद्य चरणौ बिभेमि ते नूतनाविनयजातसाध्वसः ।
   एष केवलमहं तवाग्रतस्ताडयामि शिरसा महीतलम् ॥

   वही, पृष्ठ 65.

राजा भरत सुभद्रा के प्रेम में निमग्न है । जब महाराज नमि यह घोषणा करते हैं कि वह अपनी बहन सुभद्रा का विवाह राजा भरत से करेंगे तो भरत की प्रसन्नता की सीमा ही नहीं रहती है ।

महाराज भरत की प्रसन्नता का स्पष्ट प्रमाण यह है कि वह अत्यधिक प्रसन्न होकर राजा 'विलात्' को 'मध्यमोत्तर खण्ड' का स्वामी बना देते हैं और युवराज चक्रसेन को 'पश्चिम खण्ड' का स्वामी बनाने का आदेश निर्गत करते हैं ।[1]

## सुभद्रा

जैन परम्परा के जाज्वल्यमान हीरक महाकवि हस्तिमल्ल ने अपनी नाटिका 'सुभद्रा' में सुभद्रा को स्त्रियोचित स्वभाव से युक्त नारी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है । कदाचित् इस सम्भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता

---

1. राजा – अस्मिन्नेव देव्याः प्रसादसमये वयमपि प्रियं विदध्मः । तत्क्रियतामस्य मध्यमस्योत्तरखण्डस्य पतिर्महाराजविलातः, पश्चिमस्य युवराजचक्रसेनः ।

सुभद्रानाटिका, पृष्ठ 83.

है कि हस्तिमल्ल ने अपनी इस नाटिका का नामकरण इसी पात्रा (सुभद्रा) को आधार मानकर किया हो ।

सुभद्रा को हम लज्जाशील पात्रा के रूप में देखते हैं, ऐसा नहीं है कि सुभद्रा अपनी मर्यादा का परित्याग कर भरत के साथ प्रेम में निमग्न हो । वह प्रेम में निमग्न है किन्तु मर्यादा से बाहर नहीं है । सुभद्रा की लज्जा और मर्यादा के विषय में उसकी सहेली मन्दारिका का यह कथन विशेष रूप से ध्यातव्य है -

पिअसहि, अलं दाणिं कण्णआजणसुलहाए लज्जाए । जइ दाव मं तुइत्तो अण्णं मुणेसि तदा खु लज्जिदव्वं । (प्रियसखि, अलमिदानीं कन्यकाजनसुलभया लज्जया । यदि तावन्मां त्वत्तोऽन्यां मन्यसे तदा खलु लज्जितव्यम् ।)[1]

सुभद्रा का अपने प्रेमी से अभिसार न होने पर उसकी रूग्ण और क्षीण काया इस बात को द्योतित करती है कि सुभद्रा विरह से व्यथित होकर येन-केन प्रकारेण अपना समय बिता रही है । सुभद्रा के क्षीण काया के सन्दर्भ में उसकी

---

1. सुभद्रानाटिका, पृष्ठ 31-32.

सहेली का यह कथन उल्लेखनीय है -

सहि, कुदो खु एत्तिअम्मि हरिसेक्ककारणे बालासोअमालईलआणं आआलि-अकुसुमुब्भेदकल्लाणे अण्णारिसं विअ दीणदीणं चेदो खामक्खामं च सरीरं लक्खिज्जइ भट्टिदारिआए। [सखि, कुतः खल्वेतावति हर्षैककारणे बालाशोकमालतीलतयोरा-कालिककुसुमोद्भेदकल्याणेऽन्यादृशमिव दीनदीनं चेतः क्षामक्षामं च शरीरं लक्ष्यते भर्तृ-दारिकायाः।][1]

'सुभद्रा' की नायिका 'सुभद्रा' अपने प्रेमी राजा भरत से मिलने के लिए बहुत ही व्यग्र है। सुभद्रा को हस्तिमल्ल ने विरहिणी के रूप में भी प्रस्तुत किया है। सुभद्रा में लज्जा और प्रसन्नता दोनों का सम्मिश्रण एक साथ भी देखने को मिलता है। सुभद्रा राजा भरत को अपने सामने देखकर लज्जा और प्रसन्नता का प्रदर्शन एक साथ करती है :-

[सलज्जं सहर्षं च मुखं नमयित्वा, आत्मगतम्] असंतोससीलहिअअ, किं दाणिं पि ण तुस्ससि। [प्रकाशम्] पिअसहि, मद पडिच्छंदं पि इमस्स असंगवट्टिणं पेक्खंती लज्जेमि एत्थ ठादुं। [असन्तोषशीलहृदय, किमिदानीमपि न तुष्यसि।

---

1. सुभद्रानाटिका, पृष्ठ 47.

{प्रकाशम्} प्रियसखि, मम प्रतिच्छन्दमप्यस्योत्संगवर्तिनं पश्यन्ती लज्जेऽत्र स्थातुम् ।।{[1]

उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'सुभद्रा' नामक नाटिका में 'सुभद्रा' नामक पात्रा को हस्तिमल्ल ने अत्यन्त मर्यादित ढङ्ग से प्रस्तुत किया है ।

---------::0::---------

--------------------------------

1. सुभद्रानाटिका, पृष्ठ 35.

## पञ्चम अध्याय

## रस, गुण, रीति

## पञ्चम अध्याय

## रस

रस की प्रधानता को स्पष्ट करते हुए भरतमुनि ने कहा है कि 'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते'[1] अर्थात् बिना रसज्ञान के किसी भी नाट्योक्त विभावादि को जानना कठिन होगा। भरतमुनि ने नाट्य के सन्दर्भ में जैसा रस का निरूपण किया तथा इस प्रसङ्ग में मानवीय संवेगों, प्रवृत्तियों तथा क्षणिक अनुभूतियों का जो मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किया, वह मानवमन के सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करने वाले आधुनिक मनोविज्ञानशास्त्र तथा उसकी सम्प्राप्त उपलब्धियों से आश्चर्यजनक समानता लिए हुए है। डॉ० ए०बी० कीथ ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'संस्कृत-नाटक' में रस के विषय में बतलाया है कि भारतीय नाट्यशास्त्र का सर्वाधिक मौलिक तथा मनोहारी प्रसङ्ग रस है।[2]

जिस प्रकार लवण रहित सुस्वादुपाक रुचिकर नहीं होता है उसी प्रकार नीरस काव्य भी रसिकों के लिए सन्तोषप्रद नहीं होता है।[3] आचार्य विश्वनाथ

---

1. नाट्यशास्त्र, षष्ठोऽध्यायः, श्लोक सं० 32.
2. संस्कृत नाटक, ए०बी० कीथ, पृष्ठ 336.
3. स्वादुपाकेऽप्यनास्वाद्यं भोज्यं निर्लवणं यथा।
   तथैव नीरसं काव्यं स्यान्नो रसिकतुष्टये ॥ - रसप्रदीप, पृष्ठ 26.

ने तो रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है ।[1] सुकवियों के मुख्य व्यापार रसादि ही होते हैं । उनके निबन्धन में सत्कवियों को हमेशा जागरूक रहना चाहिए क्योंकि नीरस काव्य को कवि के लिए महान् अपशब्द कहा गया है ।[2]

मनुष्य में वासनारूप से विद्यमान रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय तथा निर्वेद आदि भाव, रस प्रकरण की शास्त्रीय भाषा में स्थायिभाव माने जाते हैं । इनमें से किसी भाव को चर्वणा या आस्वाद में परिणत करने के लिए तादृश विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों का संयोजन कवि को करना पड़ता है, कारणभूत नायक, नायिकाएं या प्रतिनायक पात्र तथा उद्दीपन के लिए अनुकूल वातावरण आदि विभाव हैं । कार्यभूत भावोद्बोध का अनुभव कराने वाली वाणी या अङ्गों की सात्विकादि चेष्टाएं अनुभाव हैं । रह-रह कर मन में आने वाले मन के आवेग, निर्वेद, दैन्य, आदि भाव सहकारी होने से व्यभिचारी भाव कहलाते हैं । इन सबके संयोग के साथ ही अनिर्वचनीय रस-चर्वणा होती है ।

---

1. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् । साहित्यदर्पण, प्रथम प्रकाश, कारिका संख्या 3.

2. मुख्या व्यापारविषया: सुकवीनां रसादय: ।
तेषां निबन्धने भाव्यं तै: सदैवाप्रमादिभि: ॥
नीरसस्तु प्रबन्धो य: सोऽपशब्दो महान् कवे: ।
– ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, कारिका 19.

रस निष्पत्ति का उल्लेख भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में सर्वप्रथम किया है और यही रस सूत्र, सभी रस सिद्धान्तों का मूल है। भरतमुनि प्रणीत रससूत्र इस प्रकार है -

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।[1]

इसका तात्पर्य है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से पुष्ट रति आदि स्थायी भाव आस्वादापन्न होकर रस कहलाते हैं। भरत का यह रस सूत्र देखने में तो सीधा लगता है किन्तु यह बड़ा ही विवादग्रस्त है। अनेक विद्वानों ने इसकी व्याख्या की है। इन व्याख्याकारों में भट्टलोल्लट, शङ्कुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। भट्टलोल्लट के उत्पत्तिवाद', शङ्कुक के अनुमितिवाद[2] तथा भट्टनायक के भुक्तिवाद[3] पर विचार करने के बाद अभिनवगुप्त ने अभिव्यक्तिवाद[4] का प्रतिपादन किया है। इन समस्त आचार्यों के विवेचन का केन्द्रबिन्दु सामाजिक की रसानुभूति रही है। इसी कसौटी

---

1. काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृष्ठ 102.
2. वही, पृष्ठ 102-103.
3. वही, पृष्ठ 106-107.
4. वही, पृष्ठ 108-109.

पर आचार्यों ने एक दूसरे के मत की परीक्षा की है और इन मतों के विन्यास के पौर्वापर्य का निर्धारण भी उसी कसौटी पर किया है । भट्टलोल्लट के मत में सामाजिक की रसानुभूति की कोई चर्चा नहीं है । अनुमेयतावादी आचार्य शङ्कुक के सिद्धान्त में सामाजिक के साथ रस का सम्बन्ध तो दिखाया गया है किन्तु अनुमिति होने से वह साक्षात्कारात्मक नहीं है । भट्टनायक के मत में रसानुभूति को सामाजिक के साक्षात्कारात्मक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है किन्तु इस सिद्धान्त में 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' रूप दो व्यापारों की कल्पना की गयी है, वह प्रामाणिक नहीं है । अभिनवगुप्त ने रस को अलौकिक बताया है । अभिनवगुप्त काव्य से व्यञ्जना व्यापार द्वारा गुण, अलङ्कार आदि के औचित्य रूप इति कर्त्तव्यता से रस को सिद्ध करते हैं । यहाँ साधक काव्य है, साध्य रस । साधन व्यञ्जना-व्यापार है और इति कर्त्तव्यता रूप में गुणालङ्कारादि औचित्य का अन्वय होता है । इस प्रकार भावकत्व और भोजकत्व दोनों को व्यञ्जना रूप मानकर उस व्यञ्जना से सामाजिक में रस की अभिव्यक्ति मानते हैं । अतः अभिनवगुप्त का यह मत अभिव्यक्तिवाद है । जिस प्रकार भट्टलोल्लट ने उत्तरमीमांसा के, श्री शङ्कुक ने न्याय के और भट्टनायक ने साङ्ख्य के आधार पर अपने मतों की स्थापना की है, उसी प्रकार अभिनवगुप्त ने अपने पूर्ववर्ती अलङ्कार-शास्त्र के प्रमुख ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन के आधार पर अपने अभिव्यक्तिवाद

का प्रतिपादन किया है ।

भरतमुनि प्रणीत रस सूत्र के आधार पर धनञ्जय ने दशरूपकम्[1] में, आचार्य विश्वनाथ[2] ने साहित्यदर्पण[2] में तथा मम्मट ने काव्यप्रकाश[3] में रस निष्पत्ति तथा उसके कारण, कार्य एवं सहकारी भावादि का वर्णन किया गया है । विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव एवं स्थायिभावों का विवेचन अग्रलिखित विधि से प्रस्तुत किया जा रहा है ।[4]

स्थायिभाव

मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार स्थायिभाव है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री की प्राप्ति कर अभिव्यक्त होता है और हृदय में एक अपूर्व आनन्द का संचार कर देता है । इस स्थायिभाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक या रस्यमान होने से रस-शब्द से बोध्य होती है ।

---

1. दशरूपकम् 4/1.   2. साहित्यदर्पण 3/1.   3. काव्यप्रकाश 4/27-28.

4. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।
   रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥
   विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
   व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसःस्मृतः ॥
   - काव्यप्रकाश 4/27-28.

इसीलिए मम्मट ने लिखा - व्यक्त: स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ।[1]
व्यवहार दशा में मनुष्य को जिस-जिस दशा की अनुभूति होती है उसी कोध्यान में
रखकर प्रायः आठ प्रकार के स्थायिभाव साहित्यशास्त्र में स्वीकार किये गये हैं ।
काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा
तथा विस्मय आदि आठ स्थायिभावों को स्वीकार किया है -

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाःप्रकीर्तिताः ।[2]

इसके अतिरिक्त निर्वेद को भी नौवाँ स्थायिभाव स्वीकार किया है -

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः ।[3]

ये नौ स्थायिभाव मनुष्य के हृदय में स्थायि रूप से सदा विद्यमान रहते
हैं इसलिए 'स्थायिभाव' कहलाते हैं । सामान्य रूप से वे अव्यक्तावस्था में रहते हैं,
किन्तु जब जिस स्थायिभाव के अनुकूल विभावादि सामग्री प्राप्त हो जाती है तब वह

---

1. काव्यप्रकाश, 4/28.
2. वही, 4/45.
3. वही, 4/47.

अभिव्यक्त हो जाता है और रस्यमान या आस्वाद्यमान होकर रस रूपता को प्राप्त हो जाता है । विक्रान्तकौरवम् के द्वितीय अङ्क के अन्तर्गत विप्रलम्भ पक्ष में सुलोचना से अभिसार की इच्छा में 'रति' स्थायिभाव दर्शनीय है । जयकुमार कहता है कि उस सघन बरौनी वाले नेत्रों से युक्त सुलोचना का अधर-बिम्ब कौतुक-रस के प्रसङ्ग से विकसित नेत्रों के द्वारा पहले पिया गया है, देखा गया है, अब उसे अन्य प्रकार से पान करने की यह दूसरी इच्छा चुम्बन करने की अभिलाषा धैर्य का भारी विघात करती हुई क्यों शान्त नहीं हो रही है ?[1] यहाँ उद्दीपन रूप सुलोचना की बरौनी, अधर-बिम्ब, नेत्र आदि जयकुमार के मन में चुम्बन करने की अभिलाषा 'रति' स्थायिभाव को उद्बुद्ध कर रहा है ।

विभाव

रसानुभूति के कारणों को विभाव कहा जाता है । ये दो प्रकार के होते हैं - 1. आलम्बन विभाव, 2. उद्दीपन विभाव । जिसको आलम्बन करके

---

1. निपीतो नेत्राभ्यामधररुचकः कौतुकरस-
   प्रसंगस्मेराभ्यां प्रथममभवद् पक्ष्मलदृशः ।
   कथं पातुं वांछा पुनरपरथैवेयमपरा
   परं धैर्यध्वंसं समुपदधती नोपरमति ॥
   - विक्रान्तकौरवम् , द्वितीयोऽङ्कः, श्लोक संख्या 14.

रस की उत्पत्ति होती है उसको आलम्बन विभाव माना जाता है । यथा - नायिका को देखकर नायक के मन में और नायक को देखकर नायिका के मन में रति की उत्पत्ति होती है और उन दोनों को देखकर सामाजिक के भीतर रस की अभि-व्यक्ति होती है । इसलिए नायक, नायिका आदि श्रृङ्गार रस के आलम्बन विभाव हुए । चाँदनी, उद्यान, एकान्तस्थान आदि के द्वारा वह रति, उद्दीप्त होती है । इसलिए उनको श्रृङ्गार रस का 'उद्दीपन विभाव' माना जाता है । आलङ्कारिकों ने इस द्विविध उद्बोधक सामग्री को 'विभाव' कहा है ।[1]

सुभद्रा नाटिका के तृतीय अङ्क का 28वाँ श्लोक विभाव के उदाहरण के सन्दर्भ में विशेष रूप से द्रष्टव्य है । इस स्थान पर नायक भरत नायिका सुभद्रा को देखता है और भरत के मन में सुभद्रा विषयक ध्यान से 'रति' उत्पन्न होती है ।[2]

---

1. साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका, 29-31.

2. आमूलोन्नमितस्तनैः प्रविकसन्नेत्रैश्चिरं पूरितै -
 रुच्छ्वासैः प्रचुराभिलाषपिशुनैः कच्छात्मजाया मुहुः ।
 अर्धस्त्रंसितपक्ष्मभिर्गुरुतरैर्मन्दोच्छ्वसन्नीविभि-
 र्निःश्वासैश्च दृढाभितापसुलभैः पीतोऽस्मि धूतोऽस्मि च ॥
 - सुभद्रानाटिका, तृतीयोऽङ्कः, श्लोक संख्या 28.

श्लोक के श्रवण एवं अध्ययन से सामाजिक के मन में रस की उत्पत्ति होती है । प्रस्तुत स्थल पर कच्छात्मजा आलम्बन विभाव है तथा उन्नमित स्तन उद्दीपन विभाव है ।

अनुभाव

मन के भीतर स्थायी रूप से विद्यमान रत्यादि वासनाओं या स्थायिभावों का आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों से उद्बोधन होता है । अतः जब इस सामग्री से स्थायिभाव उद्बुद्ध हो जाते हैं तो उनका प्रभाव बाहर दिखायी पड़ने लगता है । मनोगत उद्बुद्ध वासना के अनुसार ही मनुष्य की चेष्टा, आकार भङ्गी, आदि में भेद हो जाता है । इसी को आलङ्कारिक लोग अनुभाव कहते हैं। विभाव तो स्थायिभाव के उद्बोध के कारण हैं, और अनुभाव उनके कार्य हैं । इसलिए उनको 'अनु पश्चात् भवन्तीति अनुभावाः' अनुभाव कहते हैं । ये अनुभाव प्रत्येक स्थायिभाव के अनुसार अलग-अलग होते हैं । हस्तिमल्ल प्रणीत 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक के तृतीय अङ्क का पाँचवाँ श्लोक द्रष्टव्य है । यहाँ पर करुण क्रन्दन आदि अनुभाव हैं ।[1]

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 5.

व्यभिचारिभाव

स्थायिभाव के ठीक विपरीत व्यभिचारिभाव कहलाता है । उसको सञ्चारी भाव भी कहते हैं । स्थायिभावों का स्थायित्व ही उसकी विशेषता है तथा व्यभिचारिभावों का अस्थायित्व ही उसकी विशेषता है । व्यभिचारिभाव रसों में नाना रूप से विचरण करते हैं तथा रसों को पुष्टकर आस्वाद के योग्य बनाते हैं । निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सोना, जागना, क्रोध, अविहत्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क नामक 33 व्यभिचारिभाव काव्यप्रकाशकार ने बताया है ।[1]

---

1. निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथासूयामदश्रमाः ।
   आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोहःस्मृतिर्धृतिः ॥
   व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा ।
   गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रा पस्मार एव च ॥
   सुप्तं प्रबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता ।
   मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥
   त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः। काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, सूत्र 46.

हस्तिमल्ल प्रणीत ग्रन्थों में व्यभिचारिभाव के सभी भेदों का निरूपण विस्तार भय से न करके केवल एक उदाहरण दिया जा रहा है । 'विक्रान्तकौरवम्' के षष्ठ अङ्क के 11वें पद्य में मद, उन्माद आदि व्यभिचारिभाव द्रष्टव्य हैं ।[1]

महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत कृतियों में यद्यपि प्रत्येक रस के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं किन्तु यदि उन सभी उदाहरणों को प्रस्तुत किया जायेगा तो विस्तार अधिक हो जायेगा । इसीलिए सभी उदाहरणों का उल्लेख न करके केवल एक-एक उदाहरण प्रत्येक रस के प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो अग्रलिखित हैं -

क. शृङगार - वह रस है जिसे रति के स्थायिभाव का अभिव्यञ्जन माना जाता है । शृङ्गार रस का स्वरूप शृङ्गार शब्द की व्युत्पत्ति 'शृङ्गं इच्छति इति शृङ्गारः' से ही स्पष्ट होती है । शृङ्ग शब्द से कामुक युगल के उत्पीड़क कामादि भावों का बोध होता है । इस प्रकार शृङ्गार का तात्पर्य है - जो इस प्रकार के कामोद्भेद से संभूत हो । इस रस के आलम्बन प्रायः उत्तम प्रकृति के प्रेमीजन ही हुआ करते हैं । अर्थात् परकीया किंवा अनुराग शून्य वेश्या-नायिका को छोड़कर अन्य प्रकार की नायिकाएं तथा दक्षिण आदि प्रकार के नायक ही इसके उपयुक्त

---

1. विक्रान्त कौरवम् , षष्ठोऽङ्कः, श्लोक संख्या 11.

'आलम्बन' विभाव हैं । इसके 'उद्दीपन' विभाव हैं - चन्द्र-चन्द्रिका, चन्दनानु-लेपन, भ्रमर-झङ्कार आदि । इसके अनुभाव प्रेम-पगे, भ्रूकुटि-भङ्ग, कटाक्ष आदि हैं । औग्रय, मरण, आलस्य, और जुगुप्सा को छोड़कर सभी व्यभिचारी भाव इसके परिपोषक हुआ करते हैं । 'रति' इसका स्थायि भाव है । इसका वर्ण श्याम है और इसके देव विष्णु भगवान् हैं ।[1] यह श्रृङ्गार रस दो प्रकार का होता है ।[2]

---

1. श्रृङ्गं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुक: ।
   उत्तमप्रकृतिप्रायो रस: श्रृङ्गार इष्यते ॥
   परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम् ।
   आलम्बनं नायिका: स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायका: ॥
   चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपनं मतम् ।
   भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभाव: प्रकीर्तित: ॥
   त्यक्त्वौग्रयमरणालस्यजुगुप्साव्यभिचारिण: ।
   स्थायिभावो रति: श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवत: ॥

   - साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका-183-186.

2. विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधो मत: ॥
   - वही, कारिका 186.

अ. विप्रलम्भ श्रृङ्गार में नायक नायिका का परस्परानुराग तो प्रगाढ़ हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नहीं होने पाता है ।[1] 'अञ्जनापवनञ्जय' में विप्रलम्भ श्रृङ्गार का उदाहरण ध्यातव्य है -

मुहुश्चन्द्रं द्वेष्टि प्रविशति मुहुः कैरववनं
मुहुस्तूष्णीमास्ते करुणकरुणं क्रन्दति मुहुः ।
मुहुः पश्यत्याशा निपतति मुहुः सैकततले
मुहुर्मुह्यत्येषा विरहविधुरा कोकवनिता ।[2]

उपर्युक्त उदाहरण में कोकवनिता आलम्बन विभाव, चन्द्रमा, नदी-तीर उद्दीपन विभाव, बार-बार बालू पर गिरना, कैरववन में प्रवेश करना आदि अनुभाव हैं । इष्टजन का वियोग होने से निर्वेद व्यभिचारी भाव है । रति स्थायीभाव है ।

ब. परस्पर प्रेम पगे नायक और नायिका के परस्पर दर्शन, परस्पर स्पर्शन आदि-आदि की अनुभूति का प्रदाता जो रस है, वह संभोग श्रृङ्गार है । यहाँ

---

1. यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ ।
- साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका - 187.

2. अञ्जनापवनञ्जय, तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 5.

पर परस्पर दर्शन और परस्पर स्पर्शन में जो आदि शब्द प्रयुक्त है, उसका अभिप्राय परस्पर अधर-पान, परस्पर-चुम्बन, परस्पर-आलिङ्गन आदि का समुच्चय है ।[1] हस्तिमल्ल प्रणीत ग्रन्थों में संभोग श्रृङ्गार के अनेक उत्कृष्ट दृष्टान्त प्राप्त होते हैं । यथा -

> अस्पष्टैरवलोकितैरविकसद्दन्तांशुभिश्च स्मितै-
> स्तैस्तैर्मन्मनभाषितैश्च मधुरैरर्धाविशिष्टाक्षरैः ।
> भूयः प्रार्थितलम्भितैश्च ललितैरालिङ्गनैर्विश्लथै-
> व्रीडां नातिजहाति नातिभजते विस्रम्भमप्यञ्जना ॥[2]

उपर्युक्त उदाहरण में अञ्जना आलम्बन विभाव है, अनुभाव मधुराक्षर - सम्भाषण, आलिङ्गनादि है, व्रीडा व्यभिचारी भाव है । रति स्थायी भाव है ।

---

1. दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ ।
   यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः ॥
   आदिशब्दादन्योन्याधरपानचुम्बनादयः ।
   - साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका 210.

2. अञ्जनापवनञ्जय, द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 5.

ख. <u>करुण</u> - वह रस है जिसे शोक रूप स्थायिभाव का पूर्णाभिव्यञ्जन कहा गया है । इसका आविर्भाव इष्टनाश और अनिष्ट प्राप्ति से सम्भव है । इसका वर्ण कपोत वर्ण है और इसके जो देवता माने गये हैं वे यम हैं । इसका स्थायिभाव शोक है । इसका जो आलम्बन है वह विनष्ट व्यक्ति है । इसके उद्दीपन वर्ग में दाहकर्म आदि हैं । दैवनिन्दन, भूमिपतन, क्रन्दन, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, निः-श्वास, स्तम्भ, प्रलपन आदि इसके अनुभाव माने गये हैं । साथ ही साथ निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिन्ता आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं ।[1]

---

1. इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत् ।
   धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः ॥

   शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम् ।
   तस्य दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः ॥

   अनुभावा दैवनिन्दाभूपातक्रन्दितादयः ।
   वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वासस्तम्भप्रलपनानि च ॥

   निर्वेदमोहापस्मारव्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः ।
   विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः ॥

   - साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका संख्या 222-225.

हस्तिमल्ल की कृतियों में करुण रस का उदाहरण द्रष्टव्य है -

कष्टं भो: कष्टमियं वनस्थली दर्भसूचिकण्टकिता ।
कथमिव हन्त गता स्यादिह दयिता पादचारेण ।।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में दर्भसूचिकण्टकिता वनस्थली उद्दीपन विभाव है, प्रलपन आदि इसके अनुभाव हैं । विषाद व्यभिचारी भाव है, शोक स्थायिभाव है ।

ग. रौद्र रस- वह रस है जिसका स्थायिभाव 'क्रोध' हुआ करता है । इसका वर्ण रक्त है और इसके देवता रुद्र हैं । इसमें आलम्बन रूप से शत्रु का वर्णन किया जाया करता है और शत्रु की चेष्टाएं उद्दीपन-विभाव का काम करती हैं । इसकी विशेष उद्दीप्ति मुष्टिप्रहार, भूपातन, भयङ्कर मार-काट, शरीर-विदारण, सङ्ग्राम और संभ्रम आदि-आदि से हुआ करती है । इसके अनुभाव हैं - भ्रूभङ्ग, ओष्ठनिदर्शन, बाहुस्फोटन (ताल ठोंकना), तर्जन, स्वीकृत वीरकर्मवर्णन, शस्त्रोत्क्षेपण उग्रता, आवेग, रोमांच, स्वेद, कम्प, मद, आक्षेप, क्रूर दृष्टि आदि । इसके

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, षष्ठ अङ्क, श्लोक संख्या 11.

जो व्यभिचारी भाव हैं - उनमें मोह, अमर्ष आदि का स्थान है ।[1] रौद्र रस का उदाहरण हस्तिमल्ल की कृति में इस प्रकार द्रष्टव्य है । यथा -

तिर्यक् पश्यति पृष्ठतोऽपसरति स्तब्धे करोति श्रुती:
शिक्षां न क्षमते शिरो विधुनुते घंटास्वनायेर्ष्यते ।
संदिग्ध प्रतिहस्तिनं प्रकुपितो दानांबुगंधं निजं
क्ष्मामाहन्ति करेण याति न वशां क्रोधाद्धुर: सिंधुर: ।।[2]

उपर्युक्त उदाहरण में प्रतिहस्ती आलम्बन विभाव, इसमें तिर्यक् दर्शन, सिर हिलाना, कान खड़े करना आदि अनुभाव हैं । व्यभिचारी भाव अमर्ष है । स्थायिभाव शोक है ।

---

1. रौद्र: क्रोधस्थायिभावो रक्तो रुद्राधिदैवत: ।
आलम्बनमरिस्तस्य तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।।
मुष्टिप्रहारपातनविकृतच्छेदावदारणैश्चैव ।
संग्रामसंभ्रमाद्यैरस्योद्दीप्तिर्भवेत् प्रौढा ।।
भ्रूविभङ्गोष्ठनिर्देशबाहुस्फोटनतर्जना: ।
आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणानि च ।।
अनुभावास्तथाक्षेपक्रूरसंदर्शनादय: ।
उग्रतावेगरोमाञ्चस्वेदवेपथवो मद: ।।
मोहामर्षादियस्तत्र भावा: स्युर्व्यभिचारिण: । सा०द०, तृ०प०, का०227-31.

2. विक्रान्तकौरवम्, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 12.

घ. साहित्यशास्त्र के मान्य आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में लिखा है कि - 'वीर रस' वह है जिसे उत्साह रूप स्थायी भाव का आस्वाद कहा गया है । इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के वीर व्यक्ति होते हैं । इसका वर्ण स्वर्ण-वर्ण है और देवता महेन्द्र हैं । इसके 'आलम्बन' विभाव विजेतव्य शत्रु आदि हैं और इन विजेतव्य शत्रु आदि की चेष्टाएं इसके उद्दीपन विभाव हैं । युद्धादि की सामग्री किंवा अन्यान्य सहायक साधनों के अन्वेषण इसके 'अनुभाव' रूप हैं । धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाञ्च आदि इसके व्यभिचारीभाव हैं ।[1] हस्तिमल्ल प्रणीत ग्रन्थों में वीर रस का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता

---

1. उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः ।
   महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः ॥
   आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः ।
   विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ॥
   अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः ॥
   सञ्चारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्करोमाञ्चाः ।
   स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ॥
   - साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका 232-234.

है - यथा -

रे रे कौरव संप्रति क्षणक्षणं दत्तक्षणो निर्भय:

स्वैरं विक्रमिणां वचांसि पठितान्यावर्तयावर्तय ।

निष्पययिविनिष्पतच्छरशतच्छिन्नांश्च पश्य क्षणात्

त्वं तूणीं कवचं गुणं धनुरिषून् वाहान् ध्वजं सारथिम् ॥[1]

उपर्युक्त उदाहरण में शत्रु रूप कौरव आलम्बन विभाव, तर्कस, कवच डोरी, धनुष, घोड़ा, सारथि, पताका आदि इसके अनुभाव हैं । गर्व इसका व्यभिचारी भाव हैं । इसका स्थायी भाव उत्साह है ।

ड. भयानक रस - वह रस है जिसे भय रूप स्थायिभाव का आस्वाद कहा जाया करता है । इसका वर्ण कृष्ण है और इसके देवता 'काल' (कृतान्त) हैं । काव्य कोविदों ने स्त्री किंवा नीच प्रकृति के लोगों को इसका आश्रय माना है । इसका आलम्बन भयोत्पादक पदार्थ है और ऐसे भयोत्पादक पदार्थों की भीषण चेष्टायें इसके उद्दीपन विभाव का काम करती हैं । विवर्णता, गद्गद् भाषण, प्रलय, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, इतस्तत: अवलोकन आदि इसके अनुभाव हैं । इसके

---

1. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 96.

व्यभिचारी भावों में जुगुप्सा आवेग, संमोह, संत्रास, ग्लानि, दीनता, शङ्का, अपस्मार, संभ्रम, मरण आदि आते हैं।[1] हस्तिमल्ल के ग्रन्थ अञ्जनापवनञ्जय में भयानक रस का उदाहरण इस प्रकार है। यथा -

> गुहामुखविसर्पिभिः प्रतिरवैरसौ दुःश्रवैः ।
> स्फुटत्स्फुटितकन्दरः सपदि भूधरः क्रन्दति ।
> अमी च भयविह्वला वनमपोह्य कण्ठीरवाः
> सहैव शरभैरितः क्वचन विद्रवन्ति द्रुतम् ।।[2]

उपर्युक्त उदाहरण में दुःश्रव ज्याघोष आलम्बन विभाव, भूधरों का क्रन्दन, भयाक्रान्त मयूरों का भागना आदि अनुभाव हैं। त्रास, दैन्य, भगदड़ आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं। इसका स्थायी भाव भय है।

---

1. भयानको भयस्थायिभावो भूताधिदैवतः ।
   स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्वविशारदैः ।।
   यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम् ।
   चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः ।।
   अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम् ।
   प्रलयस्वेदरोमाञ्चकम्पदिक्प्रेक्षणादयः ।।
   जुगुप्सावेगसंमोहसंत्रासग्लानिदीनताः ।
   शङ्कापस्मारसम्भ्रान्तिमृत्य्वाद्या व्यभिचारिणः ।। सा०द०तृ०प०, कारिका संख्या 235-238.

2. अञ्जनापवनञ्जय, षष्ठोङ्कः, श्लोक संख्या 7.

च. बीभत्स-वह रस है जिसे 'जुगुप्सा' के स्थायीभाव का अभिव्यञ्जन माना जाता है । इसका वर्ण नील है । इसके देवता महाकाल हैं । इसके आलम्बन दुर्गन्धमय मांस, रक्त, मेद ‌(चर्बी) आदि हैं । इन्हीं दुर्गन्धमय मांस आदि में कीड़े पड़ने आदि को इसका उद्दीपन विभाव माना जाता है । निष्ठीवन (थूकना), आस्यवलन (मुँह फेरना), नेत्र सङ्कोचन (आँखें मींजना) आदि इसके अनुभाव हैं और मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं ।[1]

---

1. जुगुप्सास्थायिभावस्तु बीभत्सः कथ्यते रसः ।
   नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृतः ॥
   दुर्गन्धमांसरुधिरमेदांस्यालम्बनं मतम् ।
   तत्रैव कृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृतम् ॥
   निष्ठीवनास्यवलननेत्रसङ्कोचनादयः ।
   अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ॥
   मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः ।
   - साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका संख्या 239-241.

वीभत्स रस का उदाहरण विक्रान्तकौरवम् में द्रष्टव्य है । यथा -

> छिनत्ति स्वच्छंदं सरसकवलीच्छेदमधुना
>
> तुरंगान्मातंगान् प्रचुरमभितोऽपि प्रतिभटान् ।
>
> किरन् पेशीराशास्वभिहतिरटत्कीकसततीर्-
>
> नृशंसो निस्त्रिंशस्त्रिदशयुवतीत्रासरसद: ॥[1]

उपर्युक्त उदाहरण में मांस, हड्डी आदि आलम्बन विभाव हैं, हड्डियों का काटा जाना, मांस पेशियों का इतस्तत: विदीर्ण होना उद्दीपन विभाव है, बीभत्स दृश्य देखकर नेत्र सङ्कोचन आदि इसके अनुभाव, अपस्मार, मरण आदि व्यभिचारी भाव हैं । इसका स्थायिभाव जुगुप्सा है ।

छ. अद्भुत रस - वह रस है जिसे 'विस्मय' के स्थायी भाव का अभिव्यञ्जन कहा करते हैं । इसका वर्ण पीत है । इसके देवता गन्धर्व हैं । इसका आलम्बन अलौकिक वस्तु है । अलौकिक वस्तु का गुण-कीर्तन इसका उद्दीपन है । स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गद स्वर, संभ्रम, नेत्र विकास आदि इसके अनुभाव हैं । इसमें

---

1. विक्रान्तकौरवम्, चतुर्थोऽङ्क:, श्लोक संख्या 53.

वितर्क, आवेग, संभ्रम, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव परिपोषण का काम करते हैं ।[1]

हस्तिमल्ल की कृतियों में अद्भुत रस का उदाहरण ध्यातव्य है । यथा –

क्वचिज्जंबूकुञ्जप्रतिहतिपरावर्तितजव:

क्वचिद् वृत्तावर्तभ्रमवशपरिभ्रांतसलिल: ।

क्वचिद्रोध: पातद्रुतविघटमानोर्मिनिवह:

प्रवाहो जाह्नव्या: प्रथयति गभीरं कलकलम् ।[2]

उपर्युक्त उदाहरण में विस्मय स्थायिभाव है, जामुनों की झाड़ी की रुकावट से गङ्गा प्रवाह का परावर्तन आलम्बन है, गङ्गा-प्रवाह का कलकल करना इसका उद्दीपन, लहरों का उठना, लहरों का स्तम्भ इसके अनुभाव हैं, वितर्क, हर्ष आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं ।

---

1. अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवत: ॥
   पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम् ।
   गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुन: ॥
   स्तम्भ: स्वेदोऽथ रोमाञ्चगद्गदस्वरसंभ्रमा: ।
   तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावा: प्रकीर्तिता: ॥
   वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिण: । सा0द0, तृ0प0, का0242-245.

2. विक्रान्तकौरवम्, द्वितीयोऽङ्क:, श्लोक संख्या 21.

ज. शान्त रस - वह रस है जो कि 'शम' रूप स्थायिभाव का आस्वाद हुआ करता है । इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति होते हैं । इसका वर्ण कुन्द-श्वेत अथवा चन्द्र-श्वेत है । इसके देवता श्री भगवान नारायण हैं । अनित्यता किंवा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयों की निःसारता का ज्ञान अथवा साक्षात् परमात्मा स्वरूप का ज्ञान ही इसका 'आलम्बन' विभाव है । इसके उद्दीपन हैं पवित्र आश्रम, भगवान् की लीलाभूमियाँ, तीर्थ-स्थान, रम्य-कानन, साधु सन्तों के संग आदि-आदि । रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव हैं और इसके व्यभिचारिभाव हैं - निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति, जीवदया आदि ।[1] हस्तिमल्ल के ग्रन्थ में शान्त रस

---

1. शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः ॥
कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवः ।
अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिःसारता तु या ॥
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते ।
पुण्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः ॥
महापुरुषसङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ।
रोमाञ्चाद्यानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ॥
निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः । सा०द०, तृ०प०, कारिका 245-249.

का उदाहरण द्रष्टव्य है -

> आर्हन्तीमतुलामवाप्य तपसामेकं फलं भूयसां ।
> यो नैराश्यधनस्त्रयस्य जगतामभ्यर्हणायाः पदम् ।
> स्वीचक्रे स्तवनातिवर्तिविभवां सिद्धिश्रियं शाश्वती-
> माधत्तीर्थकृतां कृती स वृषभः श्रेयांसि पुष्णातु नः ॥[1]

शान्त रस का स्थायि भाव शम है । उपर्युक्त उद्धरण में निःसार जगत आदि आलम्बन है, तीर्थादि उद्दीपन हैं, अतुल तपस्या आदि अनुभाव हैं, स्तवन, सिद्धि इत्यादि भी अनुभाव हैं, धृति, मति, हर्षादि इसके व्यभिचारिभाव हैं, जिनसे सामाजिक के मन में शान्त रस की निष्पत्ति होती है ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित होता है कि महाकवि हस्तिमल्ल रसों के प्रयोग में सिद्ध हस्त थे एवं उनके द्वारा प्रयुक्त रसों में तद् सम्बन्धी स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव साहित्य शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित विधानों के अनुसार उपलब्ध होते हैं ।

---

1. सुभद्रानाटिका, प्रथमोऽङ्कः, श्लोक संख्या 1.

यदि हस्तिमल्ल के रस-विषयक वर्णन के विषय में यह कहा जाय कि उन्होंने अपने पद्यों की रचना स्वाभाविक एवं सहज रूप से किया है और रसादि उनकी रचनाओं में स्वत: आ गये हैं, तो सम्भवत: औचित्यपूर्ण ही होगा । हस्तिमल्ल ने रस को उद्देश्य करके रचना नहीं किया है, अपितु उनकी काव्य-प्रतिभावशात् रसागम होता गया है ।

## हस्तिमल्ल की कृतियों में अङ्गीरस

नाटकों में अनेक रसों का समावेश होने पर भी उनके उत्कर्ष को चाहने वाले कवि के द्वारा किसी एक रस को अङ्गी बना देना चाहिए ।[1] यद्यपि अनेक रसों का होना कोई दोष नहीं है अपितु गुण ही है, परन्तु वे काव्य में निबद्ध एक रस अर्थात् अङ्गीरस के अनुरूप हों । उस अङ्गी रस का बार-बार अनुसन्धान करना चाहिए, अन्य रस गौण हों और निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का समावेश होना

---

1. प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने ।
   एको रसोऽङ्गीकर्त्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ।।
   
   - ध्वन्यालोक 3/21.

2. उद्दीपनप्रशमने यथावसरमन्तरा ।
   रसस्यारब्धविश्रान्तेरनुसन्धानमङ्गिन: ।। - वही, 3/13.

चाहिए ।[1]

साहित्यशास्त्र के मान्य साहित्यशास्त्रियों ने जब यह निर्धारित किया कि नाटक में श्रृङ्गार और वीर रस में से एक रस अङ्गी होना चाहिए तब यह स्वाभाविक होता है हस्तिमल्ल के नाटक में अङ्गी रस का निरूपण किया जाय ।

हस्तिमल्ल की उपलब्ध कृतियों का सूक्ष्म विश्लेषण करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनकी कृतियों में श्रृङ्गार रस ही अङ्गी रस है । विक्रान्तकौरवम् के प्रारम्भ में उद्धृत पद्य में ही यह है ।[2] इसी प्रकार सुभद्रानाटिका में सुभद्रा और भरत के मन में परस्पर प्रेमाकुंरण, मिलन और पाणिग्रहण होने से यह प्रमाणित होता है कि सुभद्रा नाटिका में भी श्रृङ्गार रस ही अङ्गी है । 'अञ्जना-पवनञ्जय' में श्री श्रृङ्गार रस ही अङ्गी है एवं अन्य रसों का प्रयोग भी सामान्यतः

---

1. एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः श्रृङ्गार एव वा ॥
   अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।
   - दशरूपकम् , तृतीय प्रकाश, कारिका 33.

2. श्रृङ्गारवीरसारस्य गंभीरचरिताद्भुतम् ।
   महाकविसमाबद्धं रूपकं रूप्यतामिति ॥
   - विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 4.

दिखायी पड़ता है । 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक में नायिका अञ्जना और नायक पवनञ्जय में परस्पर प्रेम दृश्य का वर्णन, दोनों का परस्पर विरह तथा पुनर्मिलन यह प्रमाणित करता है कि 'अञ्जनापवनञ्जय नामक नाटक में श्रृङ्गार रस ही अङ्गी है ।

उपर्युक्त विवरणों के आलोक में हम महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत उपलब्ध कृत्तियों में पाते हैं कि अङ्गी रस श्रृङ्गार है तथा अन्य रसों का भी समयानुसार प्रयोग है । इससे हम महाकवि हस्तिमल्ल को श्रृङ्गारिक कवियों की कोटि में रख सकते हैं ।

## गुण-विवेचन

आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म हैं, वे गुण कहलाते हैं ।[1] यथा शौर्य आदि धर्म आत्मा के ही होते हैं, शरीर के नहीं है, ठीक उसी प्रकार गुण रस के ही धर्म होते हैं, वर्णों के नहीं । गुण वस्तुतः रस के धर्म हैं, वे योग्य वर्णों से अभिव्यक्त होते हैं, केवल वर्णों के आश्रित रहने वाले नहीं हैं । आचार्य मम्मट ने तीन गुण बताए हैं । मम्मट का

---

1. ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादिय इवात्मनः ।
   उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥
   - का0प्र0, अष्टम उल्लास, सूत्र 86.

मत है कि गुण दस प्रकार के नहीं होते हैं जैसा कि वामन आदि आचार्यों का मत है । मम्मटोक्त तीन गुण अग्रलिखित हैं -

क. माधुर्य ;

ख. ओज ; एवम्

ग. प्रसाद ।[1]

संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य मनीषी आचार्य मम्मट ने माधुर्य गुण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि चित्त के द्रवीभाव का कारण और शृङ्गार में रहने वाला जो आह्लाद स्वरूपत्व है वह माधुर्य नामक गुण कहलाता है । माधुर्य गुण करुण, विप्रलम्भ तथा शान्तरस में अधिक चमत्कारयुक्त होता है ।[2] महाकवि हस्तिमल्ल के उपलब्ध कृतियों में माधुर्य गुण का बड़ा ही अनूठा दृष्टान्त है । यथा -

क. सरस्वत्या देव्या श्रुतियुगवतंसत्वमयते ।

सुधासध्रीचीना विजगति यदीया सुफणितिः ।

---

1. माधुर्योजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश ।

- काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, सूत्र 88.

2. आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम् ।

करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ।

- वही, सूत्र 89-90.

कवीन्द्राणां चेतः कुवलयसमुल्लासनविधौ ।
शरज्ज्योत्स्नालीलां कलयति मनोहारिरचना ॥[1]

ख. कवीन्द्रोऽयं वाचा विजितनवमोचाफलरसः ।
सभासारङ्गाद्या वयमपि तथा नाट्यचतुराः ।
कथाप्येषा लोकोत्तरनवचमत्कारमधुरा ।
तदेतत्सर्वं नः प्रकटतरभाग्येन घटितम् ॥[2]

ग. भद्र त्वं नवसल्लकीकिसलयान्यास्वादयन् कानने
भूयः पद्मसरोऽवगाहनसुखैरात्मानमाराधयन् ।
सार्धं प्राप्य करेणुभिश्च कलभैः स्वेच्छाविहारोत्सवान्
कामं निर्विश गन्धसिन्धुरपते यूथाधिराज्यश्रियम् ॥[3]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, प्रथमोऽङ्कः, श्लोक संख्या 5.
2. वही, श्लोक संख्या 6.
3. अञ्जनापवनञ्जय, पञ्चमोऽङ्कः, श्लोक संख्या 29.

घ. यस्यास्त्वं शुक चारुरत्नवलये वामप्रकोष्ठे स्थित:

शोभां प्राप्य मदंसभागसुहृदि प्रीतिं परां लप्स्यसे ।

वाचा मञ्जुलया ययासि तुलितो यस्या नखानां रुचिं

धत्ते चञ्चुरियं च ते कथय सा कान्ता क्व मे वर्तते ।।[1]

ङ. अनुभवितुं सूक्तिरसान् वक्तुं च सुभाषितानि सुभगानि ।

गुणदोषांश्च विवेक्तुं व्यक्तं जानाति परिषदियम् ।[2]

## ओज गुण

मम्मट का मत है कि वीर रस में रहने वाली चित्त के विस्तार की हेतुभूत दीप्ति ओज कहलाती है । चित्त के विस्तार रूप दीप्तत्व का जनक ओज गुण कहलाता है । यह ओज सामान्यत: वीर रस में रहता है परन्तु बीभत्स और रौद्र रसों में क्रमश: और चमत्कारजनकत्व हो जाता है ।[3] महाकवि की कृतियों

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, षष्ठोऽङ्क:, श्लोक संख्या 38.
2. सुभद्रानाटिका, प्रथमोऽङ्क:, श्लोक संख्या 2.
3. दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति ।।
   बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च ।
   – काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, सू० 91-92.

में ओज गुण के उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं -

क. पुष्यच्चूतलताप्रवालकलनामाद्यत्पिकोद्यत्स्वरा
वासन्तीलतिकालतांतविचरद्भृङ्गारवाडंबरा ।
फुल्लाशोकसुगंधबंधुरचरन्मंदानिलस्पंदना
यूनामुत्सुकयंति मानसममी वासंतिका वासरा: ॥[1]

ख. धारानिर्भिन्नविद्विद्कुलगलविगलद्रक्तधाराप्रवाह-
प्रच्छन्नं पश्चिमाम्भोनिधिमुपरिचिताकाण्डसंध्यानुरागम् ।
निर्व्याजं शङ्कयन्ती दिशि दिशि विबिडं प्रज्वलद्वाडवाग्निं
स्वैरं संग्रामलीलामनुभवतु मम स्थेयसी खड्गयष्टि: ।[2]

ग. पर्यन्तपर्यस्ततरङ्गभङ्गस्तनांशुकामाकुलमीननेत्राम् ।
अम्भोधिरालिङ्गति ताम्रपर्णीं संमर्दविच्छिन्नविकीर्णमुक्ताम् ।[3]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, प्रथमोऽङ्क:, श्लोक संख्या 7.
2. अञ्जनापवनञ्जय, द्वितीयोऽङ्क:, श्लोक संख्या 23.
3. सुभद्रानाटिका, प्रथमोऽङ्क:, श्लोक संख्या 7.

<u>प्रसाद गुण</u>

आचार्य मम्मट ने प्रसाद गुण के विषय में लिखा है कि सूखे इन्धन में अग्नि के समान अथवा स्वच्छ धुले हुए वस्त्र में जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो जाता है, वह सभी रसों में रहने वाला गुण प्रसाद गुण कहलाता है ।[1] हस्तिमल्ल की कृतियों से प्रसाद गुण के उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं -

क. तुलयति सुदृशामसौ शशी कुचकलशं घनचंदनार्चितम् ।
प्रियविरहविनिर्यदंजनद्रवकलुषाश्रुनिपातकर्बुरम् ।।[2]

ख. मध्येध्वान्तं प्रविशति हठाद् संप्रति प्रेक्षणीयः
प्रालेयांशोः करपरिकरः संनिकृष्टोदयस्य ।
अन्तस्तोयं मरकतशिलाश्यामलस्याम्बुराशे -
र्मन्दाकिन्या इव शशिमणिद्रावगौरः प्रवाहः ।।[3]

---

1. शुष्केन्धनाग्निवद् स्वच्छजलवत्सहसैव यः ।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः ।।

2. विक्रान्तकौरवम् , पञ्चमोऽङ्कः, श्लोक संख्या 53.

3. अञ्जनापवनञ्जय, तृतीयोऽङ्कः, श्लोक संख्या 2.

ग. अशोक: पुष्पितो भाति मालत्या स्मेरपुष्पया ।
व्यतिकीर्ण इवाम्भोद: सान्ध्यो नक्षत्रमालया ।।[1]

सरस्वती के वरदपुत्र एवं जैन परम्परा के उत्कृष्ट कवि, महाकवि हस्तिमल्ल की उपलब्ध नाट्य कृतियों का साहित्यिक अध्ययन करने के पश्चात् निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि स्वाभाविक प्रतिभा रूप शक्ति, काव्य के पर्यालोचन से प्रादुर्भूत निपुणता तथा काव्य-निर्माण का अभ्यास हस्तिमल्ल में समष्टि रूप से विद्यमान था । इसी शक्ति, निपुणता और अभ्यास को ही आचार्य मम्मट ने काव्य का हेतु भी माना है ।

महाकवि हस्तिमल्ल के काव्यों में रस, छन्द, अलङ्कार और गुण, जो साहित्य शास्त्र के मूल आधार स्तम्भ माने जाते हैं, का अद्भुत समन्वय प्राप्त होता है । हस्तिमल्ल के काव्यों के अध्ययनोपरान्त यह स्वत: सिद्ध होता है कि उनका संस्कृत साहित्य से अयुतसिद्ध सम्बन्ध था और इस सम्बन्ध के आलोक में हस्तिमल्ल को कथमपि संस्कृत से इतर नहीं स्वीकार किया जा सकता है ।

---

1. सुभद्रानाटिका, तृतीयोऽङ्क:, श्लोक संख्या 15.

2. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ।।
– काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, कारिका संख्या 3.

## हस्तिमल्ल की कृतियों में रीति

महाकवि हस्तिमल्ल जैन परम्परा के एक उत्कृष्ट कोटि के कवि के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं । महाकवि हस्तिमल्ल संस्कृत साहित्याकाश में वह लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सके, जो कि भास, कालिदास और शूद्रक आदि कवियों ने प्राप्त किया । हस्तिमल्ल की उपलब्ध कृतियों में कल्पना की उड़ान, गम्भीर भावाभिव्यक्ति, जीवन की अनुभूति, भाषागत लोच एवं परिष्कार, पद्यों की रमणीयता एवं मादकता, सुसंगठित घटनाक्रम, प्रकृति-चित्रण एवं नीर-क्षीर-विवेकी मनीषी के समान शब्दों के चयन की अद्भुत क्षमता स्पष्ट होती है ।

रीति, अङ्ग रचना की भाँति, पद रचना अथवा पदसङ्घटना है जो कि रस भावादि की अभिव्यञ्जना में सहायक हुआ करती है । रीति को साहित्य-शास्त्र के मान्य आचार्यों ने रस, भाव इत्यादि का उपकारक माना है । साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने 'रीति' और 'सङ्घटना' को एक ही वस्तु स्वीकार किया है । रीति अथवा सङ्घटना रस की अभिव्यक्ति का निमित्त होता है और इसलिए साहित्यदर्पणकार ने इसे रसभावादि की उपकर्त्री माना है ।[1]

---

1. पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत् ।
   उपकर्त्री रसादीनां - साहित्य दर्पण, नवम् परिच्छेद, कारिका संख्या 1.

आचार्य विश्वनाथ ने 'रीति' चार प्रकार की माना है[1] -

1. वैदर्भी ;    3. पाञ्चाली ; एवम्

2. गौडी ;    4. लाटी ।

वैदर्भी वह रीति है जिसे माधुर्य के अभिव्यञ्जक वर्णों से पूर्ण, असमस्त अथवा स्वल्पसमासयुक्त ललितरचना कहा गया है ।[2] गौडी वह रीति है जिसे ओजगुण के अभिव्यञ्जक वर्ण से पूर्ण समास-प्रचुर, उद्भट रचना कहा गया है ।[3] 'पाञ्चाली' वह रीति है जिसमें माधुर्य और ओज के अभिव्यञ्जक वर्णों को छोड़कर अन्य अवशिष्ट वर्णों अर्थात् प्रसाद के अभिव्यञ्जक वर्णों से ऐसी पद रचना कही गयी है जिसमें पाँच या छः पदों के समासों से बड़े समासों का प्रयोग नहीं हुआ करता।[4]

---

1. सा पुनः स्याच्चतुर्विधा - साहित्य दर्पण, नवम् परिच्छेद, कारिका संख्या 1.
2. माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका ।।
   अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते। वही, कारिका संख्या 2.
3. ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः ।
   समासबहुला गौडी - वही, कारिका संख्या 3.
4. समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता ।।
   - वही, कारिका संख्या 4.

'लाटी रीति' ऐसा हुआ करती है जिसमें कोमल पदों के समास का सौन्दर्य देखने योग्य हुआ करता है, जिसमें संयुक्त वर्णों का प्रयोग स्वल्प मात्रा में ही हुआ करता है और जिसमें प्रकृतोपयुक्त विशेषणों से रमणीय वर्ण्य वस्तु की एक अपनी ही छटा छिटका करती है ।[1]

महाकवि हस्तिमल्ल की उपलब्ध कृतियों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हस्तिमल्ल वैदर्भी रीति के सिद्ध हस्त कवि हैं । माधुर्य व्यञ्जक कोमल वर्गों के प्रयोग तथा दीर्घ समासों के अभाव में हस्तिमल्ल का ग्रन्थ अतिशय रमणीयता को प्राप्त होता है । शृङ्गार रसों की प्रधानता होने के कारण हस्तिमल्ल की रचनाओं में अन्त:करण को द्रवित करने वाली आह्लादमयी पद योजना का माधुर्य प्राचुर्य दिखायी पड़ता है । सौन्दर्य के वर्णन में हस्तिमल्ल पटु हैं ।

वैदर्भी रीति की मुख्य विशेषताएं— मधुर शब्द, ललित रचना, समासों का सर्वथा अभाव या कम समस्त पदों का परिपाक हस्तिमल्ल के ग्रन्थों में प्राप्त होता है ।

---------::0::---------

---

1. मृदुपदसमाससुभगा युक्तैर्वर्णैर्न चातिभूयिष्ठा ।
   उचितविशेषणपूरितवस्तुन्यासा भवेल्लाटी ॥
   - साहित्यदर्पण, नवम् परिच्छेद, कारिका संख्या 4.

## अध्याय - षष्ठ

## कला पक्ष

**छन्द, अलङ्कार, कथावस्तु, अर्थ-प्रकृतियाँ, कार्यावस्था, पञ्चसन्धियाँ, भाषा-शैली आदि**

## षष्ठ-अध्याय

## छन्द

भारतीय संस्कृति में वेद को निःश्रेयस का मूल माना जाता है । पूर्व मनीषियों ने वेद पुरूष के चरण के रूप में छन्द-शास्त्र को स्वीकार किया है । जिस प्रकार पैरों के बिना मनुष्य पङ्गु रहता है, उसी प्रकार छन्द के बिना वेद भी पङ्गु माना जा सकता है । लेकिन साहित्य में भी छन्दःशास्त्र का महत्त्व कम नहीं है। काव्य के रसास्वादन के लिए यह आवश्यक है कि छन्दःशास्त्र का ज्ञान सहृदय को हो ।

छन्दःशास्त्र के अनुशीलन के समय हमारी दृष्टि सर्वप्रथम इस शास्त्र के उत्कृष्ट आचार्यों के ऊपर पड़ती है, जिसमें छन्दःशास्त्र के जाज्वल्यमान हीरक एवं इस शास्त्र के आदि आचार्य पिङ्गल मुनि का नाम सर्वोपरि है । यद्यपि पिङ्गल सूत्र में छन्दःशास्त्र के प्राचीन आचार्यों के रूप में हमें आचार्य क्रौष्टुकि[2], यास्क[3],

---

1. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
   ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
   शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
   तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥
   - पाणिनीय शिक्षा, श्लोक संख्या 41-42.

2. 'स्कन्धोग्रीवी क्रौष्टुकेः पिङ्गल सूत्र 3/29; 3. उरोबृहती यास्यकस्य 3/30. पिङ्गसू0

ताण्डिन्[1], सैतव[2], माण्डव्य[3] एवम् काश्यप[4] के नाम उपलब्ध होते हैं तो भी 'यशः पुण्यैरवाप्यते' के अनुसार पिङ्गल मुनि को ही इस शास्त्र का जन्मदाता माना जाता है। सच तो यह है कि पिङ्गल मुनि छन्दःशास्त्र के पर्याय हैं। इसीलिये लोक में पिङ्गल पढ़ते हैं' का तात्पर्य 'छन्द' को पढ़ते हैं' के रूप में प्रसिद्ध हो गया है। यह वस्तुतः पिङ्गल मुनि' और 'छन्दःशास्त्र' के परस्पर समवाय सम्बन्ध को ही द्योतित करता है। इसका अभिप्राय है कि छन्दःशास्त्र को पिङ्गल मुनि से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता है। पिङ्गल का अर्थ साँप भी होता है। अतः पिङ्गल का उल्लेख विद्वानों ने नागराज[5] के नाम से भी किया है।

पिङ्गलमुनि के परवर्ती छन्दःशास्त्रकारों में 'सुवृत्ततिलक' के प्रणेता आचार्य क्षेमेन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'सुवृत्ततिलक' में आचार्य क्षेमेन्द्र ने छन्दों के लक्षण, उनके गुण-दोषों का वर्णन एवम् छन्दों के उचित प्रयोग को समुचित ढङ्ग से समझाने का प्रयास किया है। आचार्य क्षेमेन्द्र का विचार है कि काव्य में

---

1. सतोबृहती ताण्डिनः 3/36. पिङ्गल सूत्र
2. सर्वत्र सैतवस्य 5/18. पिङ्गल सूत्र
3. अन्यत्र रातमाण्डव्यभ्याम् , 7/35. पिङ्गल सूत्र
4. सिंहोन्नता काश्यपस्य 7/9. पिङ्गल सूत्र
5. 'यस्यास्तां पिङ्गलनागो विपुलामिति समाख्याति' वृ0अ0 2 श्लोक 4 'चपलेति नाम तस्याः प्रकीर्तितं नागराजेन' वृ0अ0 2, 5.

रस एवं वर्णन के अनुरूप छन्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

काव्ये रसानुसारेण वर्णानुगुणेन च ।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित्॥[1]

महाकवि हस्तिमल्ल अपनी रचनाओं में छन्दों के प्रयोग में भी लब्ध प्रतिष्ठ हैं । उनकी उपलब्ध रचनाओं में कुछ प्रसिद्ध छन्दों का दिङ्मात्र प्रयोग यहाँ प्रस्तुत है ।

<u>विक्रान्तकौरवम्</u>

महाकवि हस्तिमल्ल ने अपने ग्रन्थ 'विक्रान्त-कौरवम्', जिसमें जयकुमार और सुलोचना के स्वयंवर का वर्णन किया है, का प्रारम्भ छन्दःशास्त्र के प्रसिद्ध हरिणी[2] छन्द से प्रारम्भ किया है -

असिमषिमुखा वृत्तिर्येन क्षितौ प्रकटीकृता
भरतमहिपस्सम्राड् यस्यात्मजो भुवनोत्तरः ।
सुरपमकुटीकोटी-नीराजिताङ्घ्रिसरोरुहः
प्रथमजिनपः श्रेयो भूयो ददातु मुदा सदा ॥[3]

---

1. सुवृत्ततिलक 3/7.
2. हरिणी - ।न, स, म, र, स, ल, गु । 6,4,7 -
   रसयुगहयैन्सौं म्रौ स्लौ गौ यदा हरिणी तदा । - वृत्तरत्नाकर, तृ०अ०, श्लोक 96.
3. विक्रान्तकौरवम्, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 1.

इसी प्रकार हस्तिमल्ल के अञ्जनापवनञ्जय में 2/10, 4/2 आदि उदाहरण हरिणी छन्द में द्रष्टव्य है ।

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्त कौरवम्' में अनेक स्थलों पर शिखरिणी छन्दों का प्रयोग किया है । यदि क्रम से एक यगण और एक मगण तथा एक नगण एवं एक सगण और एक भगण तथा एक लघु एवं एक गुरू हो तो, उसे 'शिखरिणी' छन्द कहते हैं । छः और ग्यारह पर यति होती है ।[1] 'विक्रान्तकौरवम्' में हस्तिमल्ल द्वारा 'शिखरिणी' छन्द में रचे गये, कुछ पद्यों को उद्धृत किया जा रहा है -

क. अधीतैषा विद्या क्रमत इह पारं च गमिता
प्रदत्ता पात्रेषु प्रथितमनसा तत्र भवता ।
यशोमल्लीवल्लीकुसुमसुभगं चाजनि फलं
ततः सैषा याच्ञा सपदि तव दैन्याय भवति ।[2]

---

1. रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।
 - वृत्तरत्नाकर, तृतीय अङ्क, श्लोक 93.

2. विक्रान्त कौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 2.

ख. निपीतो नेत्राभ्यामधररसचकः कौतुकरस -

प्रसंगस्मेराभ्यां प्रथममभवत् पक्ष्मलदृशः ।

कथं पातुं वांछा पुनरपरथैवेयमपरा

परं धैर्यध्वंसं समवदधती नोपरमति ॥[1]

ग. गुणेष्वेवाहार्यं भवति पुरुषाणां बहुमतं

स्त्रियः स्वैरं हार्याः प्रणयचतुरैश्चाटुवचनैः ।

धनं पात्रे दत्तं न खलु वसुगुप्तिर्धनवतां

कवीनां काप्यन्या भणितिरभिजाता विजयते ॥[2]

घ. कराभ्यामुत्सृज्य स्रजमुपरि संमोहजननीं

बलादंतर्धीरं मम निभृतमाच्छिद्य च मनः ।

पुरो धैर्यलेपः स च सपदि धौतो दयितया

न विद्मस्तन्नीतं पुनरथ कियद्दूरमनया ॥[3]

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीयोऽङ्कः, श्लोक संख्या 14.

2. वही, तृतीयोऽङ्कः, श्लोक संख्या 1.

3. वही, पंचमोऽङ्कः, श्लोक संख्या 30.

ङ. वच: किंचिद्वक्त्रादभिलषति निर्गन्तुमसकृद्

स्फुरन्नंतर्भग्नस्थितितदधरोष्ठ: स्फुटयति ।

यतेते रज्यन्त्यौ न खलु न दृशौ द्रष्टुमपि न-

स्त्रपा ते रुन्धाना चलयति कुतोपि त्वसहना ॥[1]

इसी प्रकार अञ्जनापवनञ्जय में 1/2, 1/5, 2/7, 3/5, 4/5, 4/17, 5/3, 5/18 इत्यादि उदाहरणों में शिखरिणी छन्द ध्यातव्य है ।

हस्तिमल्ल महाकवि ने शिखरिणी के अतिरिक्त स्रग्धरा जैसे प्रसिद्ध छन्दों में भी रचना किया है । प्रत्येक पाद में यदि क्रम से एक मगण, रगण, भगण, नगण, और तीन यगण हों तो, उसे 'स्रग्धरा' नामक छन्द कहते हैं । सात, सात और सात पर यति होती है ।[2] हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' में 'स्रग्धरा' छन्द के कतिपय पद्य द्रष्टव्य हैं -

---

1. विक्रान्तकौरवम् , षष्ठोऽङ्क:, श्लोक संख्या 24.

2. म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि -

यतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ - वृत्तरत्नाकर, तृतीयोऽध्याय, श्लोक 14.

क. एतद्देहानुभाव्ये प्रचुरधनचये नास्ति कस्यापि तृप्तिः
कान्तावर्गेऽपि तद्वत्तरुणिमवयसा केवलेनानुभाव्ये ।
तस्मात्संजृम्भमाणे प्रसरति च विना देशकालव्यवस्थां
कीर्तिस्तोमेऽभिरामे जगति कृतमतेः कस्य वा स्याद्विरक्तिः ॥[1]

ख. निर्मुंचन् बाणवृष्टीर्निबिडनिपतनाकांडबद्धांधकाराः
स्वैरावस्कंदरुग्णप्रतिनृपतिशिरस्कंधसंबंधसंधीः ।
कल्पांतप्ठयू तधाराकवलितगगनाभोगसीम्नस्समंता -
न्नंद्यावर्तोऽद्य लीलां रजयति समरे पुष्कलावर्तकस्य ॥[2]

ग. भूयाद्भूतेषु धर्मप्रकृतिरसुमतां निष्प्रकंपानुकंपा
धर्म्यं पात्रे विसृष्टयै व्ययनियतिवशादर्जयंत्वर्थमार्याः ।
संतानस्थापनायै विदधतु गृहिणः कामखेदापनोदं
चेष्टंतां चात्मनीना निरुपधिसुचये मोक्षसौख्योदयाय ॥[3]

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथमोऽङ्कः, श्लोक संख्या 3.
2. वही, तृतीयोऽङ्कः, श्लोक संख्या 77.
3. वही, षष्ठोऽङ्कः, श्लोक 57.

हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय में 2/9, 7/16 आदि उदाहरणों में स्रग्धरा छन्द विशेषरूप से द्रष्टव्य है ।

महाकवि हस्तिमल्ल ने अनुष्टुभ् छन्द में भी 'विक्रान्तकौरवम्' में कई पद्यों की रचना की है । जिस छन्द में पञ्चम अक्षर प्रत्येक चरण में लघु हो परन्तु सप्तम अक्षर केवल दूसरे तथा चौथे चरण में लघु हो, षष्ठ अक्षर प्रत्येक चरण में गुरु हो उसे पद्य कहते हैं । पद्य को ही श्लोक या अनुष्टुभ् भी कहते हैं ।[1] 'विक्रान्तकौरवम्' के अन्तर्गत अनुष्टुभ् का प्रयोग कई बार हुआ है, किन्तु विस्तार भय के कारण कुछ ही पद्यों को उद्धृत किया जा रहा है -

क. श्रृङ्गारवीरसारस्य गंभीरचरितादभुतम् ।

महाकविसमाबद्ध रूपकं रूप्यतामिति ।[2]

---

1. पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
   षष्ठ गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम् ॥
   पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तम द्विचतुर्थयोः ।
   गुरुं षष्ठं च जानीयात् शेषेष्वनियमो मतः ॥ छन्दो मञ्जरी 4/7.

2. विक्रान्तकौरवम् , प्रथमोऽङ्कः, श्लोक संख्या 4.

ख. नाहं सुलोचनार्थ्यस्मि क्षात्रो धर्मस्तु पाल्यते ।
तातस्यापि न विद्वेषो निग्रहे कूटकारिणाम् ॥[1]

ग. तैस्तैश्च समुदाचारैः सुसत्कारपुरस्सरैः ।
न परं मोचितौ बंधात् पौरवो दुर्ग्रहादपि ॥[2]

इसी प्रकार 'अञ्जनापवनञ्जय' में 1/10, 6/3, 6/12, 7/11, 7/13, तथा 'सुभद्रा नाटिका' में 2/8, 3/15, 4/14 इत्यादि पद्य अनुष्टुभ् छन्द में द्रष्टव्य हैं ।

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में विविध छन्दों का प्रयोग करते हुए अपने इस नाटक को सुललित बनाया है । छन्दों के इसी क्रम में हस्तिमल्ल 'वसन्ततिलका' जैसे छन्दों का प्रयोग करने में सिद्धहस्त दिखायी पड़ते हैं । प्रत्येक चरण में क्रम से एक तगण और एक भगण तथा दो जगण एवं दो गुरू हो तो, उसे वसन्ततिलका छन्द कहते हैं ।[3] 'वसन्ततिलका' छन्द का कुछ उदाहरण जो

---

1. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 23.
2. वही, षष्ठ अङ्क, श्लोक संख्या 1.
3. उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः । वृत्तरत्नाकर, तृ०अ०, श्लोक संख्या 79.

कि 'विक्रान्तकौरवम्' में उल्लिखित हैं, इस प्रकार है -

क. श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्ट -

प्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात् ।

नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण

श्लोकैः शतैस्सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥[1]

ख. उन्मार्जितेपि बहुले हरिचंदनेऽस्मिन्

प्रव्यक्तमेव निबिडस्तनि दृश्यमानः ।

लाक्षारसेन रचितः कुचकुंभपीठे

धन्यस्य कस्य वदने च विशेषकोऽयम् ॥[2]

ग. रूप्यद्रवो भवति नायमितः प्रसर्प-

न्नूष्मायते स पतितः कियतो मुहूर्तान् ।

इन्दुर्विलीनतनुरात्मन एव तापा-

ज्ज्योत्स्नीभवत्यपरथा कुत ईदृशोऽयम् ॥[3]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 41.
2. वही, तृतीय अङ्कः, श्लोक संख्या 19.
3. वही, पञ्चमोऽङ्कः, श्लोक संख्या 57.

हस्तिमल्ल विरचित अञ्जनापवनञ्जय नाटक के 1/3, 3/10, 5/2, 5/8, तथा सुभद्रानाटिका के 1/5, 2/18, 4/28 इत्यादि पद्य वसन्ततिलका के उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं ।

हस्तिमल्ल ने 'मालिनी वृत्त' में जिन पद्यों की रचना की है, वे पद्य वस्तुतः संस्कृत नाट्य जगत में अपना विशेष सौन्दर्य प्रदर्शित करने में सक्षम प्रतीत होते हैं । वृत्त रत्नाकर में मालिनी छन्द के विषय में लिखा गया है कि प्रत्येक पाद में यदि क्रम से दो नगण और एक मगण तथा दो यगण हो तो, वह 'मालिनी वृत्त' कहलाता है ।[1] आठ और सात पर यति होती है । हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' में प्रयुक्त मालिनी छन्द के कतिपय दृष्टान्त इस प्रकार हैं :-

क. अनतिगलितनिद्राराजाड्यदीव्यद्गलानां

प्रसरति कृतहिक्कं कूजितं कुक्कुटानाम् ।

विदधति च विहंगास्तत्क्षणोद्भूतबोधाः

कलकलमधिनीडं ग्रामचैत्यद्रुमेषु ।[2]

---

1. ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । वृत्तरत्नाकर, तृतीय अध्याय, श्लोक सं0 87.

2. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 1.

ख. प्रगुणरणविमर्दप्रेक्षणप्रीतिबद्धं

प्रविघट यितुमंहस्तांप्रतं संप्रयाम: ।

समवसरणभूमि पूतकैलासमौलिं

प्रणिहितगणनाथोपस्थितां भूतभर्तुः ॥[1]

ग. सरसबकुलमालाकेसराश्लिष्टदष्टै:

कुचकलशविलेपैर्घ्राणमुन्मादयंति ।

मदनमदवदान्या मारुता: कामिनीनां

विगलदलकचूर्णोदीर्णरोमांचरम्या: ।[2]

इसी प्रकार 'अञ्जनापवनञ्जय' के 1/4, 2/2, 3/4, 4/3 इत्यादि उदाहरण मालिनी छन्द में ध्यातव्य हैं ।

हस्तिमल्ल ने उपेन्द्रवज्रा छन्द में अत्यन्त मनोहरी और आकर्षक पद्य प्रस्तुत किये हैं । उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में से दो तगण तथा दो गुरू होते हैं । पाद में

---

1. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 106.

2. वही, षष्ठ अङ्क, श्लोक संख्या 11.

यति होती है ।[1] उपेन्द्रवज्रा छन्द में निर्मित कतिपय दृष्टान्त अधोलिखित हैं -

क. असौ शिरीषः कुसुमानि धत्ते

सुलोचनाबाहुलतामृदूनि ।

प्रियाकपोलच्छुरणीयै-

र्विभाति लोध्रः सुमनः परागैः ।[2]

ख. न हारयष्टौ न तुषारवृष्टौ न चन्द्रकान्ते न च चन्द्ररश्मौ ।

ध्रुवं मया जातुचिदन्वभावि प्रियांगसंस्पर्शसुखस्य लेशः ।[3]

इसी प्रकार सुभद्रानाटिका का 4/34वाँ पद्य उपेन्द्रवज्रा छन्द में दर्शनीय है ।

महाकवि हस्तिमल्ल के ग्रन्थों में पृथ्वी छन्द में निर्मित पद्य भी दृष्टिगोचर होते हैं । वृत्तरत्नाकरकार ने बताया है कि प्रत्येक पाद में यदि क्रम से एक जगण और एक सगण तथा एक जगण एवं एक सगण और एक यगण तथा एक लघु और एक

---

1. उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । - वृत्तरत्नाकर, तृतीय अध्यायः, श्लोक संख्या 29
2. विक्रान्तकौरवम्, द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 18.
3. वही, पञ्चम अङ्क, श्लोक संख्या 25.

गुरू हो तो उसे पृथ्वी छन्द समझना चाहिए । आठ और नव पर यति होती है ।[1]
पृथ्वी छन्द में निर्मित कतिपय पद्य दृष्टान्त के रूप अधोलिखित ढंग से प्रस्तुत किए जा सकते हैं -

क. विसृत्य लहरीजलं नभसि दूरमुत्थोत्थिता
विवर्तितनिशातशुभ्रकरवालधारोज्ज्वला: ।
झषाश्चटुलचंक्रमास्सपदि मीनकेतोरपि
स्फुरंत इव केतव: किमपि कौतुकं तन्वते ।[2]

ख. कथं पनस केवलं सुमधुराणि पुष्पैर्विना
फलानि फलता त्वया फलविपाकमूकस्सम: ।
चर चटुलचंचरीकचरणाहतोच्चावच-
प्रकीर्णसुमनोरज: पटलपाटल: पाटल: ।[3]

---

1. जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु: ।
- वृत्तरत्नाकर, तृतीय अध्याय, श्लोक संख्या 94.

2. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अड्क, श्लोक संख्या 22.

3. वही, पञ्चम अड्क, श्लोक संख्या 71.

इसी प्रकार अञ्जनापवनञ्जय के 5/7, 5/8, इत्यादि पद्य पृथ्वी छन्द में ध्यातव्य हैं ।

महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में अनेक पद्यों की रचना 'शार्दूलविक्रीडित छन्द' में किया है । प्रत्येक चरण में यदि क्रम से एक मगण, सगण, जगण, सगण और दो तगण एवं एक गुरू हो तो, उसे 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द कहा जाता है । बारह और सात पर यति होती है ।[1] 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द में हस्तिमल्ल ने अनेक आकर्षक एवं मनोहारी पद्यों की रचना की है, जिसमें से कतिपय पद्य दृष्टान्त के तौर पर इस प्रकार हैं -

क. प्रासादोदरवासगेहतलिमेष्वद्यातपोद्वेजिन -
श्चर्चिचंदनकर्दमार्द्रतनुभिः सार्धं प्रियाभिः प्रियाः ।
क्षौमांतव्यजनैः करव्यतिकराः संवीज्यमानैर्मिथः
कुर्वतः सुरतश्रमव्यपनयं तंद्रालवः शेरते ।[2]

---

1. सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।
 - वृत्तरत्नाकर, तृतीय अध्याय, श्लोक संख्या 101.

2. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 36.

ख. निर्दोषा भणितिर्निसर्गमधुरा निर्मत्सरा शेमुषी
निष्पापा नृपता जगद्बहुमता नीतिश्च निर्वञ्चिता ।
निर्दोषा चरितस्थितिर्गुणवती वेश्या च निर्मातृका
यत्सत्यं बहुनापि भाग्यवसुना लभ्येत वा नैव वा ॥[1]

ग. भूयांसः क्षितिपात्मजा वरयितुं वाञ्छन्ति वत्सामिमां
सर्वस्याभिमतः स्वयंवरविधिस्तद्वादिमत्रोचितः ।
इत्यस्मत्प्रभुणा प्रवर्तितमभूत्कर्म निर्मत्सरं
जातं प्रत्युत वैरकारणमिदं तेषां मुधा द्वेषिणाम् ॥[2]

इसी प्रकार अञ्जनापवनञ्जय नाटक के 1/1, 2/5, 2/6, 3/1, 3/7, 4/18, 5/1, 3/4, 7/2 एवं सुभद्रा नाटिका के 1/1, 3/29, 4/17 इत्यादि उदाहरण 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द में द्रष्टव्य हैं ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 16.

2. वही, चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 1.

एक चरण इन्द्रवज्रा दूसरा उपेन्द्रवज्रा किंवा एक उपेन्द्रवज्रा दूसरा इन्द्रवज्रा वाला यदि छन्द हो तो, उसे उपजाति छन्द कहा जाता है ।[1] महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' में उपजाति छन्द में अनेक पद्यों की रचना किया है जिसमें से कतिपय उपजाति छन्द से युक्त पद्य अधोलिखित रूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

क. ताम्बूलवीटीरूपयुक्तशिष्टाः कर्पूरपारीस्तकरंडदत्ताः ।
माल्यानि धम्मिल्लकृताधिवासान्यमुत्र लप्स्ये मुहुरंगनाभ्यः ।[2]

ख. आहूय शाठ्यात् सकलान्नरेन्द्रानकंपनः कौरवपक्षपाती ।
गुणित्वमारोपयितुं जयस्य तस्यायमारोपयतिस्म मालाम् ।[3]

ग. शोचस्यवाढं चिरजीवितस्य चिरात्तदेतत्फलमद्य लब्धम् ।
बद्धोऽर्ककीर्तिस्समरे द्विषेति श्रुतं च दृष्टं च मया यदद्य ।[4]

---

1. अनन्तोरदीरितलक्ष्मभाजौ ॥
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥ वृत्तरत्नाकर, तृ०अ०, श्लोक संख्या 30.

2. विक्रान्तकौरवम् , तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 8.

3. वही, चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 4.

4. वही, पञ्चम अङ्क, श्लोक संख्या 5.

हस्तिमल्ल प्रणीत 'अञ्जनापवनञ्जय' के 1/7, 5/12, 7/12, तथा सुभद्रा नाटिका के 1/7, 1/29, 2/1, 3/9, 4/1 आदि पद्य उपजाति छन्द के सन्दर्भ में ध्यातव्य है ।

आर्या छन्द केविषय में वृत्तरत्नाकर, में बताया गया है कि आर्या छन्द के पूर्वार्द्ध में गुरु के सहित सात गण होते हैं तथा विषम-स्थान तृतीय, पञ्चम प्रभृति स्थान में जगण नहीं होता है । छठें स्थान में जगण अथवा नगण और एक लघु का होना विकल्प से जानना चाहिए ।[1] इसके चतुर्मात्रिक गण होते हैं । महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक से कतिपय पद्य, जो आर्या छन्द में बद्ध हैं, उद्धृत किये जा रहे हैं -

क. चलकिसलयाग्रहस्तोत्क्षिप्तां नवमालिका कुसुममालाम् ।
आमुच्याधिस्कन्धं स्वयं वृणीते तमालवरम् ।[2]

---

1. लक्ष्मैतत्सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे जः ।
षष्ठोऽयं नलघू वा प्रथमेऽर्धे नियतमार्यायाः ॥
- वृत्तरत्नाकर, द्वितीय अध्याय, श्लोक संख्या 1.

2. अञ्जनापवनञ्जय, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 6.

ख. निरवद्यं चारित्रं ज्ञात्वाऽपि निजाभिजात्यपरवत्यः ।

बिभ्यति खलु कुलवनिताःपरिवादलवादपि प्रायः ॥[1]

इसी प्रकार सुभद्रानाटिका के प्रथम अङ्क का द्वितीय पद्य आर्या छन्द में दर्शनीय है ।

वृत्तरत्नाकर-कार ने लिखा है कि प्रत्येक पाद में यदि क्रम से एक जगण और एक तगण तथा, फिर एक जगण एवं एक रगण हो तो, उसे 'वंशस्थ' वृत्त कहा जाता है ।[2] पाद में यति होती है । यथा -

शुभग्रहाधिष्ठितकेन्द्रशोभितं तृतीयषष्ठायगतेतरग्रहम् ।

वदंति जामित्रविशुद्धिमत्तनुंमुहूर्तमहनाय मुहूर्तकोविदाः ॥[3]

हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय नाटक के 5/16, 6/13, तथा सुभद्रा नाटिका के 2/11, 3/17 इत्यादि पद्य वंशस्थ छन्द में प्राप्त हैं ।

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, चतुर्थोऽङ्कः, श्लोक संख्या 1.
2. जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ । वृत्त रत्नाकर, तृतीय अध्याय, श्लोक सं0 46.
3. विक्रान्तकौरवम् , षष्ठ अङ्क, श्लोक संख्या 41.

हस्तिमल्ल विरचित विक्रान्तकौरवम् में इन्द्रवज्रा छन्द में पद्यों के रचित होने का प्रमाण मिलता है । जिस पद्य के प्रतिचरण में दो तगण, एक जगण और दो गुरू हों उसे इन्द्रवज्रा कहते हैं । इसके पादान्त में यति होती है ।[1] यथा -

खड्गेन हेलोद्भ्रमितेन पद्म कांडांकुरच्छेदननिर्विबंधम् ।
आमूलमालूनसदंतहस्तो भीमस्य हस्ती विहतो विहस्तः ।[2]

इसी प्रकार अञ्जनापवनञ्जय के पाँचवें अङ्क का ।4वाँ पद्य इन्द्रवज्रा छन्द में विशेष रूप से द्रष्टव्य है ।

हस्तिमल्ल ने अपने 'अञ्जनापवनञ्जय' नामक नाटक में 'वियोगिनी' वृत्त में भी पद्यों को बद्ध किया है । छन्दःशास्त्र का प्रमाणिक ग्रन्थ वृत्तरत्नाकर 'वियोगिनी' के विषय में कहता है कि - जिस छन्द के विषम-चरणों (प्रथम-तृतीय)

---

1. स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । - वृत्तरत्नाकर, तृतीय अध्याय, श्लोक 28

2. विक्रान्तकौरवम् . चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 56.

में क्रमशः दो सगण, एक जगण तथा एक गुरु वर्ण आये, सम-चरणों (द्वितीय-चतुर्थ) में क्रमशः सगण, भगण, रगण, एक लघु तथा एक गुरु वर्ण आये - उसे वियोगिनी छन्द कहते हैं ।[1] वियोगिनी छन्द का दृष्टान्त हस्तिमल्ल प्रणीत 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है -

क. अपि नाम कदाचिद जना विहरन्ती कलहंसगामिनी ।
जनयेन्मम नेत्रयोर्द्वयोरनयोरुत्सुकयोरिहोत्सवम् ॥[2]

ख. सुकुमारविलासविभ्रमं मदनाराधनसाधनं धनम् ।
मम मूर्तिमदेव जीवितं तदिदं संप्रति संमुखागतम् ॥[3]

ग. उदिते विनिकीर्य चन्द्रिकां शिशिरांशौ मदनैकसारथौ ।
विरहं विषहेत कामिनी ननु का नाम निकामदुःसहम् ॥[4]

---

1. विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी - वृत्तरत्नाकर ।
2. अञ्जनापवनञ्जय, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 8.
3. वही, श्लोक संख्या 9.
4. वही, तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 6.

प्रत्येक चरण में यदि क्रम से एक मगण, भगण, नगण और दो तगण तथा दो गुरू हों तो, उसे 'मन्दाक्रान्ता' वृत्त माना चाहिए । चार, छः और सात पर यति होती है ।[1] महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'अञ्जनापवनञ्जय' नामक नाटक में 'मन्द्राक्रान्ता' छन्द का भी उल्लेख प्राप्त होता है । यथा -

क. नेत्रे तस्या वदनकमलप्रेक्षणौत्सुक्यशीले
हस्तौ भूयः स्तनतटयुगक्रीडनैकान्तलोलौ ।
स्कन्धाभोगौ हठभुजलतारोपणाराधनीयौ
नालं चेतःक्षणमपि विना वर्तितुं पङ्कजाक्ष्याः ॥ [2]

ख. मध्येध्वान्तं प्रविशति हठात् संप्रति प्रेक्षणीयः
प्रालेयांशोः करपरिकरः संनिकृष्टोदयस्य ।
अन्तस्तोयं मरकतशिलाश्यामलस्याम्बुराशे -
र्मन्दाकिन्या इव शशिमणिद्रावगौरः प्रवाहः ॥ [3]

---

1. मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौनतौ ताद् गुरू चेत् ।
   - वृत्तरत्नाकर, तृतीय अध्याय, श्लोक संख्या 97.
2. अञ्जनापवनञ्जय, द्वितीय अङ्क, श्लोकसंख्या 8.
3. वही, तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 2.

उपर्युक्त उदाहरणों को देखने से ही सिद्ध है कि महाकवि हस्तिमल्ल छन्दों के प्रयोग में निष्णात हैं । उनके जो भी नाटक उपलब्ध हो सके हैं उनका सूक्ष्म अनुशीलन करने के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उनके ग्रन्थों में शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, और उपेन्द्रवज्रा जैसे प्रसिद्ध छन्दों का प्रभूत प्रयोग हुआ है ।

इसमें भी हस्तिमल्ल का प्रिय छन्द 'शार्दूलविक्रीडित' है, जिसमें लगभग 139 पद्यों की रचना हुई है । इसके बाद बारम्बारता क्रम में आते हैं - उपजाति (111 पद्य), आर्या (100 पद्य), वसन्ततिलका (84 पद्य), शिखरिणी (84 पद्य) अनुष्टुभ् (83 पद्य), मालिनी (64 पद्य), वंशस्थ (48 पद्य), स्रग्धरा (31 पद्य), हरिणी (25 पद्य), इन्द्रवज्रा (22 पद्य), मन्दाक्रान्ता (18 पद्य), उपेन्द्रवज्रा (16 पद्य), रथोद्धता (13 पद्य), औपच्छन्दसिका (11 पद्य), वियोगिनी (10 पद्य), पृथ्वी (9 पद्य), द्रुतविलम्बित (6 पद्य), पुष्पिताग्रा (6 पद्य), अपरवक्त्र (5 पद्य), स्वागता (5 पद्य), शालिनी (4 पद्य), मञ्जुभाषिणी (3 पद्य), इत्यादि ।

## अलङ्कार-विवेचन

ऋग्वेद विश्व का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है । ऋग्वेद की ऋचाओं में अलङ्कारों का उल्लेख प्राप्त होता है । यद्यपि शास्त्रीय रूप में अलङ्कारों का विवेचन वैदिक वाङ्मय में शायद ही कहीं उपलब्ध होता हो, तथापि उपमा, अतिशयोक्ति तथा रूपक जैसे मनोहारी अलङ्कारों का प्रयोग ऋग्वेद में प्राप्त होता है । ऋग्वेद के उषस् सूक्त में उपमा अलङ्कार का दृष्टान्त ध्यातव्य है -

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची, गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा, उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः॥[1]

'उपमा' शब्द का प्रयोग भी ऋग्वेद में प्राप्त है ।[2] परवर्ती आचार्य

---

1. उषस् सूक्त, 1/124/7.

2. त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं ------- जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥ 1, 31, 15.

सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ॥ 5, 34, 9.

यास्क[1], महर्षि पाणिनि[2], तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि[3] ने भी अलङ्कार सम्बन्धी चर्चा किया - जिससे अलङ्कारों की प्राचीनता स्पष्ट होती है ।

'अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कार: ' अर्थात् जिसके द्वारा अलङ्कार किया जाय वही अलङ्कार है । 'अलङ्करणम् अलङ्कार: ' अथवा 'अलङ्कृति: अलङ्कार: ' अर्थात् अलङ्करण ही अलङ्कार है ।

---

1. उपमा यत् अतत् तत्सदृशमिति गार्ग्य: । तदासां कर्म ज्यायसा वा गुणेन प्रख्यात-तमेन वा कनीयांसं वा प्रख्यातं वोपमीयते, अथापि कनीयसा ज्यायांसम् ॥
   - निरुक्त, 2-13.

2. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् ।अष्टाध्यायी 2,3, 72।
   उपमानानि सामान्यवचनै: ।2, 1, 55।,
   उपमितं व्याघ्रादिभि: सामान्यप्रयोगे ।2, 1, 56।.

3. मानं हि नाम अनिर्ज्ञातार्थमुपादीयते अनिर्ज्ञातमर्थं ज्ञास्यामिति ।
   तत्समीपे यत् नात्यान्ताय मिमीते तद् उपमानं गौरिव गवय इति ।
   - महाभाष्य, 2, 1, 55.

काव्यालङ्कार सूत्र के रचनाकार वामन ने अलङ्कार शब्द को दो अर्थों में प्रयुक्त किया है - सौन्दर्य तथा अलङ्कार । अपने ग्रन्थ के आरम्भिक दो सूत्रों में उन्होंने लिखा - 'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्'[1] एवम् सौन्दर्यमलङ्कार: ।[2] आचार्य वामन का विचार है कि काव्य, अलङ्कारों के कारण ही उपादेय होता है । अलङ्कार क्या है ? सौन्दर्य ही अलङ्कार है ।

दण्डी ने तो गुणों तथा अलङ्कारों में कोई भी भेद नहीं माना है । यहाँ तक कि उन्होंने सन्धि, सन्ध्यङ्ग, वृत्यङ्ग तथा लक्षण आदि समस्त काव्य तत्त्वों को भी अलङ्कार ही स्वीकार किया है ।[3]

काव्यालङ्कार के लेखक भामह भी अलङ्कारावादी माने जाते हैं, परन्तु उन्होंने अलङ्कार की जगह 'वक्रोक्ति' को ही काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना है।

---

1. काव्यालङ्कारसूत्र, 1. 1. 1

2. वही, 1. 1. 2

3. यच्च सन्ध्यङ्गवृत्यङ्गलक्षणाद्यागमान्तरे ।
   व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्कारतयैव न: ॥
   - काव्यादर्श 2/367.

वक्रोक्ति के बिना काव्य में चमत्कार उत्पन्न ही नहीं हो सकता है । भामह के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने वाली कुछ कारिकाएं इस प्रकार हैं -

रूपकादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्बहुधोदित: ।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम् ॥ [1]

निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम् ।
मन्यते तिशयोक्तिं तामलंकारतया यथा ॥ [2]

सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्य: कोऽलंकारो नया विना ॥ [3]

काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मट का मत है कि जो काव्य में विद्यमान अङ्गीरस को अङ्गों के द्वारा कभी-कभी उपकृत करते हैं, वे अनुप्रास और उपमा आदि अलङ्कार, हार आदि दैहिक अलङ्कारों के समान काव्य के अलङ्कार होते हैं । [4]

---

1. काव्यालङ्कार, 1. 14;  2. काव्यालङ्कार, 2. 81;
3. वही, 2. 85.
4. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादय: ॥
- काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, कारिका संख्या 67.

जैन साहित्य के जाज्वल्यमान हीरक महाकवि हस्तिमल्ल की कृतियों का साहित्यिक अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि उनमें साहित्यिक प्रतिभा अनूठी थी । हस्तिमल्ल की कृतियों के अध्ययन से उनकी अलङ्कारादि विषयक निपुणता स्पष्ट होती है । हस्तिमल्ल के ग्रन्थों में प्रयुक्त प्रमुख अलङ्कारों का वर्णन अधोलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है -

वर्णों की समानता को अनुप्रास कहते हैं । स्वरों का भेद होने पर भी केवल व्यञ्जनों की समानता ही यहाँ वर्णों की समानता से अभिप्रेत है ।[1]

महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक के प्रथम अङ्क का प्रारम्भ ही अनुप्रास अलङ्कार से हुआ है । यथा -

क. अ सिमषिमुखा वृत्तिर्येन क्षितौ प्रकटीकृता

भरतमहिपस्सम्राड् यस्यात्मजो भुवनोत्तर: ।

---

1. क. वर्णसाम्यमनुप्रास: । काव्यप्रकाश, नवम् उल्लास, सूत्र संख्या 103.

ख. अनुप्रास: शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् ।

- साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद, कारिका संख्या 3.

सुरपमकुटीकोटी-नीराजितांघ्रिसरोरुह: ।
प्रथमजिनप: श्रेयो भूयो ददातु मुदा सदा ।। [1]

ख. मदकलसारसलीला काल्हारविसरणमंजुलसमीरा ।
तामरससरसकेसर-विसराकुलसलिलकल्लोला ।। [2]

प्रस्तुत उदाहरणों में म, क, द, र, स आदि वर्णों की समानता होने के कारण अनुप्रास अलङ्कार है । इसी प्रकार हस्तिमल्ल प्रणीत सुभद्रानाटिका में 1/5, 1/7, 1/13, एवं अञ्जनापवनञ्जय नाटक में 1/11, 1/12, 1/13, इत्यादि श्लोक अनुप्रास के उदाहरण के सन्दर्भ में दर्शनीय हैं ।

उपमान और उपमेय का जिनका भेद प्रसिद्ध है, उनका अतिशय सादृश्य के कारण जो अभेद वर्णन होता है वह रूपक अलङ्कार कहलाता है ।[3] यथा -

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 1.
2. वही, द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 11.
3. क. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो: ।
   - काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र 138.

   ख. रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे ।
   - साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद, कारिका संख्या 28.

क. अधीतैषा विद्या क्रमत इह पारं च गमिता

प्रदत्ता पात्रेषु प्रथितमनसा तत्र भवता ।

यशोमल्लीवल्लीकुसुमसुभगं चाजनि फलं

ततः सैषा याच्ञा सपदि तव दैन्याय भवति ॥ [1]

इस उदाहरण में कवि ने नाटक से मालती लता के फूल के समान सुन्दर यश रूप फल उत्पन्न करने की बात कहा है । यहाँ मालती लता के फूल और सुन्दर यश दोनों का भेद प्रसिद्ध है फिर भी कवि ने अभेद प्रतिपादित किया है अतः रूपक है ।

ख. सरस्वत्या देव्या श्रुतियुगवतंसत्वमयते

सुधासध्रीचीना त्रिजगति यदीया सुफणितिः ।

कवीन्द्राणां चेतःकुवलयसमुल्लासनविधौ

शरज्ज्योत्स्नालीलां कलयति मनोहारिरचना ॥ [2]

इस उदाहरण में चित्त और नीलकमल में समानता दिखाने के कारण रूपक

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 2.

2. वही, श्लोक संख्या 5.

अलङ्कार है । चित्त अलग है, नील कमल अलग है तात्पर्य यह कि चित्त और .. नीलकमल का भेद प्रसिद्ध होने पर भी कवि ने चित्तरूपी नीलकमलों को विकसित करने की बात कहा है अत: रूपक अलङ्कार है ।

ग. लज्जाश्रृंखलया मनाग् नियमितैस्स्मेरोल्लसत्तारकै:
किंचित्कुंचितलोचनांतचलितैर्लीलोद्यतभ्रूलतै: ।
तस्या: प्रस्फुरदार्द्रकौतुकरसस्निग्धैरहं प्रेक्षितै -
रापीतश्चलित: क्षतो निगलितस्संतर्जितो निर्जित: ॥ [1]

प्रस्तुत उदाहरण में लज्जा और श्रृंखला तथा भौंह और लता में रूपक अलङ्कार है, क्योंकि लज्जा और श्रृङ्खला तथा भौंह और लता दोनों में प्रसिद्ध भेद है फिर भी इनमें समानता का प्रतिपादन किया गया है ।

घ. मनोरथशातातानां प्रोषितानां प्रमाथिनी ।
निशीथिनी जगज्जिष्णोर्मन्मथस्य वरूथिनी ॥ [2]

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 28.
2. वही, श्लोक संख्या 39.

प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने रात्रि को कामदेव की सेना बताकर रात्रि और कामदेव के भेद प्रसिद्ध होने पर भी अभेद का प्रतिपादन किया है अतः रूपक अलङ्कार है ।

ङ. लघुविघटयितारः कुड्मलान्यब्जिनीनां
झटिति घटयितारः कोककांताः स्वकांतैः ।
जहति निषधशैलाधित्यकोत्संगसंगं
क्षपिततिमिरलेखास्तिग्मभानोर्मयूखाः ॥ [1]

प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने 'अन्धकार की रेखा को नष्ट करने वाली सूर्य की किरणें निषधाचल के ऊपरी मैदानरूपी गोद के सम्बन्ध को छोड़ रही हैं', कहकर रूपक प्रस्तुत किया है । मैदान और गोद दोनों के प्रसिद्ध भेद को अभेद के रूप में प्रतिपादित करने के कारण रूपक अलङ्कार है ।

च. कथं स कामी पुरुषार्थवित्स्याद्विहाय यस्संप्रति वर्तते त्वाम् ।
अमोघमस्त्रं ननु पुष्पवृद्धि त्वं पुष्पिता पुष्पशरासनस्य ॥ [2]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 7.
2. वही, तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 21.

इस उदाहरण में नायिका के लिए कहा गया है कि कामदेव का अमोघ अस्त्र है । अस्त्र और नायिका दोनों दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं और फिर भी इनका ऐक्य प्रदर्शित करके नायिका को कामदेव का अस्त्र बताया गया है अतः रूपक है ।

इसी प्रकार हस्तिमल्ल के अञ्जनापवनञ्जय में 6/6 और सुभद्रानाटिका में 3/9, पद्य रूपक अलङ्कार के उदाहरण के रूप में विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं ।

बालक आदि की अपनी स्वाभाविक क्रिया अथवा रूप अर्थात् वर्ण एवं अवयवसंस्थान का वर्णन स्वभावोक्ति कहलाता है ।[1] महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में स्वभावोक्ति अलङ्कार के अनेक दृष्टान्त उपलब्ध हैं जिनमें से कतिपय दृष्टान्तों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है ।

क. तिर्यक् पश्यति पृष्ठतोऽपसरति स्तब्धे करोति श्रुती:

शिक्षां न क्षमते शिरो विधुनुते घंटास्वनायेर्षते ।

---

1. क. स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादे: स्वक्रियारूपवर्णनम् ।

-काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र 167.

ख. स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् - सा0द0, दशम परिच्छेद, कारिका संख्या 92.

संदेग्धि प्रतिहस्तिनं प्रकुपितो दानाम्बुगंधं निजं

क्ष्मामाहंति करेण याति न वशां क्रोधोद्धुर: सिंधुर: ।। [1]

प्रस्तुत उदाहरण में क्रुद्ध हाथी द्वारा क्रोधजन्य स्वभाव के कारण हाथी का तिरछा देखना, पीछे हटना, कान खड़े करना आदि का वर्णन है अत: स्वभावोक्ति अलङ्कार है ।

परिभ्रष्ट: स्थानात्कथमपि समंतात्प्रचलितै-

र्वलीवर्दों धावन्नयमनुसृतो वाहयितृभि: ।

मुखप्रोते पाशे विलुठति कथंचित् तदवधौ

खुरप्रान्तालग्ने सपदि निपतन् गृह्यत इह ।। [2]

प्रस्तुत उदाहरण में अपने स्थान से छूटकर बैल का दौड़ना, रस्सी का घिसटना, आदि का वर्णन छूटे हुए बैल के स्वाभाविक क्रिया का द्योतक है, अत: स्वभावोक्ति अलङ्कार है ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 12.

2. वही, श्लोक संख्या 13.

चूषंश्चूताङ्कुराग्रं क्षणमथ कलिकाः पाटयन् पाटलीना-

मास्कंदन् कुन्दकोशं झटिति विघटयन् कुड्मलं कारहाटम् ।

भिंदन् मंदारबद्धं मुकुलमविकचं चंपकानां च चुम्बन्

पुष्पादभ्येति पुष्पं मधुकरनिकरः प्राप्तहर्षप्रकर्षः ॥[1]

प्रस्तुत उदाहरण में एक फल से दूसरे फल का भ्रमण करके पुष्पों को चूसने की क्रिया भ्रमर के स्वभाव को द्योतित करती है अतः स्वभावोक्ति अलङ्कार है ।

प्रांशुप्रतीकाः प्रकृतिप्रगल्भाः प्रायेण कालागरुकालवर्णाः ।

कुंतान् वहंतो गुरुदीर्घदंडानंध्राधिराजस्य चरंति सैन्याः ॥ [2]

प्रस्तुत उदाहरण में स्वभाव से गम्भीर, श्यामवर्ण, बड़े-बड़े डण्डों और भालाओं से युक्त सैनिकों का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक 15.

2. वही, तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 24.

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है ।[1] महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' उपमा अलङ्कार से ओत-प्रोत है । 'विक्रान्तकौरवम्' से कतिपय उपमा अलङ्कार के दृष्टान्त प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो अधोलिखित हैं -

क. अथ सपदि यदृच्छाबद्धलक्ष्यां वलक्ष-

द्युतिशबलितपातां कौरवे गौरवेण ।

न्यधित दृशमपांगासंगिनीं स्निग्धमुग्धां

कुवलयदलदामश्यामलां कोमलाङ्गी ॥[2]

प्रस्तुत उदाहरण में नीलकमल दल की माला के समान सुलोचना का श्याम वर्ण बताये जाने के कारण उपमा अलङ्कार है ।

---

1. क. साधर्म्यमुपमा भेदे ।

काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र 124.

ख. साम्यं वाच्यमवैधर्म्य वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।

साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद, कारिका 14.

2. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 22.

ख. असौ शिरीषः कुसुमानि धत्ते

सुलोचनाबाहुलतामृदूनि ।

प्रियाकपोलच्छुरणार्चनीयै-

र्विभाति लोध्रः सुमनः परागैः ॥ [1]

प्रस्तुत उदाहरण में सुलोचना की भुजलता के समान कोमल फूलों का वर्णन होने के कारण उपमा अलङ्कार है ।

ग. यतस्ततस्स्रुतविशीर्णसूत्रा पुराणकथेव शिरालदेहा ।

अमुंचती मंडनमं नार्ह चलत्यचारु प्रचलाकिकेव ॥ [2]

प्रस्तुत पद्य में पुरानी कथरी के समान शरीर, मयूरी के समान भद्दी चाल का वर्णन होने से उपमा अलङ्कार है ।

घ. कथमिव जलसाराकीर्णतूलौघतुल्याः

क्षणविशरणशीलाः शाश्वतभ्रांतिलोलाः ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 18.

2. वही, तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 13.

श्वसनचलननुन्ना: शौर्यभोगावलीनां

प्रथममिह निधानं कौरवस्याम्बुवाहा: ॥[1]

यहाँ पर जलवृष्टि होने के कारण रुई के ढेर के समान बिखरने के कारण उपमा अलङ्कार अभीष्ट है ।

ङ. द्वैधीभावं भजतु सहसा संहतो राजवर्ग:

कामं वासौ पततु निखिल: शात्रवे पक्ष एव ।

किं नश्छिन्नं ननु रिपुशतोन्माथकीनाशदण्डौ

सन्नद्धौ मे समितिषु भुजावेव साहाय्यकार्ये ।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में यम दण्ड के समान दो भुजाओं का वर्णन से उपमा अलङ्कार है । यहाँ यम दण्ड और भुजाओं में सादृश्य वर्णन है ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक 13.

2. वही, श्लोक संख्या 24.

च. निबिडमभिपतंतीं बाणवृष्टिं प्रतीच्छन्

सरभसमुपपद्य क्रोधनिर्बन्धरौद्रः ।

सरथितुरगसूतं शुंडयोत्क्षिप्य तूलो-

च्चयमिव रथमेव क्षिप्तवान् वारणेंद्रः ॥[1]

इस उदाहरण में हाथी द्वारा मालिक, घोड़े तथा सारथि को रूई के ढेर के समान फेंकने के कारण उपमा अलङ्कार है ।

छ. स्वपतिस्वयंवरसमुत्थसंभ्रम-

ग्लपितत्रपाविवृतभूरिसाध्वसा ।

कथमप्यभूत् प्रियतमा न मूर्च्छिता

नवमालिकाकुसुमदामकोमला ॥[2]

प्रस्तुत उदाहरण में प्रियतमा की कोमलता को नवमालिका की कोमलता के सदृश बताने के कारण उपमा अलङ्कार है ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 60.

2. वही, पञ्चम अङ्क, श्लोक संख्या 31.

ज. रभसकृतविकासः काममुक्ताट्टहासः

सुरपथपटवासोऽनल्पकर्पूरधूलिः ।

विशदयति दिगंतानिंदुपादप्रसारः

कलुषयति तु चित्तं केवलं प्रोषितानाम् ॥[1]

प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्रमा की किरणों के प्रसार को कामदेव द्वारा छोड़े हुए अट्टहास के समान, आकाश को सुवासित करने के लिए बहुत भारी कर्पूर की धूलि के समान बताया गया है अतः उपमा अलङ्कार है ।

इसी प्रकार महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय नाटक में 2/4, 2/12, 3/2, तथा सुभद्रा नाटिका में 1/10, 1/11, 1/12, 3/6, 3/15, 4/16 वाँ पद्य उपमा अलङ्कार के उदाहरण केरूप में विशेष रूप से द्रष्टव्य है ।

लोकोत्तर सम्पत्ति का वर्णन ही उदात्त अलङ्कार होता है । वर्णनीय वस्तु में यदि महापुरुषों का चरित्र अङ्गभूत हो तब भी उदात्त अलङ्कार होता है।[2]

---

1. विक्रान्तकौरवम् , श्लोक संख्या 44, पञ्चम अङ्क ।

2. उदात्तं वस्तुनः सम्पत् महतां चोपलक्षणम् - का0प्र0, दशम उल्लास, सूत्र 175-176.

लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते ।
यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत ॥ सा0द0, द0प0, कारिका 94.

श्रृंगारस्य गरीयसी परिणतिर्विश्वस्य संमोहिनी
विद्या काप्यपरा परा च पदवी सौन्दर्यसारश्रियाम् ।
उद्दामो मदनस्य यौवनमदः कुल्या रतिस्रोतसां
केलिर्विभ्रमसंपदामविकलो लावण्यपुण्यापणः ॥ [1]

प्रस्तुत उदाहरण में वर्णित सौन्दर्य लोक में प्राप्त होना असंभव है अतः यहाँ उदात्त अलङ्कार अभिप्रेत है ।

किसी प्रकृत अर्थात् प्रस्तुत वस्तु (उपमेय) की अप्रस्तुत वस्तु (उपमान) के रूप में सम्भावना करना ही उत्प्रेक्षा है ।[2] मन्ये, शङ्के, ध्रुवं, प्रायः, नूनं आदि उत्प्रेक्षावाचक शब्द हैं ।[2] महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्त-कौरवम्' में अनेक

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 24.

2. क. सम्भावनामथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन् यत् । -(का0प्र0, दशम् उल्लास, सूत्र 136).

ख. भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना । सा0द0, दशम् परिच्छेद, कारिका 40.

ग. मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः ।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः ॥
- काव्यादर्श - दण्डी

स्थलों पर उत्प्रेक्षा दिखायी पड़ती है -

क. सत्त्वं विलुप्तमिव तप्तमिवांगमंगं

धैर्यं विशीर्णमिव दीर्ण इवांतरात्मा ।

चेतः प्रलीनमिव लीन इव प्रबोधो

मानः प्रमृष्ट इव कृष्ट इवास्मि चाहम् ॥[1]

इसमें सत्त्व वास्तव में लुप्त नहीं हुआ है, अंग संतप्त नहीं हुआ है, धैर्य गला नहीं है, अन्तरात्मा फटी नहीं. चित्त पिघला नहीं, चेतना छिपी नहीं आदि सारे उपमान कल्पित हैं अतः इसके सम्भावना बोधक होने के कारण उत्प्रेक्षा है ।

ख. सायं मज्जनशीतला मृगमदव्यालिप्तकंठाः स्त्रियः

काश्चिन्नूतनमल्लिकामुकुलकैहारं दधत्यस्स्तनैः ।

प्रत्यग्रागुरुधूपवाससुरभौ कुर्वन्ति जातिस्रजः

केशान्ते रतिलास्यसंपद इव प्रस्तावपुष्पांजलिम् ।[2]

---

1. विक्रान्तकौरवम्, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 33.
2. वही, श्लोक संख्या 38.

उक्त श्लोक में उत्प्रेक्षा है क्योंकि यहाँ पर उपमेयभूत माला की कल्पित रति के नृत्य रूपी सम्पदा भूत उपमान के रूप में इव शब्द से सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा है ।

ग. विशुष्यतः संप्रति कौमुदीजल-

प्लवस्य तिग्मांशुभयान्नभः स्थले ।

प्रणष्टशिष्टा इव बुद्बुदा इमा

विभांति तारा विशरारुरोचिषः ॥[1]

इसमें उपेमेयभूत तारों का कल्पित उपमानभूत बुद्बुदों के रूप में सम्भावना की गयी है अतः उत्प्रेक्षा है ।

इसी प्रकार महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय में 1/17, 3/20, 4/16, 5/11, 5/28 एवं सुभद्रानाटिका में 1/4, 1/6, 3/2 इत्यादि पद्य उत्प्रेक्षा के उदाहरण के रूप में विशेष रूप से द्रष्टव्य है ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 6.

पहले देखी हुई वस्तु के समान दूसरी वस्तु को देखकर अथवा सुनकर, अर्थात् पूर्वदृष्ट वस्तु के सदृश वस्तु का किसी प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर। पूर्व अनुभव के अनुसार वस्तु की स्मृति का होना स्मरण नामक अलङ्कार कहलाता है ।[1] यथा-

क. प्रागावयोरुपनतस्य समागमस्य

सङ्केतवासभवनं तदनुस्मरामि ।

यत्रैव दर्पणतले क्षणसन्निविष्टा

संक्रामितौ सममहं च सुलोचना च ।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में जयकुमार दर्पण तल का स्मरण करता है जिसमें सुलोचना के साथ वह प्रतिबिम्बित हुआ था । पूर्व अनुभव के आधार पर प्रतिबिम्ब का स्मरण होने से स्मरणालङ्कार है ।

ख. तरंगप्रेंखोलव्यतिकरपरावर्तितदलं

दृशौ सारंगाक्ष्यास्तुलयति विलोलं कुवलयम् ।

---

1. यथाऽनुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः स्मरणम् ।
 - काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र 198.

2. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 12.

स्तनौ तस्याः कार्तस्वरकलशसौभाग्यजयिनौ
स्मरक्रीडादोलौ स्मरयतितरां कोकमिथुनम् ॥[1]

प्रस्तुत उदाहरण में चकवा-चकवी के काम मोहित जोड़े को देखकर नायक को नायिका के हिलते हुए स्तनों का स्मरण होने के कारण स्मरणालङ्कार है ।

महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय नाटक में 6/19वाँ पद्य भी स्मरणालङ्कार के उदाहरण के सम्बन्ध में विशेष रूप से द्रष्टव्य है ।

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि अतिशयोक्ति वह अलङ्कार है जिसे 'अध्यवसाय' की सिद्धि की प्रतीति कहा करते हैं ।[2] महाकवि हस्तिमल्ल विरचित विक्रान्त कौरवम् नाटक में अतिशयोक्ति के भी दृष्टान्त प्राप्त होते हैं । यथा -

क. यत्रैते स्फुरतः प्रमथ्य विनयं दीर्घे भ्रुवौ सुभ्रुवो-
यत्रैते हरतः प्रसह्य तरले धैर्यग्रहं लोचने ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 23.
2. सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते । - सा0द0, दशम परिच्छेद, कारिका 46.

यत्रैषास्ति विमोहनाय जगतस्तत्र स्मर श्रूयतां

कोदण्डे च शरेषु च त्वयि च भोः स्यात्पौनरुक्त्यं परम् ॥[1]

प्रस्तुत उदाहरण में उपमेयभूत सुलोचना का अध्यवसान कामदेव में प्रस्तुत किया गया है । अतः अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

ख) धूमैः श्यामलयन् प्रलिप्य गगनं निष्ठापयन्नातपं

ज्वालासंततिभिर्नवान् विरचयन् धूम्याभिरंभोधरान् ।

उत्पातोपनतोपरागबहलव्यादेहसंदेहदः

सप्तार्चिः कवलीकरोति विलिहन् बिंबं सहस्रार्चिषः ।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में उपमेयभूत अग्नि का अध्यवसान उपमानभूत सूर्य में प्रस्तुत करने के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

इसी प्रकार महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय का 2/22 वाँ पद्य अतिशयोक्ति के उदाहरण के रूप में विशेष रूप से द्रष्टव्य है ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 28.
2. वही, चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 73.

साम्य अथवा सादृश्य के कारण अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के ज्ञान को भ्रांतिमान् कहते हैं, बशर्ते वह ज्ञान कवि की प्रतिभा से समुद्भूत हो ।[1] महाकवि हस्तिमल्ल के विक्रान्तकौरवम् में अनेक उदाहरण भ्रान्तिमान् अलङ्कार के हैं । यथा -

क. स्रस्तोत्तरीयसिचयोन्मिषतस्तनश्रीः

पश्य स्तनांशुकधिया परिभुग्नवक्त्रा ।

मूर्च्छन्नखांशुचयसंवलितां करेण

हारप्रभामसकृदाक्षिपतीह मुग्धा ।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में एक मुग्धा स्त्री हार की प्रभा को उत्तरीय वस्त्र समझकर बार-बार खींच रही है । उस स्त्री को उत्तरीय वस्त्र और हार की प्रभा में भ्रान्ति हो गयी है, इसीलिए वह भ्रान्तिवशात् हार की प्रभा को खींच रही है, अतः भ्रान्तिमान् अलङ्कार है ।

---

1. क. भ्रान्तिमानन्यसंवित् तत्तुल्यदर्शने । का०प्र०, दशम उल्लास, सूत्र 199.

ख. साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः ।
- साहित्य दर्पण, दशम परिच्छेद, कारिका संख्या 36.

2. विक्रान्तकौरवम् , षष्ठ अङ्क, श्लोक संख्या 13.

ख. विलोक्य नीलाश्मतले विलोचने विनम्रगात्रा प्रतिबिंबिते पुर: ।
विवर्तपाठीनयुगाभिशंक्या निवर्तयत्यन्यत आकुलं परम् ॥[1]

प्रस्तुत उदाहरण में नायिका अपनी दोनों आँखों को चञ्चल मछलियों का जोड़ा समझ लेती हैं । यहाँ नायिका को अपनी आँखों और मछली के आँखों में भ्रान्ति सी होने लगती है अत: भ्रान्तिमान् अलङ्कार है ।

ग. सुनिर्मलस्फाटिकभित्तिलग्नां छायां निजां वीक्ष्य सखीति बुद्ध्वा ।
मुग्धा परिष्वज्य मुदा विलक्षस्मितेन सिंचत्यधरोष्ठमेका ॥ [2]

यहाँ एक स्त्री अत्यन्त निर्मल स्फटिक की दीवाल पर पड़ती हुई अपनी छाया को देखकर 'यह सखी है' ऐसा समझकर उसे आलिङ्गन करती है । यहाँ पर उस स्त्री को सखी और छाया में भ्रान्ति होने के कारण भ्रान्तिमान् अलङ्कार है ।

इसी प्रकार महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय में 6/56वाँ पद्य भ्रान्तिमान् के उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , षष्ठ अङ्क, श्लोक संख्या 15.
2. वही, श्लोक संख्या 17.

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने दृष्टान्त के विषय में लिखा है कि - 'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्[1], अर्थात् उपमान, उपमेय, उनके विशेषण और साधारण धर्म आदि सबका बिम्ब, प्रतिबिम्बभाव होने पर दृष्टान्त अलङ्कार होता है । दृष्टान्त अलङ्कार का उदाहरण महाकवि हस्तिमल्ल के विक्रान्तकौरवम् में ध्यातव्य है - यथा -

पिता वा माता वा भवतु स वरस्तादृगथवा
कुमारी तच्छंदं निभृतमवगच्छेदिति तु यत् ।
तदप्येषा दर्त्तिर्लघयति यदस्या रमयितु -
र्गुणं वा दोषं वा स्वरुचिमनुचक्षुर्विमृशति ।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में बताया गया है कि वर, माता और पिता के समान हो अथवा कुमारी, माता पिता के तुल्य हो अथवा उनके प्रतिबिम्ब को वर और कुमारी अच्छी तरह समझ लें, यह जो कन्यादान की विधियाँ हैं उन्हें यह स्वयंवर की विधि लघु बना देती है । इसके लिए दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि इसमें वर और वधू के नेत्र अपनी रुचि के अनुसार एक दूसरे के गुण और दोष का विचार

---

1. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र 154.
2. विक्रान्तकौरवम् , तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 36.

स्वयं कर लेते हैं । इसमें सबका बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव कहने के कारण ही दृष्टान्त अलङ्कार है ।

काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मट कहते हैं कि - 'विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः' अर्थात् अभिप्राययुक्त विशेषणों के द्वारा जो किसी बात का कथन करना है वह परिकर अलङ्कार कहलाता है ।[1] हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' में परिकर अलङ्कार का उदाहरण द्रष्टव्य है । यथा -

विनमितरिपुपक्षः पक्षपाती गुणानां
विनमिरिति विनेता दुर्विनीताशयानाम् ।
भुजगपतिवितीर्णामुत्तरां राजताद्रे -
रवति सुकृतवान्यः श्रेणिमेणाङ्कसौम्यः ॥[2]

प्रस्तुत उदाहरण में सभी कथन शत्रुओं को दबाने वाला, गुणों का पक्षपाती, उद्दण्ड मनुष्यों का शिक्षक, पुण्यशाली, चन्द्रमा के समान सौम्य प्रशंसावशात् ही कहे गये हैं, यह विशेष अभिप्राय इन विशेषणों से निकलता है अतः यहाँ परिकर अलङ्कार है ।

---

1. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र 182.
2. विक्रान्तकौरवम् , तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 45.

सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न ।अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य। के द्वारा जो समर्थन किया जाता है वह अर्थान्तर-न्यास साधर्म्य और वैधर्म्य से ।दो प्रकार। का होता है ।[1] यथा -

सौराष्ट्रस्यैष सौराष्ट्र: करी लघु पलायते ।

बलवानपि संग्रामे हीन: शिक्षापराङ्मुख: ॥[2]

प्रस्तुत उदाहरण में कहा गया है कि 'बलवान् होने पर भी शिक्षा से रहित मनुष्य युद्ध में हीन रहता है, इस सामान्य सिद्धान्त का समर्थन 'सौराष्ट्र देशीय हाथी शीघ्र ही भाग रहा है इस विशेष उदाहरण के द्वारा किया गया है । अत: यह अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । इसी प्रकार सुभद्रानाटिका में 3/3 पद्य अर्थान्तरन्यास के लिए द्रष्टव्य है ।

---

1. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
   यत्तु सो ऽर्थान्तरन्यास: साधर्म्येणतरेण वा ॥
   - काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र 164.

2. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 57.

विनोक्ति वह अलङ्कार है जिसे एक वस्तु के अभाव में दूसरी वस्तु की साधुता (शोभनता) अथवा असाधुता (अशोभनता) के प्रतिपादन में देखा जाया करता है ।[1] विनोक्ति का भी उदाहरण 'विक्रान्तकौरवम्' में प्राप्त होता है । यथा-

अंगकैरमृतसेकसोदरैर्मन्मथाग्निमथितस्य ताम्यतः ।
हेलगामिनि बिना विलंबनं देहि देहि परिरंभणं प्रिये ।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में विना किसी विलम्ब के अमृत-सिञ्चन के समान आलिङ्गन करने की बात कहने से विनोक्ति अलङ्कार है ।

प्रकृत (उपमेय) में अन्य अर्थात् उपमान के चमत्कारोत्पादक संशय को सन्देह अलङ्कार कहते हैं ।[3] सन्देह अलङ्कार का भी उदाहरण विक्रान्तकौरवम् में हमें प्राप्त

---

1. विनोक्तिर्यद्विनान्येन नासाध्वन्यदसाधु वा ।
   - साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद, कारिका 55.

2. विक्रान्तकौरवम् , पञ्चम अङ्क, श्लोक संख्या 35.

3. सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः ।
   - साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद, कारिका 35.

होता है । यथा -

इयं चेद् स्रष्टा स्यादमृतनिधिरैवैन्दुवदना

कथं कामस्यत्कांति:सृजतु स इमामस्थिरकल: ।

अथैनां कामश्चेद् प्रकृतिललित: स्रष्टुमुचित:

स्वसत्तायां कोन्य:प्रथममवलंबोस्य भवतु ॥[1]

प्रस्तुत उदाहरण में नायिका की रचना अस्थिर कला वाले चन्द्रमा द्वारा करने अथवा शरीर रहित कामदेव द्वारा करने की शङ्का करने के कारण सन्देह अलङ्कार है ।

यमक का लक्षण स्पष्ट करते हूए आचार्य मम्मट ने लिखा कि - 'अर्थे सत्यर्थ-भिन्नानां वर्णानां सा पुन: श्रुति: यमकम् ।'[2] अर्थात् अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णों की उसी क्रम से पुन: आवृत्ति यमक नामक अलङ्कार कहलाता है । यथा -

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 23.

2. काव्यप्रकाश, नवम उल्लास, सूत्र 116.

कुरुनरपतिपाशान्द्रनिष्पंदबाहु-

विघटितनिजसैन्य: शोभते नार्ककीर्ति: ।

इयमपि दिवसांतमा निपर्यस्तबिंबा

क्षपितकरसहस्रा शोभते नार्ककीर्ति: ॥[1]

प्रस्तुत उदाहरण में एक बार 'शोभते नार्ककीर्ति' का सम्बन्ध प्रतिनायक अर्ककीर्ति से तथा दूसरी बार प्रयुक्त 'शोभते नार्ककीर्ति' का सम्बन्ध सूर्य से होने के कारण यमक अलङ्कार है ।

उपमान से अन्य अर्थात् उपमेय का आधिक्य वर्णन ही व्यतिरेक अलङ्कार कहलाता है ।[2] व्यतिरेकालङ्कार का उदाहरण हस्तिमल्ल के 'विक्रान्तकौरवम्' में द्रष्टव्य है । यथा -

न हारयष्टौ न तुषारवृष्टौ न चन्द्रकांते न च चन्द्ररश्मौ ।

ध्रुवं मया जातुचिदन्वभावि प्रियांगसंस्पर्शसुखस्य लेश: ।[3]

---

1. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 102.
2. उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेक: स एव स: । का0प्र0, दशम उल्लास, सूत्र 158.
3. विक्रान्तकौरवम् , पञ्चम अङ्क, श्लोक संख्या 25.

प्रस्तुत उदाहरण में उपमान हारयष्टि, बर्फ, चन्द्रकान्तामणि और चन्द्र-किरण की अपेक्षा उपमेयभूत नायिका के शरीर-स्पर्श सुख का आधिक्य वर्णित होने से व्यतिरेक अलङ्कार है ।

इस प्रकार हस्तिमल्ल की उपलब्ध नाट्यकृतियों का अलङ्कार के दृष्टिकोण से विवेचन करने से स्पष्ट होता है कि इनकी कृतियों में अनुप्रास, रूपक, स्वभावोक्ति, उपमा, उदात्त, उत्प्रेक्षा, स्मरण, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, परिकर, अर्थान्तरन्यास, यमक, व्यतिरेक, विनोक्ति, भ्रान्तिमान् एवं सन्देह इत्यादि प्रसिद्ध अलङ्कारों का प्रभूत प्रयोग हुआ है ।

## कथावस्तु

नाटक किसी व्यक्ति के साथ ही साथ समाज के जीवन का चित्र होता है । नाटक में प्रधान चरित्र के साथ-साथ दूसरे चरित्रों का भी समावेश आवश्यक होता है । कथा की प्रधान घटना का सम्बन्ध जिस पुरुष विशेष से होता है, उसे नायक कहा जाता है । नायक को त्यागी, वीर, कुलीन, समृद्ध, सुरूप, युवा, उत्साही, चतुर, लोक-प्रिय, तेजस्वी, पटु एवं सुशील पुरुष होना चाहिए ।[1]

---

1. त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
   दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥ सा०द० 3/30.

नायक को अधिकारी और उससे सम्बन्धित कथा भाग, आधिकारिक कथावस्तु कहते हैं ।[1] वृत्त का वह भाग, जिससे किसी अप्रधान व्यक्ति विशेष का सम्बन्ध होता है, उसे प्रासङ्गिक कथावस्तु कहा जाता है ।[2] साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने प्रासङ्गिक कथावस्तु के दो भेद बताये हैं - पताका और प्रकरी । अनुबन्ध के सहित प्रधान कथा के साथ गाढ़ रूप से दूर तक चलने वाले प्रासङ्गिक इतिवृत्त को पताका कहते हैं और एक प्रदेश में सीमित होकर कुछ ही दूर तक चलने वाले प्रासङ्गिक इतिवृत्त को प्रकरी कहा जाता है ।[3] प्रकरी का महत्त्व साधारण होता है और वह अपेक्षा, छोटी होती है । कथावस्तु की तालिका, अधोलिखित रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है -

---

1. अधिकार: फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभु: ।
   तन्निर्वर्त्यमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ॥
   - दशरूपकम् 1/12.

2. प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गत: ।
   - वही, 1/13.

3. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ॥ - वही ।
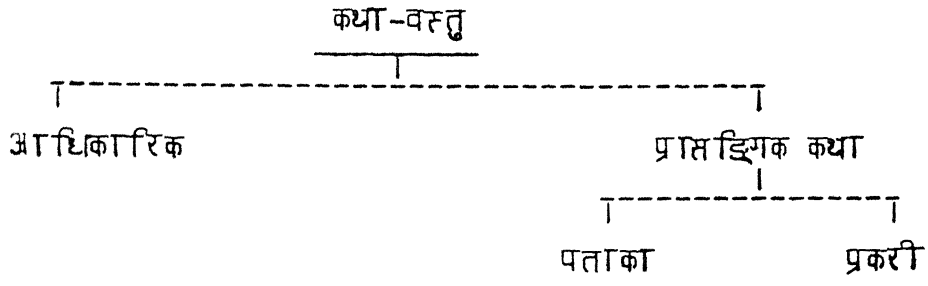
महाकवि हस्तिमल्ल की कृतियों में कथावस्तु का बड़ा ही औचित्यपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है । हस्तिमल्ल प्रणीत विक्रान्तकौरवम् नाटक में नायक जयकुमार से सम्बद्ध कथा अर्थात् जयकुमार द्वारा नायिका सुलोचना की प्राप्ति आधिकारिक कथा-वस्तु है । इस नाटक में अर्ककीर्ति और जयकुमार के बीच युद्ध का वर्णन इसकी प्रासङ्गिक कथावस्तु है । 'विक्रान्तकौरवम्' में जयकुमार और सुलोचना के परस्पर प्रेम का वर्णन पताका है, क्योंकि यह प्रेम वर्णन प्रधान कथा (जयकुमार द्वारा सुलोचना की प्राप्ति) के साथ तब तक चलता रहता है जब तक कि प्रधान कथा की समाप्ति नहीं होती है । 'विक्रान्तकौरवम्' के अन्तर्गत निरवद्य-मंत्री द्वारा अर्ककीर्ति को समझाने की कथा प्रकरी है क्योंकि यह कथा प्रधान कथा के साथ अन्त तक नहीं चलती है अपितु कुछ ही समय के लिए नाटक में उपस्थित हुई है ।

महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक में नायक पवनञ्जय द्वारा नायिका अञ्जना की प्राप्ति का वर्णन इस नाटक की 'आधिकारिक' कथावस्तु

है । इस नाटक में पवनञ्जय द्वारा अपने पिता द्वारा वरुण के ऊपर आक्रमण करने की आज्ञा प्राप्ति एवं वरुण और पवनञ्जय का युद्ध वर्णन इसकी प्रासङ्गिक कथावस्तु है । अञ्जनापवनञ्जय नाटक में पवनञ्जय द्वारा अञ्जना की खोज का वर्णन पताका है क्योंकि यह प्रधान कथा के साथ अन्त तक चलता है एवं अञ्जना की प्राप्ति होने के उपरान्त ही समाप्त होता है । इस नाटक की प्रकरी कथा के रूप में पवनञ्जय द्वारा युद्धक्षेत्र से लौटकर अञ्जना के साथ रात्रि बिताकर पुनः रणक्षेत्र को वापस जाने का उल्लेख किया जा सकता है ।

महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत सुभद्रा नाटिका की आधिकारिक कथावस्तु है भरत और सुभद्रा का प्रेम एवं भरत द्वारा सुभद्रा की प्राप्ति । प्रासङ्गिक कथावस्तु के रूप में राजा द्वारा वेदी वन में सुभद्रा का चित्र बनाकर उसे देखने में मुग्ध रहना और राजा की स्थिति देखकर रानी वैलाती के क्रुद्ध होने की घटना का उल्लेख किया जा सकता है । सुभद्रा नाटिका में पताका के रूप में नमिराज द्वारा अपनी बहन सुभद्रा का विवाह भरत के साथ करने की घोषणा और सुभद्रा को महाराजा भरत को प्रदान करने की घटना का उल्लेख किया जा सकता है । सुभद्रा नाटिका में प्रकरी कथा के रूप में सुभद्रा और उसकी सहेली द्वारा 'अशोक वृक्ष तथा मैलाती लता' के विवाहोत्सव के आयोजन का उल्लेख किया जा सकता है ।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हस्तिमल्ल प्रणीत उपलब्ध कृतियों में कथावस्तु का वर्णन साहित्यशास्त्र के मान्य विधानों के अनुसार किया गया है ।

## अर्थ-प्रकृति

फल रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनेक प्रकार की अवान्तर घटनाओं का संयोजन किया जाता है । इस संयोजन की प्रक्रिया को अर्थ प्रकृति कहते हैं । 'अर्थ' का अभिप्राय है प्रयोजन या इतिवृत्त का फल और 'प्रकृति' का अर्थ है कारण या हेतु । इतिवृत्ति की फल सिद्धि का साधन होने के कारण इसका नाम 'अर्थ-प्रकृति' सार्थक होता है । अर्थ-प्रकृतियाँ रूपक की कथा का स्रोत ही हैं ।

मुख्य वृत्त की तीन अवस्थाएँ होती हैं - बीज, बिन्दु और कार्य । जैसे किसी फल को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम उसका बीज लगाते हैं, उसी प्रकार कार्य या फल को सिद्ध करने के लिए प्रारम्भ में कथा का बीज प्रतिष्ठित किया जाता है, जो कथावस्तु का अत्यन्त संक्षिप्तिकरण कहा जा सकता है । कथा-बीज में रूपक की सारी कथा वैसे ही सम्पुटित होती है, जैसे वह - बीज में वटवृक्ष ।

शेष कथा में बीज का विस्तार होता है ।[1]

हस्तिमल्ल प्रणीत 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक का बीज प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही मारिष के इस कथन में है - अहो सुलोचनास्वयंवरयात्रामहोत्सवाय-संदर्शनाय चतुरंगबलेन सह वाराणसीं प्रस्थितेन कौरवेश्वरेण समानीतस्य तत्प्रियसुहृदो विशारदस्य भूमिकामादाय रंगत्तरंग इत एवाभिवर्तते ।[2] अर्थात् अहा, सुलोचना की स्वयंवर यात्रा का महोत्सव देखने के लिए चतुरंग सेना के साथ वाराणसी की ओर प्रस्थान करने वाले कौरवेश्वर - जयकुमार के साथ आए हुए उनके मित्र विशारद का वेष रखकर रङ्गतरङ्ग इसी ओर आ रहे हैं ।

हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय का बीज नाटक के आरम्भ में ही पारिपार्श्वक के इस कथन में दृष्टिगत होता है कि - एष हि महेन्द्रसूनुरिंदमों निजानुजाया अञ्जनाया: सर्वत: स्वयंवरमहोत्सवाय पुरपर्यन्तमेव प्रत्यसीदन्तं राजलोकं समुचितसत्कारपुरस्सरं संभावयितुं महाराज महेन्द्रेण नियुक्त: पुरप्रसाधनाय पौरवर्ग

---

1. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा । - दशरूपकम् , 1/17.

2. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, पृष्ठ 5.

प्रोत्साहयन्नित एवाभिवर्तते ।[1] इसी प्रकार सुभद्रानाटिका में भी सूत्रधार के अधो-
लिखित कथन में बीज स्पष्ट होता है -

सुकुमारभावरम्या कान्तिमसाधारणीमसौ दधती ।
आवर्जयति सुभद्रा भरतस्य समुत्सुकं चेतः ।[2]

अवान्तर कथाओं के आ जाने के कारण कथा के विच्छिन्न होने पर जो कथांश मुख्य कथा के साथ संयोजित कर देती है, उसे बिन्दु कहते हैं । बिन्दु कथात्मक प्रक्रिया है, जो कथावस्तु को आद्यन्त प्रसारित करती है । यह समाप्त होने वाली कथा को निमित्त बनाकर आगे बढ़ाती है और प्रधान कथा को अविच्छिन्न रखती है ।[3] बिन्दु के द्वारा मूल कथा की गति रुकने नहीं पाती यद्यपि उस मूल कथा के बीच-बीच में उससे केवल दूरतः सम्बद्ध छोटी-मोटी घटनाओं की ज्ञापना होती है । ऐसी ज्ञापना के समाप्त होते ही बिन्दु उससे पहले ही मूल कथा के सूत्र का अनुसन्धान करके उसको बढ़ा देता है ।

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, प्रथम अङ्क, पृष्ठ 2.
2. सुभद्रानाटिका, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 3.
3. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् । - दशरूपकम् 1/17.

हस्तिमल्ल प्रणीत अञ्जनापवनञ्जय में बिन्दु हमें तृतीय अङ्क के आरम्भ में तब देखने को मिलता है जब पवनञ्जय सेना का निरीक्षण करके आराम कर रहा है। इसी समय वह एक मादा चक्रवाक को देखता है, जिसे देखने से उसे अञ्जना की याद आती है। यहाँ पर कवि ने चक्रवाकी के माध्यम से अञ्जना की याद दिलाकर युद्ध की घटना से कथानक को मोड़कर मूलकथा (अञ्जनापवनञ्जय के प्रणय) से जोड़ दिया है। अत: यह घटना 'बिन्दु' के रूप में उल्लेखनीय है।

इसी प्रकार सुभद्रानाटिका के द्वितीय अङ्क में रानी वैलाती जब विदूषक और राजा को चित्र देखते हुए पकड़ लेती हैं, तो राजा उससे क्षमा-याचना करता है किन्तु रानी क्रोधवश राजा की क्षमा याचनाओं पर ध्यान नहीं देती हैं और चली जाती है। इसके बाद सुभद्रा जो कि झुरमुटों से यह सब देख रही थी, राजा के पास आती है और प्रणय दृश्य आरम्भ होता है। यहाँ पर राजा की क्षमा याचना और रानी के क्रोध के तुरन्त बाद सुभद्रा को प्रस्तुत करते हुए प्रणयारम्भ प्रदर्शन कवि ने बिन्दु के माध्यम से करके मूलकथा से अवान्तर कथा को जोड़ दिया है।

'कार्य' रूप अर्थ-प्रकृति का अभिप्राय उस प्रधानतया अवस्थित साध्य से है जिसके उद्देश्य से नायक के कृत्यों का आरम्भ हुआ करता है और जिसकी सिद्धि

में नायक का कृत्यानुष्ठान समाप्त माना जाया करता है ।[1] अर्थात् जिस फल या परिणाम के लिए नाटक के सभी कार्य-कलाप संयोजित होते हैं उसे कार्य करते हैं ।

महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत उपलब्ध तीनों कृतियों का सूक्ष्म विश्लेषण करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्यशास्त्र में मान्य 'कार्य' की परिभाषा का पूर्णत: परिपाक इनके ग्रन्थों में प्राप्त होता है । हस्तिमल्ल प्रणीत विक्रान्तकौरवम् , अञ्जनापवनञ्जय और सुभद्रा नामक कृतियों में नायकों के कृत्यों का आरम्भ नायिकारूपी फल प्राप्ति के उद्देश्य से होता है और जब तक फल प्राप्ति (नायिका प्राप्ति) नहीं होती है तब तक नाटक नाना प्रकार की घटनाओं से समन्वित होकर चलाता रहता है ।

कथावस्तु और अर्थ-प्रकृतियों के उपर्युक्त विवरण के आलोक में यह निष्कर्ष निकलता है कि मुख्य कथा की तीन और प्रासङ्गिक कथा की दो मिलाकर, पाँच अर्थ-प्रकृतियाँ - बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य होती हैं ।[2] जिस रूपक में

---

1. अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धन: ॥
   समापनं तु यत्सिद्धयै तत्कार्यमिति संमतम् । सा0द0, षष्ठ परिच्छेद, कारिका 69.

2. बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणा: ।
   अर्थप्रकृतय: पञ्च ता एता:परिकीर्तिता: ॥ दशरूपकम् 1/18.

प्रासङ्गिक वृत्त नहीं रहता है, वहाँ पताका और प्रकरी - दो अर्थ-प्रकृतियाँ नहीं रहती हैं ।

## अवस्था

नाटकीय प्रयोजन की प्राप्ति की दृष्टि से कथा का विकास पाँच क्रमों में माना जाता है, जिन्हें आरम्भ, यत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति और फलागम कहते हैं ।[1] इनको फल से सम्बद्ध करने पर फल के लिए आरम्भ, फल के लिए यत्न, फल प्राप्ति की आशा, फल की नियत प्राप्ति का विश्वास और फल का आगम अर्थात् हस्तगत होना - ये पाँच अवस्थाएँ वृक्ष के बीजारोपण से लेकर उससे फलप्राप्ति तक के लिए विविध अवस्थाओं से सन्तुलित होती हैं । पाँचों अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है -

प्रकृष्टफल की प्राप्ति के लिए उत्पन्न मात्र उत्सुकता ही आरम्भ है ।[2]

---

1. अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।
   आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ॥
   - दशरूपकम् 1/19.

2. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे । - वही, 1/20.

फल को प्राप्त करने के लिए नायक उत्साही होता है । 'मैं यह कार्य करूँगा' इस प्रकार का अध्यवसाय जब विद्यमान होता है तब उसे 'आरम्भ' कहते हैं । यथा - 'विक्रान्त कौरवम्' के प्रथम अङ्क में राजा सुलोचना के विषय में कहता है कि - उसी को जब मैंने पुनः कौतुक, बहुत सम्मान और अनुराग के साथ देखा तो मेरा श्रेष्ठ धैर्य काम के बाणों के समूह से खण्डित हो गया, क्षण-क्षण में भीतर ही भीतर नष्ट होते हुए धैर्य के आलम्बन से मेरा हृदय चञ्चल हो उठा और उठते हुए हजारों दुर्निवार मनोरथों से मैं दुःखी हो गया । उस समय मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि सूँघने में व्यवधान उत्पन्न करने वाले, स्तनतट पर लगे हुए चन्दन से क्या प्रयोजन है ? गाढ़ आलिङ्गन को रोकने वाले स्थूल हार से क्या मतलब है ? और नेत्रों के इच्छापूर्ण बिहार को रोकने वाले उत्तरीय वस्त्र की क्या आवश्यकता है ? अथवा जो वस्तु चाहने के योग्य-सुन्दर होती है उसके बाधक भी सुलभ होते हैं ।

प्रस्तुत स्थल को कार्य की अवस्था में से आरम्भ नामक अवस्था माना जा सकता है क्योंकि धनञ्जय ने लिखा है कि फलप्राप्ति के लिए उत्पन्न उत्सुकता ही आरम्भ है । यहाँ पर जयकुमार स्पष्ट रूप से सुलोचना की प्राप्ति के लिए उत्सुक है क्योंकि वह कहता है कि चाहने योग्य वस्तु के बाधक भी सुलभ होते हैं ।

फल के प्राप्त न होने पर उसे पाने के लिए बड़ी तेजी से कार्य प्रारम्भ कर देना ही प्रयत्न है ।[1] फल तो अनायास प्राप्त नहीं होता है । ऐसी परिस्थिति में फल को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त शीघ्रता के उपायों की योजना की जाती है जिसे प्रयत्न कहा जाता है । यथा - सुभद्रा नाटिका के द्वितीय अङ्क के आरम्भ में राजा जब प्रेम व्यथित होता है तो 'वेदीवन' में जाता है और वहाँ पर सुभद्रा से मिलने का जो यत्न करता है वही प्रयत्न है ।

जहाँ पर उपाय भी विद्यमान हो एवं विघ्न की आशङ्का भी हो तथा इन्हीं दोनों की खींचातानी में फल-प्राप्ति के निश्चय का निर्धारण न किया जा सके उसे 'प्राप्त्याशा' कहते हैं ।[2] यथा - सुभद्रा नाटिका के तृतीय अङ्क में राजा भरत, सुभद्रा का हाथ पकड़ता है और सुभद्रा रानी वैलाती से डरी हुई है कि कहीं रानी देख न लें । इस प्रकार विघ्न की आशङ्का बनी रहती है । अतः यहाँ प्राप्त्याशा नामक तीसरी अवस्था का परिपाक होता है ।

---

1. उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः । दशरूपकम् 1/20.

2. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः । वही, 1/20.

विघ्नों के अभाव में फल की प्राप्ति का पूर्णरूपेण निश्चय हो जाने की अवस्था को 'नियताप्ति' नामक अवस्था कहते हैं। विघ्नों के हट जाने के कारण फल प्राप्ति का नितान्त निश्चय ही नियताप्ति है।[1]

यथा - सुभद्रा नाटिका के चतुर्थ अङ्क में राजा नमि की यह घोषणा कि सुभद्रा का विवाह राजा भरत से होगा और इस पर रानी वैलाती की सहमति भी हो जाती है। यहाँ नायक भरत को प्राप्त होने वाले सुभद्रा रूपी फल की प्राप्ति नमि की घोषणा और रानी वैलाती की सहमति बाद निर्विघ्न हो जाती है। अतः यहाँ पर नियताप्ति का पूरा परिपाक हुआ है।

पूर्णरूपेण फल की प्राप्ति की अवस्था को ही फलयोग कहते हैं।[2] महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत उपलब्ध तीनों कृतियों में नायक को अपने फल की प्राप्ति अन्ततः हो जाती है। यथा - विक्रान्तकौरवम् में जयकुमार को सुलोचना की प्राप्ति, अञ्जनापवनञ्जय में पवनञ्जय को अञ्जना की प्राप्ति एवं सुभद्रा में भरत को

---

1. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपकम् 1/21.
2. समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः। वही, 1/22.

सुभद्रा की प्राप्ति होती है । इस प्रकार हम देखते हैं कि हस्तिमल्ल प्रणीत उपलब्ध कृतियों में कार्य की पाँचो अवस्थाओं का पूर्णतः परिपाक हुआ है ।

जब भी नायक धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति की चेष्टा करता है, उस समय उसके सभी क्रिया-कलापों में एक निश्चित क्रम रहता है । सर्वप्रथम नायक किसी फल की प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चय करता है । जब उसको फल प्राप्ति सरलता से होती हुई नहीं प्रतीत होती है तब वह द्रुतगति से कार्य में लग जाता है । मार्ग में विघ्न उपस्थित होते हैं । उनको हटाने का प्रयत्न किया जाता है तथा अन्ततः समग्र फल प्राप्ति होती है । उपर्युक्त पाँच अवस्थाओं के अनुसार नाट्य में प्राथमिक अङ्क-संख्या निश्चित हुई है । नाटक में पाँच अवस्थाओं को दिखाने के लिए एक-एक अङ्क का प्रयोग होता है । प्रत्येक अवस्था के लिए अधिक से अधिक दो अङ्कों का प्रयोग हो सकता है, अधिक नहीं । इस प्रकार नाटक की अङ्क संख्या पाँच से दस तक होनी चाहिए ।[1] जिसका पालन हस्तिमल्ल ने अपने नाटकों (विक्रान्तकौरवम् 6 अङ्क, अञ्जनापवनञ्जय 8 अङ्क) में पूरी तरह से किया है ।

---

1. पञ्चादिकादशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ।
   - सा०द०, षष्ठ परिच्छेद, कारिका संख्या 8.

## पञ्च सन्धियाँ

भारतीय नाट्य साहित्य के अन्तर्गत सन्धियों का अपना विशेष स्थान है । नाटकों में कथावस्तु, अर्थ-प्रकृति, अवस्था एवं संधि आदि का विधिपूर्वक सन्निवेश होना चाहिए । यहाँ विधिपूर्वक से तात्पर्य है, नाट्य साहित्य के मान्य साहित्यकारों द्वारा वर्णित विधियों के अनुसार नाटक की रचना करना । चूँकि शोध-प्रबन्ध का विषय नाट्य से सम्बद्ध है अतएव इन सबका भलीभाँति अध्ययन एवं शोध-विषयक नाटकों में इन सबका परिपाक प्रस्तुत करना स्वाभाविक है । इसी तारतम्य में सम्प्रति संधियों पर विचार किया जा रहा है ।

नाट्य साहित्य के अन्तर्गत विहित संधियों का निरूपण करते समय साहित्य शास्त्र के मान्य आचार्य दशरूपककार आचार्य धनञ्जय की ओर दृष्टि बरबस चली जाती है । आचार्य धनञ्जय ने सन्धि के विषय में कहा है कि -

अन्तरैकार्थसम्बन्धः संधिरेकान्वये सति ।[1] अर्थात् कथा के अंशों का एक प्रयोजन से सम्बन्ध होने पर उनका ही जब किसी एक अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्ध हो जाता है तो वही संधि कहलाती है ।

---

1. दशरूपकम् , 1/23.

दशरूपककार धनञ्जय ने ही संधि पर प्रकाश डालते हुए बताया कि - पाँच अर्थ-प्रकृतियों (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य) और कार्य की पाँच अवस्थाओं (आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम) के क्रमशः एक दूसरे से मिलने से नाटक में पाँच संधियाँ बन जाती हैं ।[1] ये पाँच संधियाँ अधोलिखित हैं -

क. मुख सन्धि,

ख. प्रतिमुख सन्धि,

ग. गर्भ सन्धि,

घ. विमर्श,

ङ. उपसंहृति या उपसंहार अथवा निर्वहण ।[2]

नाना प्रकार के प्रयोजन और रस को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति नाटक में जहाँ पर होती है वहाँ मुखसन्धि होती है ।[3] बीजों की उत्पत्ति ही

---

1. दशरूपकम् 1/22.

2. मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः । वही, 1/24.

3. वही, 1/24.

अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस की निष्पत्ति का कारण है और यही मुखसन्धि है । तात्पर्य यह कि बीज और आरम्भ को मिला देने पर ही मुखसन्धि होती है । यथा - विक्रान्तकौरवम् के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में मारिष के इस कथन जिसमें नाटक का बीज है । अहो, सुलोचना स्वयंवर यात्रामहोत्सवायसंदर्शनाय --- से लेकर द्वितीय अङ्क में नायक के औत्सुक्तभूत, सुलोचना के मिलन ।अग्रतो राजानं दृष्ट्वा ससाध्वसं सप्रेमौत्सुक्यं चात्मगतं' इस उक्ति तक मुखसंधि है ।

प्रतिमुख संधि वहीं होती है जहाँ बीज का कुछ लक्ष्य रूप में और कुछ अलक्ष्य रूप में प्रकाशन हो ।[1] प्रतिमुख संधि में बिन्दु नामक अर्थ-प्रकृति और प्रयत्न नामक कार्यावस्था का संयोग होता है । यथा - सुभद्रानाटिका के द्वितीय अङ्क में राजा भरत और सुभद्रा के परस्पर प्रेम को, जो प्रथम अङ्क में बताया जा चुका था, रानी वैलाती को विदित हो जाने से किञ्चित् लक्ष्य होकर प्रकाशित है और फिर सुभद्रा के चित्र में मग्न भरत को देखकर सुभद्रा और भरत के प्रेम-रहस्य को जान लेने से वैलाती द्वारा प्रेम-व्यापार में बाधा पहुँचने की संभावना के वृत्तान्त से किञ्चित्

---

1. दशरूपकम् , 1/30.

अलक्ष्य है । इस प्रकार कुछ लक्ष्य रूप में कुछ अलक्ष्य रूप में प्रेमरूपी बीज का प्रकाशन होने से प्रतिमुख सन्धि है ।

गर्भ सन्धि वहीं होती है जहाँ दिखायी पड़ने के बाद फिर से नष्ट (अदृश्य) हो जाने पर बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाता है । इसमें पताका हो भी सकती है और नहीं भी । किन्तु प्राप्ति की सम्भावना अवश्य होती है ।[1]

प्रतिमुख सन्धि में जो बीज किञ्चित् लक्ष्यरूप में, किञ्चित् अलक्ष्य रूप में उद्घाटित होता है, उसी बीज का विशेष रूप से उद्घाटन, विघ्नों के साथ उसका प्रकट होना और फिर नष्ट हो जाना, फिर प्राप्त होना, उसी का फिर से तिरोहित हो जाना और फिर बार-बार उसी का अन्वेषण किया जाना ही गर्भसन्धि है । अर्थात् इसमें कभी ऐसा लगता है कि विघ्नों के कारण कार्य सफल नहीं होगा। फिर विघ्न के हट जाने से कार्य की सफलता दिखायी देती है । फिर विघ्नों के आजाने से कार्यसिद्धि सन्देहास्पद हो जाती है । फिर प्राप्ति की आशा भी हो जाती है । इस प्रकार की व्यापार श्रृङ्खला के बीच गर्भसन्धि फल की प्राप्ति की अनिश्चितता से भरी होती है । यथा - हस्तिमल्ल प्रणीत 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक के पाँचवें अङ्क में जब पवनञ्जय युद्ध से वापस आता है तो उसे 'वनचर' द्वारा पता

---

1. दशरूपकम् , 1/36.

चलता है कि अञ्जना ने मातङ्गमालिनी नामक जङ्गल में प्रवेश किया था । इस पर पवनञ्जय मूर्च्छित हो जाता है तथा होश में आने पर पत्नी के लिए विलाप करता है । पवनञ्जय निराशा से उठता है और जङ्गल में जाने अञ्जना का पीछा करने का सङ्कल्प करता है । छठवें अङ्क में अञ्जना के बारे में कोई साक्ष्य न मिलने से बौखलाया हुआ तथा एकदम निराश होकर एवं लाचार होकर चन्दन के एक पेड़ के नीचे बैठ जाता है । तथा आश्चर्य करता है कि क्या कोई उसके पत्नी के बारे में बताएगा ? पवनञ्जय के मामा 'प्रतिसूर्य' द्वारा 'अञ्जना और पवनञ्जय' के मिला देने से दोनों प्रसन्न होते हैं ।

प्रस्तुत स्थल में पवनञ्जय को अञ्जना रूपी बीज का प्राप्त न होना, उसका जङ्गल में प्रवेश करना, पवनञ्जय द्वारा खोज और पवनञ्जय का निराश होना एवं उसका मिलन होने में अञ्जना रूपी बीज किञ्चित् लक्ष्य रूप में और किञ्चित् अलक्ष्य रूप में दिखायी देता है, कहीं तिरोहित होता है, फिर पवनञ्जय द्वारा अन्वेषण आदि होने से गर्भ सन्धि है ।

जहाँ क्रोध से, व्यसन से अथवा प्रलोभन से फल प्राप्ति के विषय में पर्यालोचन (अवमर्श) किया जाय एवं जहाँ गर्भ संन्धि के द्वारा प्रस्फुटित बीजार्थ का

सम्बन्ध दिखलाया जाय उसे अवमर्श सन्धि कहते हैं ।[1]

अवमर्श शब्द का तात्पर्य विचार या पर्यालोचन है, और वह पर्यालोचन क्रोध से, व्यसन से अथवा प्रलोभन के द्वारा होता है । ऐसा करने से यह होगा, इस प्रकार फल प्राप्ति के निश्चय की अवधारणा जहाँ हो, तथा गर्भसन्धि के द्वारा उद्भिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध पाया जाय वहाँ वह विमर्श, अवमर्श कहलाता है । यथा - सुभद्रा नाटिका में चतुर्थ अङ्क में नमि और रानी वैलाती की प्रसक्ति (अर्थात् प्रसन्नता या अनुकूलता) से विघ्न रहित सुभद्रा की प्राप्ति की अवधारणा रूप विमर्श दिखलाया गया है ।

बीज से सम्बन्धित मुख आदि पूर्वकथित चारों सन्धियों में स्थान-स्थान पर बिखरे हुए अर्थ जब एक प्रधान प्रयोजन की सिद्धि के लिये समेट लिये जाते हैं तब उसे निर्वहण सन्धि कहते हैं ।[2]

---

1. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।
   गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः ।। दशरूपकम् 1/43.

2. बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।
   ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।। वही, 1/48.

यथा - 'विक्रान्तकौरवम्' के अन्त में महाराज अकम्पन, जयकुमार से कहते हैं कि हे कौरव कुमुदचन्द्र ! मैं तुम्हारे लिए यह गुण रूपी रत्नों से परिपूर्ण सुलोचना अर्पण करता हूँ, आप इसे स्वीकृत करें, आप इसके स्वयंवृत्त पति हैं ।[1] यहाँ पर अकम्पन के कथन के द्वारा मुख आदि सन्धियों में सुलोचना की प्राप्ति रूप जो बीज यत्र-तत्र बिखरा हुआ था उसे एक प्रधान प्रयोजन के लिए एकत्रित कर लेने से निर्वहण सन्धि है ।

रूपक की कथा का विभाजन उपर्युक्त पाँच सन्धियों के द्वारा किया जाता है । सन्धियों के द्वारा कथा के जो पाँच भाग होते हैं, उन्हें इन्हीं सन्धियों के नाम पर अभिहित किया गया है । मुख सन्धि में बीज की उत्पत्ति, प्रतिमुख में उसका उद्घाटन, गर्भसन्धि में बीज का प्रत्यक्ष विकास और अन्वेषण, विमर्श में बीज का विशेष विकास और निर्वहण में फल-प्राप्ति-रूप में बीज की परिणति का निदर्शन होता है । उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत उपलब्ध कृतियों में कथावस्तु, अर्थ-प्रकृति, कार्य की अवस्था और सन्धियों का पूर्णतः परिपाक होता है ।

---

1. इयं मया कौरवकैरवेन्दो तुभ्यं वितीर्णा गुणरत्नपूर्णा ।
   सुलोचना स्वीक्रियतां च तस्याः स्वयं वृत्तेन प्रथमं वरेण ॥
   - विक्रान्तकौरवम्, षष्ठ अङ्क, श्लोक संख्या 47.

महाकवि हस्तिमल्ल की उपलब्ध कृतियों में साहित्यशास्त्र के मान्य आचार्यों द्वारा प्रतिपादित नाट्य-विधानों का सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है। जिनका विवरण अधोलिखित ढङ्ग से प्रस्तुत किया जा रहा है -

## नान्दी

नान्दी का तात्पर्य है नन्दित (आह्लादित) करने वाली। नाट्याभिनय के पूर्व अर्थात् पर्दा खुलने के पूर्व ही रङ्गमञ्च पर जो सङ्गीतक प्रस्तुत किया जाता है उसे नान्दी अथवा नान्दी पाठ कहते हैं। इस प्रक्रिया में वाद्यादि के साथ ही साथ देवों, द्विजों तथा भूपतियों आदि की स्तुतियाँ गायी जाती हैं।[1] जिससे दर्शक गण आह्लादित हो उठते हैं।

महाकवि हस्तिमल्ल के ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रन्थों का आरम्भ नान्दी पाठ से ही किया है यथा विक्रान्तकौरवम् के आरम्भ में नान्दी पाठ इस पद्य द्वारा प्रस्तुत किया गया है -

---

1. आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
- साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, कारिका 24.

अतिमभिमुखा वृत्तिर्येन क्षितौ प्रकटीकृता
भरतमहिपस्सम्राड् यस्यात्मजो भुवनोत्तर:।
सुरपमकुटीकोटी-नीराजितांघ्रिसरोरुह:
प्रथमजिनप: श्रेयो भूयो ददातु मुदा सदा ॥[1]

इसी प्रकार हस्तिमल्ल ने अञ्जनापवनञ्जय नाटक का भी आरम्भ नान्दी पाठ से किया । यथा -

आदौ यस्य पुरश्चराचरगुरोरारब्धसंगीतक-
श्चक्रे नाट्यरसान् क्रमादभिनयन्नाखण्डलस्ताण्डवम् ।
यस्मादाविरभूदचिन्त्यमहिमा वागीश्वराद् भारती
स श्रीमान् मुनिसुव्रतो दिशतु व: श्रेय:पुराण:कवि:।[2]

सुभद्रा नाटिका का भी आरम्भ नान्दी पाठ से ही हुआ है यथा -

आर्हन्तीमतुलामवाप्य तपसामेकं फलं भूयसां
यो नैराश्यधनस्त्रयस्य जगतामभ्यर्हणाया: पदम् ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 1.
2. अ जनापवन जय, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 1.

स्वीचक्रे स्तवनातिवर्तिविभवां सिद्धिश्रियं शाश्वती-

माद्यस्तीर्थकृतां कृती स वृषभः श्रेयांसि पुष्णातु नः ॥[1]

## सूत्रधार

सूत्रधार का अर्थ है सूत्र को धारण करने वाला । रङ्गमंच पर अभिनेय नाटक के कथासूत्र की अवतारणा करने वाला व्यक्ति ही सूत्रधार कहा जाता है । सङ्गीत सर्वस्वकार ने, कथा सूत्र का आदि प्रवर्तक होने के कारण ही व्यक्ति-विशेष को सूत्रधार कहा है ।[2] महाकवि हस्तिमल्ल प्रणीत सभी नाटकों का आरम्भ सूत्रधार द्वारा कथासूत्र की सूचना सामाजिकों को देने के पश्चात् ही होता है । यथा 'विक्रान्तकौरवम्' में सूत्रधार कहता है कि -

शृङ्गारवीरसारस्य गंभीरचरिताद्भुतम् ।

महाकविसमाबद्धं रूपकं रूप्यतामिति ॥[3]

---

1. सुभद्रानाटिका, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 1.
2. वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते ।
   रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥ - सङ्गीतसर्वस्वकार विरचित ।
3. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 4.

इसी प्रकार 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक के आरम्भ में सूत्रधार सूचित करते हुए कहता है कि - कविना हस्तिमल्लेन विरचितं, विद्याधरचरितनिबन्धनमञ्जना-पवनञ्जयं' नाम नाटकं यथावत्प्रयोगेण नाटयितव्यमिति ।[1]

सुभद्रानाटिका का भी आरम्भ सूत्रधार की सूचना के बाद ही आरम्भ करते हैं । यथा - ननु भट्टारगोविन्दस्वामिसूनोर्भट्टहस्तिमल्लस्य कृतिर्नाटिका सुभद्रा ।

सुकुमारभावरम्या कान्तिमसाधारणीमसौ दधती ।
आवर्जयति सुभद्रा भरतस्य समुत्सुकं चेत: ।।[2]

## प्रस्तावना

रूपकों की 'प्रस्तावना' वस्तुत: उनका वह 'आमुख' है जिसमें नटी अथवा विदूषक अथवा पारिपार्श्विक (सूत्रधार का अनुचर नट) सूत्रधार के साथ ऐसा आलाप-संलाप किया करते हैं जिसमें प्रस्तुत अभिनय का आक्षेप करने वाले स्वस्वविषयक

---

1. अञ्जनापवनञ्जय, प्रथम अङ्क, पृष्ठ 1.
2. सुभद्रानाटिका, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 3.

अभिप्राय के सूचक चित्र-विचित्र वाक्यों का प्रयोग हुआ करता है ।[1] महाकवि हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' के प्रस्तावना में सूत्रधार के साथ मारिष का वार्तालाप दिखाया है ।[2] इसी प्रकार 'अञ्जनापवनञ्जय' की प्रस्तावना में भी सूत्रधार के साथ परिपार्श्वक को वार्तालाप करते हुए दिखाया है ।[3] सुभद्रानाटिका की प्रस्तावना में हस्तिमल्ल ने सूत्रधार और नटी को परस्पर वार्तालाप करते हुए प्रस्तुत किया है ।[4]

---

1. नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
   सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥

   चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
   आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

   साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, कारिका संख्या 31-32.

2. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, पृष्ठ 2-6.

3. अञ्जनापवनञ्जय, प्रथम अङ्क, पृष्ठ 1-2.

4. सुभद्रानाटिका, प्रथम अङ्क, पृष्ठ 1-2.

## विष्कम्भक

विष्कम्भक उसे कहते हैं जो भूत और भावी कथा-भागों की सूचना दिया करता है। इसकी योजना अङ्क के आरम्भ में ही की जाया करती है। मध्य अथवा अन्त में नहीं। इसके दो प्रकार होते हैं - प्रथम वह, जिसे 'शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं और जिसमें मध्यम प्रकृति के एक पात्र अथवा दो पात्रों के द्वारा वृत्त किंवा वर्तिष्यमाण वृत्तान्त भागों की सूचना दे दी जाया करती है। दूसरा वह, जिसे मिश्र (अथवा सङ्कीर्ण) विष्कम्भक कहा गया है, जिसमें नीच और मध्यम प्रकृति के पात्रों द्वारा भूत और भावी घटनाएँ सूचित की जाती हैं।[1]

हस्तिमल्ल की उपलब्ध कृतियों में कुल छः स्थलों पर शुद्ध विष्कम्भक और चार स्थानों पर मिश्र विष्कम्भक प्रयोग हुआ है जिनका विवरण अधोलिखित ढङ्ग से प्रस्तुत किया जा सकता है -

---

1. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
   संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
   मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
   शुद्धः स्यात्स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

   - साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, कारिका संख्या 55-56.

## शुद्ध-विष्कम्भक

| क्र0 सं0 | ग्रन्थ | अङ्क | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | विक्रान्तकौरवम् | प्रथम | 22 |
| 2. | विक्रान्तकौरवम् | तृतीय | 99 |
| 3. | विक्रान्तकौरवम् | षष्ठ | 257 |
| 4. | अञ्जनापवनञ्जय | प्रथम | 4 |
| 5. | अञ्जनापवनञ्जय | पञ्चम | 69 |
| 6. | सुभद्रानाटिका | चतुर्थ | 75 |

## मिश्र-विष्कम्भक

| क्र0 सं0 | ग्रन्थ | अङ्क | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | विक्रान्तकौरवम् | द्वितीय | 46 |
| 2. | विक्रान्तकौरवम् | तृतीय | 144 |
| 3. | विक्रान्तकौरवम् | पञ्चम | 206 |
| 4. | अञ्जनापवनञ्जय | षष्ठ | 89 |

## प्रवेशक

प्रवेशक वृत्त और वर्त्तिष्यमाण इतिवृत्त का सूचक हुआ करता है । इसकी योजना दो अङ्कों के बीच में की जाया करती है और इसमें 'अनुदात्तोक्ति' अर्थात् संस्कृत भिन्न प्राकृतादि भाषा द्वारा कथावस्तु की सूचना हुआ करती है । इसका प्रयोग नीच पात्रों का कार्य है ।[1] प्रवेशक और विष्कम्भक में अधोलिखित अन्तर पाये जाते हैं ।

| क्र0 स0 | विष्कम्भक | प्रवेशक |
|---|---|---|
| 1. | यह भूत और भावी घटना का सूचक है । | यह भी भूत और भावी घटना का सूचक है । |
| 2. | इसमें एक या दो मध्यम पात्र होते हैं । | इसमें सारे पात्र निम्न कोटि के ही होते हैं । |
| 3. | इसकी भाषा संस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होती है । | इसकी भाषा संस्कृत कभी नहीं होगी । इसमें केवल प्राकृत होती है और वह भी निम्न कोटि की । |

1. प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजित: ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेय: शेषं विष्कम्भके यथा ॥
- साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, कारिका संख्या 57.

महाकवि हस्तिमल्ल विरचित उपलब्ध नाटकों में से 'विक्रान्तकौरवम्' में तो प्रवेशक का प्रयोग ही नहीं प्राप्त होता है, शेष दो ग्रन्थों में कुल तीन स्थानों पर प्रवेशक का प्रयोग हुआ है, जिनमें से अञ्जनापवनञ्जय में दो बार तथा सुभद्रानाटिका में एक बार प्रवेशक का प्रयोग हुआ, जिनकी स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है :-

## प्रवेशक

| क्र0 सं0 | ग्रन्थ | अङ्क | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | अञ्जनापवनञ्जय | द्वितीय | 24 |
| 2. | अञ्जनापवनञ्जय | सप्तम् | 106 |
| 3. | सुभद्रा नाटिका | चतुर्थ | 75 |

## भाषा एवम् शैली

हस्तिमल्ल की रचना अत्यन्त प्रौढ़ तथा व्याकरण के नियमों का पूर्ण पालन करने वाली है । हस्तिमल्ल के ग्रन्थों का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि महाकवि हस्तिमल्ल सरल से सरल और कठिन से कठिन शैली का प्रयोग करने में निपुण थे । हस्तिमल्ल का भाषा पर पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है । भाषा पर उनके शक्ति के विषय में यदि यह कहा जाय कि उनमें वह शक्ति थी कि वे भाषा को अपनी उँगली पर नचा सकें । हस्तिमल्ल की भाषा सरल और क्लिष्ट, सुबोध और दुर्बोध, कोमल और कठोर, समास रहित और समास प्रधान इन परस्पर विरोधी गुणों से युक्त है । महाकवि हस्तिमल्ल के काव्य में तो कहीं-कहीं कईपंक्तियों के बाद विराम देखकर तो बाणभट्ट की याद आने लगती है यथा विक्रान्तकौरवम् के प्रथम अङ्क में वाराणसी की शोभा के सम्बन्ध में यह दृष्टान्त ध्यातव्य है -

क्वचित्कमलकुड्मलकोमलांजलिपुंजमंजुलभक्तजनसहस्रसंकुलानि, देवकुलानि क्वचिदु-न्निद्रकुसुममकरंदामोदमेदुरपवनान्युपवनानि, क्वचित्प्रचलवीचिनिचयविलुप्यमानविकच-सरसिजरजांसिसरांसि, क्वचित्सुरवनितासदृक्षयुवतीजनविहाररम्याणि हर्म्याणि, क्वचिदंतर्दृश्यमानकामिनीवदनकांतिवितीर्णकामिजननयनोपायनानि वातायनानि, क्वचित्कृततपनतापनिग्रहाणि, धारागृहाणिक्वचिदुल्लोलकल्लोललंबनिकुरम्बकरम्बित-

पांतविराजितमनोज्ञनिष्कुटान् ------------ मधुमदमत्तमधुकरमनोहारिझंकारस्य सहकारस्य तले विविक्तौत्सुक्यान् मुहूर्तमासिष्ट ।[1]

हस्तिमल्ल की भाषा में प्रवाह है, रस है, माधुर्य है और अलङ्कार की विच्छित्ति है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को रसानुकूल शब्द योजना करने में किसी विशेष चिन्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती है । हस्तिमल्ल सरस्वती के वरद-पुत्र के समान किसी भी वस्तु का वर्णन करने में सफल हुए हैं । विक्रान्तकौरवम् के प्रस्तावना के अन्त में वसन्तकाल के दिनों का वर्णन पर्याप्त आकर्षक है । इसकी शब्दावली अपनी और बरबस आकृष्ट करती है । यथा -

पुष्यच्चूतलताप्रवालकलनामाद्यत्पिकोद्यत्स्वरा
वासन्तीलतिकालतांतविचरद्भृङ्गारवाडंबरा: ।
फुल्लाशोकसुगंधबंधुरचरन्मंदानिलस्पंदना
यूनामुत्सुक्यंति मानसममी वासंतिका वासरा: ।[2]

विक्रान्त कौरवम् के द्वितीय अङ्क में प्रतिहार के मुख से गङ्गा वर्णन करते हुए कवि अत्यन्त मनोहारी रचना की है -

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, पृष्ठ 16.
2. वही, श्लोक संख्या 7.

गङ्गातरङ्गेण विधारयंती

सरोजजालं चलहंसमालम् ।

उल्लासिहारच्छविहारितोया

वाराणसीसीमविहारिपूरा ॥[1]

मदकलसारसलीला काल्हारविसरणमंजुलसमीरा ।

तामरससरसकेसर-विसराकुलसलिलकल्लोला ॥[2]

हस्तिमल्ल ने विदूषक द्वारा प्राकृत में और राजा द्वारा संस्कृत में विक्रान्त कौरवम् के द्वितीय अङ्क में गङ्गातीर के उद्यान का जो वर्णन किया है वह अत्यन्त आह्लादकारी है । विविध पुष्पों का रस लेता हुआ भ्रमर कैसे घूमता है -

चूषंचूताङ्कुराग्रं क्षणमथ कलिका: पाटयन् पाटलीना-

मास्कंदन् कुन्दकोशं झटिति विघटयन् कुड्मलं कारहाटम् ।

भिंदन् मंदारबद्धं मुकुलमविकचं चंपकानां च चुम्बन्

पुष्पात्पुष्पादभ्येति पुष्पं मधुकरनिकर: प्राप्तहर्षप्रकर्ष: ॥[3]

---

1. विक्रान्तकौरवम् ,द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 10.
2. वही, श्लोक संख्या 11.
3. वही, श्लोक संख्या 15.

गङ्गा तीरस्थ उद्यान के अनार और विजोरा के वृक्षों का वर्णन करते हुए कवि ने उपमालङ्कार की जो अतिशय सुन्दर छटा बिखेरी है वह बरबस अपनी ओर आकृष्ट करता है -

हृद्यामद्यानुधावत्यधरदलरुचा रंजितां दंतपंक्तिं
गौडीनां प्रौढपाकक्रमपरिदलितैः स्वैः फलैरुच्छिलिंगः ।
निष्टप्तस्वर्णवर्णच्छविभिरवहितघ्राणलेढव्यगंधैः
काश्मीरीगण्डशोभां कवलयति फलैर्निर्मलैर्मातुलिङ्गः ।।[1]

अर्थात् यह अनार अत्यधिक पक जाने के कारण कटे हुए अपने फलों से गौड़ देश की स्त्रियों के अधरोष्ठ की कान्ति से रङ्गी सुन्दर दन्तपंक्ति समान कान्ति से युक्त तथा एकाग्र नासिका से सूँघने के योग्य गन्ध से सुशोभित निर्मल फलों से काश्मीर देश की स्त्रियों के गालों की शोभा को ग्रस्त कर रहा है ।

गद्य शैली में हस्तिमल्ल ने गङ्गा वर्णन का जो दृश्य उपस्थित किया है उससे सिद्ध होता है कि इनका गद्यात्मक शैली पर एकाधिकार था । यथा -

---

1. विक्रान्तकौरवम्, द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 16.

।विलोक्य निर्वर्ण्य च। इयं खलु मदोद्भरोद्दाममल्लिकाक्षपक्षविक्षेपक्षोभण-प्रक्षरदरविंदमरंदावस्कंदसांद्रसलिला सलीलविलोठमानपाठीनपरिपाटीजटिलकल्लोला कलक्वणितानुमीयमानेंदिंदिरवृंददोलितविनिद्रेंदीवरवना विहारकेलीकलहायमानकोक-निनदमुखरितविकचकोकनदकुटीरकोटरा सकौतुकवरटारटनानुसरणसंभ्रांतकलहंसकुलसंकुलोत्फुल्ल-पुंडरीकखंडा चटुलखञ्जरीटकुटिलपदपंक्तिचित्रितपर्यंतसैकततला प्रसादतुलितनिर्मलस्फाटिकतटा विघटितसौगंधिकगंधसंबंधबंधुरितगंधवाहा नन्दयति नयनानि मंदाकिनी ।[1]

अर्थात् सचमुच ही जिसका पानी मद के अत्यधिक भार से उत्कट हंस-विशेषों के पङ्खों की फड़-फड़ाहट-सम्बन्धी क्षोभ के कारण झरते हुए कमलों के मकरन्द-सम्बन्धी प्रसार से अत्यधिक व्याप्त हो रहा है, लीलासहित लोटती हुई मछलियों की परम्परा से जिसमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रहीं हैं, जिसके खिले हुए नील-कमलों के वन मधुर गुञ्जन से अनुमान में आने वाले भ्रमरों के समूह से हिल रहे हैं, जिसमें लाल कमल रूपी कुटियों का मध्यभाग विहार के समय क्रीड़ा से कलह करने वाले चकवों के शब्द से शब्दायमान हो रहा है, जिसके फूले हुए सफेद कमलों के समूह कौतुक युक्त हँसियों के शब्द का अनुसरण करने से भ्रान्ति में पड़े हुए कलहंसों-बत्तकों के समूह से व्याप्त हैं, जिसके समीपवर्ती रेतीले प्रदेश, चञ्चल खञ्जन पक्षियों की टेढ़ी पदपंक्तियों से चित्रित हैं, जो

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, पृष्ठ 53.

अपनी स्वच्छता से निर्मल स्फटिक से निर्मित तट की तुलना कर रही है और जिसमें खिले हुए सफेद कमलों की गन्ध के सम्बन्ध से मनोहर वायु बह रही है - ऐसी यह गङ्गा नेत्रों को आनन्दित कर रही है ।

इस प्रकार के मनोहारी एवं चित्ताकर्षक वर्णन को पढ़कर तो क्षण भर के लिए ऐसा लगता है कि मानों ये सब आँखों के सामने घटित हो रहे हों । इतना जीवन्त वर्णन करने में महाकवि हस्तिमल्ल का अपना एक विशिष्ट स्थान है, यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है ।

महाकवि हस्तिमल्ल नूतन शब्दों के प्रयोग में भी निष्णात् हैं । कवि द्वारा नूतन शब्दों के प्रयोग का एक दृष्टान्त द्रष्टव्य है । यथा -

अयमिह सहसान: संगरन् बर्हभारं
तरुविटपनिषण्णस्सेवते स्वापसौख्यम् ।
श्रयति तपनतापादुत्त्रसन्नत्र चासौ
घननलिनपलाशाभ्यंतरं मंदसान: ॥[1]

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 35.

अर्थात् यह मयूर पिच्छ के समूह को सङ्कुचित करता हुआ वृक्ष की डाली पर बैठकर निद्रासुख का सेवन कर रहा है और यह हंस सूर्य की गर्मी से भयभीत होता हुआ सघन कमल पत्रों के भीतर घुस रहा है ।

प्रकृत श्लोक में मयूर के लिए सहसान और हंस के लिए मन्दसान शब्द का प्रयोग हस्तिमल्ल ने नूतन ढंग से किया है ।

काशी नगरी का सौन्दर्य एवं महत्त्व तो प्राचीन काल से ही वर्ण्य-विषय रहा है । महाकवि हस्तिमल्ल भी काशी के वेशवाटों के वर्णन का लोभ संवरण नहीं कर सके और उन्होंने अपनी लेखनी को इसके वर्णन में अत्यधिक प्रस्फुटित करते हुए लिखा कि - कथमसौ विलासबाह्यालिर्मकरध्वजस्य संगीतशालारतेर्विक्रयायण: स्त्रीरत्ना-नामुत्पत्तिभवनं श्रृङ्गारस्य नाभिगृहं लीलाया निर्माणभूमिर्विभ्रमाणामाकर्षणवडिशं तरुण-जनमनोमीनानामवस्कंदपरबलमिंद्रियग्रामस्य विनयमुखमटाक्षेपणरंगो विनीतजनवारणानां स्वगुणविकत्थनस्थानं षिड्गानां वैदग्ध्यविनिमयहट्टश्छेकानां करालगोलव्यतिकरपितृवनं वेश्याजनमातृजरत्पितृपिशाचिकानां पुराणा वामभूर्गणिकादारिकाभुजंगीनामपूर्वमद्वैत-दर्शनं मायाप्रपंचस्य पारिपंथिको निश्रेयसपथपान्थानां मनोरथमात्रास्वाद्यो दुर्गतानां द्रविणवतां सदाप्यदत्तकवाटो वेशवाट: ।[1]

---

1. विक्रान्तकौरवम् , तृतीय अङ्क, पृष्ठ 79-80.

अर्थात् क्या यहवेश्याओं का वह स्थान है जो कामदेव को हावभाव रूपी विलास के विस्तृत होने का मैदान है, रति की सङ्गीत शाला है, स्त्री रूपी रत्नों के विक्रय का बाजार है, शृङ्गार की उपपत्ति का भवन है, लीला की निर्माणभूमि है, विभ्रमों की रचना स्थली है, तरुण मनुष्यों के मन रूपी मछलियों को खींचने वाली वंशी है, इन्द्रियरूपी ग्राम को लूटने वाली शत्रु सेना है, विनीत मनुष्य रूपी हाथियों के विनय रूपी मुखपट को दूर करने का स्थान है, मुण्डों का अपने गुणों की प्रशंसा का स्थल है, चतुर मनुष्यों का अपनी चतुराई के बदलने का बाजार है, वेश्याओं की माता रूपी वृद्ध चुडैलों के रहने का भयङ्कर श्मशान है, वेश्याओं की पुत्रियाँ रूपी सर्पिणियों की वापी हैं, माया के विस्तार का अनुपम अद्वैत दर्शन है अर्थात् जहाँ माया ही माया दिखाई देती है, जो योग्य मार्ग के पथिकों का विरोधी है, दरिद्र मनुष्यों के लिए जो मनोरथमात्र से आस्वादन करने योग्य है तथा धनिक मनुष्यों के लिए जिसके किवाड़ सदा खुले रहते हैं ।

'दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लव: ' आदि सिद्धांत के अनुसार नाटक में युद्ध का साक्षात् वर्णन निषिद्ध है । इसलिए 'विक्रान्तकौरवम्' में रत्नमाली विद्याधर, उसकी स्त्री रत्नमाला, मित्र मंदर और अनुचर मन्थर के वार्तालाप के द्वारा युद्ध का परोक्ष वर्णन किया गया है । यह वर्णन हस्तिमल्ल ने इतना उदात्त

और रसपूर्ण ढंग से किया है कि इसे पढ़कर लगता है कि मानों युद्ध साक्षात् सामने ही हो रहा है । युद्ध के समय धूल उड़कर आकाश में छा जाती है इसका मनोहारी वर्णन द्रष्टव्य है -

ख्यात: पूर्वं जगति समरो मत्कृते भूपतीनां
काचित् कन्यां प्रति रणमिदं तद्यशो मे प्रमार्ष्टि ।
इत्युद्भूतात् प्रकृतिसुलभात् स्त्रीषु या यत्नवैरात् ।
क्वापि क्षोणी, घनतमरजश्छद्मना गच्छतीव ॥[1]

अर्थात् पृथ्वी सोच रही है कि आज तक राजाओं के जितने युद्ध हुए वह सब हमारे लिए ही हुए हैं पर यह युद्ध एक कन्या के लिए हो रहा है । इस तरह उत्पन्न हुए स्त्रीविषयक सौतियाडाह के कारण ही मानो पृथिवी सान्द्रधूलि के छल से कहीं भागी जा रही है ।

कवि की भाषा का प्रवाह अपने ढंग का एक अनूठा प्रवाह है । महाकवि हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' में एक श्लोक द्रष्टव्य है जिसमें सिर्फ लोट् लकार

---

1. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 32.

मध्यम पुरुष के एकवचन का प्रयोग हुआ है । इसकी शब्द योजना वस्तुतः अपने आपमें पृथक् अस्तित्त्व रखने में समर्थ है यथा -

> धुन्ध्याघूर्णय कुट्टय क्षिपदहव्यारंध संधानय ।
> भिंधि च्छिंधि मथान ताडय जहि व्यावर्तयापातय ।
> विद्रयास्फालय भंज रुंधि विकिर व्याकर्ष धर्षोद्धरे-
> त्येवं प्रायमिहोच्चरद्वच इदं व्याजायते व्योमनि ॥[1]

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हस्तिमल्ल की भाषा, सबल, संपुष्ट और परिष्कृत है । हस्तिमल्ल गंभीर से गंभीर भावों को अत्यन्त परिष्कृत और प्रभावपूर्ण भाषा में प्रकट करने में निष्णात हैं । हस्तिमल्ल ने भावों के अनुकूल शैली अपनायी है और तदनुरूप ही शब्दावली का संचयन किया है । हस्तिमल्ल के भाषा के विषय में यदि यह कहा जाय कि उनकी भाषा करुण रस के वर्णन में कठोर हृदय को भी रुलाने और वीर रस के वर्णन में निर्जीव हृदय में भी उत्साह का सञ्चार करने में समर्थ है तो सम्भवतः यह अतिशयोक्ति नहीं, अपितु औचित्यपूर्ण ही होगा ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या 43.

महाकवि हस्तिमल्ल को एक रस सिद्ध कवि के रूप में देखा जा सकता है। उनके काव्यों के अनुशीलन से यह पता चलता है कि उनकी कृतियों में रस स्वतः ही आ गया है। उनका विभिन्न रसों पर समान अधिकार है। शृङ्गार रस तो उनकी रचनाओं में पग-पग पर दिखायी देता है। इसके अतिरिक्त अन्य रस, वीररस, बीभत्स, भयानक, रौद्र, अद्भुत आदि उनकी कृतियों में स्पष्टतः प्राप्त होते हैं।

हस्तिमल्ल प्रकृतिवर्णन, शारीरिक सौन्दर्य वर्णन, आन्तरिक सौन्दर्य वर्णन, मनोभाव वर्णन, आन्तरिक दशा का वर्णन, विरह वर्णन और मानव सुलभ अन्य भावों के वर्णन में भी अत्यन्त निपुण हैं। उनकी पैनी दृष्टि स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का वर्णन करना उनका सहज स्वभाव प्रतीत होता है। उन्होंने प्रकृति के सुकुमार और कठोर रूपों तथा प्रकृति से तादात्म्य का सुन्दर वर्णन किया है।

महाकवि हस्तिमल्ल ने अपने भाषा के प्रवाह के दौरान औचित्य का पूरा ध्यान दिया है। संवादों में सर्वत्र औचित्य और रोचकता बनी रहती है। हस्तिमल्ल ने संवादों में उतना ही अंश देने का प्रयास किया है, जितना नाटकीय प्रवाह में बाधक न बने। महाकवि ने संवाद और उनकी भाषा को सर्वथा पात्रों के

अनुकूल रहने का प्रयास किया है । कवि ने प्रत्येक पात्र से उसकी आयु, योग्यता आदि के अनुकूल ही भाव और भाषा का प्रयोग करवाया है ।

हस्तिमल्ल के नाटकों में प्राय: सभी प्रमुख अलङ्कारों के प्रयोग देखने को मिलते हैं । इसका कारण है - भाव, भाषा और शैली पर हस्तिमल्ल का असाधारण अधिकार होना । इसी असाधारण अधिकार के कारण अलङ्कार उनकी भाषा में बिना किसी श्रम के ही आये हुए प्रतीत होते हैं ।

जैन नाटककारों की परम्परा में महाकवि हस्तिमल्ल का एक विशिष्ट स्थान है । इनकी विशिष्टताओं में प्रमुख रूप से रस, वर्णन की विशेषता, अलङ्कार वर्णन की विशेषता, भाषा की प्राञ्जलता, छन्द वर्णन की विशेषता, सरल और क्लिष्ट शैली की विशेषता, वर्णनात्मक विशेषता, आदि प्रमुख रूप से स्वीकार की जा सकती हैं । हस्तिमल्ल की इन अनेक साहित्यिक विशेषताओं के कारण इन्हें संस्कृत-साहित्य के मूर्धन्य विद्वानों की कोटि में रखने में कथमपि सन्देह नहीं है ।

## हस्तिमल्ल और कालिदास

कविकुलगुरु महाकवि कालिदास और जैन परम्परा के उत्कृष्ट कवि महाकवि हस्तिमल्ल की कृतियों का सूक्ष्म अनुशीलन करने से यह पता चलता है कि

हस्तिमल्ल ने कविकुल शिरोमणि कालिदास के साहित्यिक चिह्नों पर चलने का प्रयास किया है और एक निश्चित सीमा तक हस्तिमल्ल को साफल्य भी प्राप्त हुआ है । संस्कृत साहित्याकाश में कालिदास के समान गौरवास्पद एवं सफल नाटककार होने का श्रेय शायद ही किसी को प्राप्त हो । यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि जहाँ तक सुकुमार-भाव-युक्त कवित्व और काव्य का सम्बन्ध है, उसमें कालिदास सर्वोपरि हैं और महाकवि कालिदास द्वारा स्थापित इन्हीं सुकुमार भावों के उपवन के एक सुगन्धित पुष्पवृक्ष के रूप में महाकवि हस्तिमल्ल को प्रस्तुत किया जा सकता है ।

महाकवि हस्तिमल्ल तो कहीं-कहीं पर पूरी तरह से कालिदास का अनुकरण करते हुए प्रतीत होते हैं । हस्तिमल्लप्रणीत सुभद्रानाटिका के प्रथम अङ्क के 21वें श्लोक[1] और कालिदासकृत रघुवंश के छठें अङ्क के 53वें श्लोक[2] में तो

---

1. कुमुद्वतीं चन्द्रमसेव दृष्टां
   ज्योत्स्नामिवेन्दोरचिरोदितस्य ।
   मुग्धत्वमेनां जहतीं क्रमेण
   स्पृशत्यसौ संप्रति कापि शोभा ॥ - सुभद्रानाटिका, प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 29.

2. कामं नृपाः सन्तु सहस्त्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
   नक्षत्रताराग्रहसङ्कुलापि ज्योतिष्मति चन्द्रमसैव रात्रिः ॥
   - रघुवंश, षष्ठोऽङ्कः, श्लोक संख्या 22.

दोनों कवियों ने एक ही शब्द (ज्योत्सना) का प्रयोग किया है ।

इसी प्रकार महाकवि कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथम अङ्क के 18वें श्लोक[1] और हस्तिमल्ल प्रणीत सुभद्रानाटिका के द्वितीय अङ्क के 8वें श्लोक[2] की समानता को देखकर तो यह बताना कठिन सा प्रतीत होने लगता है कि कौन सा पद्य कालिदास का है और कौन सा हस्तिमल्ल का ?

हस्तिमल्ल और कालिदास की कृतियों में समानता का विश्लेषण करते समय जब हमारा ध्यान कालिदास प्रणीत रघुवंश के छठें अङ्क के 57वें श्लोक[3] और

---

1. इदं किलाव्याजमनोहरं वपु-
   स्तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति ।
   ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
   शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥ - अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/18.

2. अव्याजसुन्दरेणैव वपुषा वसुधामिमाम् ।
   अशेषामजयत्स्वैरं सा विद्याधर सुन्दरी ॥
   - सुभद्रानाटिका द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 8.

3. अनेन सार्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु ।
   द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेद लवा मरुद्भिः ॥
   - रघुवंश, षष्ठोऽङ्कः, श्लोक संख्या 57.

हस्तिमल्ल प्रणीत 'विक्रान्तकौरवम्' के 50वें श्लोक[1] पर पड़ता है तो पूरी तरह से स्पष्ट होने लगता है कि दोनों कवियों में एक ही तरह की समानता है । इन पद्यों के शब्दों का और भावों का चयन हमें दोनों महाकवियों को समान कहने के लिए बाध्य करता है ।

हस्तिमल्ल विरचित 'विक्रान्तकौरवम्' के तृतीय अङ्क में स्वयंवर सभा में आसीन राजाओं का वर्णन कविकुलगुरु कालिदास प्रणीत रघुवंश में वर्णित इन्दुमती के स्वयंवर का स्मरण करा देता है । इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि हस्तिमल्ल ने कालिदास के विधा पर ही अपनी कृतियों की रचना की ।

## हस्तिमल्ल और भवभूति

हस्तिमल्ल की शैली और भवभूति की शैली में समानता है । भवभूति के समान शैली का प्रयोग हस्तिमल्ल कृत 'विक्रान्तकौरवम्' के प्रथम अङ्क में सुलोचना की नगर-यात्रा के समय प्राप्त होता है । यथा -

---

1. अनेन सार्धं सुरलोकवातव्याधूतसंतानकसौरभाणि ।
   कल्याणि सेवस्व सुरप्रवंतीतीरांतमंदारलतागृहाणि ॥

   - विक्रान्तकौरवम् , तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या 50.

तत्रश्च नातिदूरमिव गते चतुरंतयाने चतुरंतयानविन्यस्तैकहस्तारिणीमपरां सखीमभिभाषितुकामा किल तिर्यग्वलमानवलिकं विवलनवशानिबिडितकुचतटाभोगसंकुचितोरस्कमतिच्युतशिथिलस्तनांशुकं अंसभागावष्टब्धकपोलपालिकं सलीलत्रिकविवर्तनविश्लथकबरीभारालंकृतापरांसभागमपांगोत्संगपर्यस्तचिकुरलोचनं अर्धविस्त्रस्तकर्णोत्पलचुंब्यमानभ्रूलतांतमसौ द्विगुणितोपधानावष्टंभनिहितैकहस्ता सविभ्रमदर्शितपूर्वकायकांतिकमनीया किमपि किमप्याभाषमाणा च तामंतरान्तरा च चोदयंती च मदंतिकं तरलतरतारसारोदरां दृशं दृश्यमानैव संसक्तमतिचिरेण तिरोहिता काशीराजदुहिता ।[1]

हस्तिमल्लप्रणीत विक्रान्तकौरवम् के द्वितीय अङ्क के गङ्गा तीरोद्यान में सुलोचना का प्राकृतभाषा द्वारा जो आत्मगत चिन्तन लिखा गया है वह भवभूति के 'मालतीमाधव' में प्रस्तुत मालती के आत्मगत चिन्तन का स्मरण दिलाता है ।[2]

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि जैन-परम्परा के उत्कृष्टरचनाकार महाकवि हस्तिमल्ल में संस्कृत साहित्य जगत् के प्रख्यात मनीषी महाकवि कालिदास और भवभूति का मञ्जुल समन्वय प्राप्त होता है । एक ओर

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, पृष्ठ 29.

2. वही, पृष्ठ 60-63.

जहाँ हस्तिमल्ल में कालिदास की उपमाओं, शब्द-योजना और अलङ्कारों का प्रभाव देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर हस्तिमल्ल में भवभूति के संवाद-विस्तार का भी प्रभाव पर्याप्त रूप से दिखायी पड़ता है ।

-----------::0::-----------

## अध्याय - सप्तम

## उपसंहार

# अध्याय - सप्तम

## उपसंहार

महाकवि हस्तिमल्ल ने अपनी रचनाओं का आधार जैन ग्रन्थों को ही बनाया है । यथा - पउमचरिय, पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिपुराण आदि ग्रन्थों के आधार पर अपनी रचनाओं को नाटक का परम्परागत रूप प्रदान किया है । हस्तिमल्ल के उपलब्ध नाटकों का सूक्ष्म विश्लेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हस्तिमल्ल का प्रमुख वैशिष्ट्य यह है कि वह एक कलाकार हैं, कला के पारखी एवं मर्मज्ञ हैं । उपलब्ध नाटकों में हस्तिमल्ल ने नाटकीय व्यवस्थाओं आदि को जिस तरह से व्यवस्थित किया है उससे हस्तिमल्ल के प्रवीण सौन्दर्य-मर्मज्ञ होने की विज्ञप्ति होती हैं । नाटकों के विषय में कालिदास का यह विचार विशेष द्रष्टव्य है कि वे नाटक को 'चाक्षुष यज्ञ' मानते हैं । उनके विचार में नाटक उपदेश की लोकप्रिय प्रणाली नहीं है । कालिदास का विचार है कि नाटक जीवन का उपदेश नहीं, जीवन का अध्ययन है । इसी अध्ययन-क्षेत्र के वैविध्य से भिन्न-भिन्न रुचि वाले व्यक्तियों के लिए नाटक रुचिकर प्रतीत होता है । यह नाटक देवताओं के नेत्रों का प्रसाधन करने वाला यज्ञ है । स्वयं महादेव जी ने उमा से विवाह करके अपने शरीर में इसके दो भाग कर दिये हैं - एक ताण्डव और दूसरा लास्य । इसमें सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुण भी दिखायी पड़ते हैं और अनेक रसों में लोक चरित लक्षित होते हैं । इसीलिए भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोगों के लिए प्रायः

नाटक ही एक ऐसा उत्सव है जिसमें सबको समान आनन्द प्राप्त होता है ।[1]

हस्तिमल्ल प्रणीत उपलब्ध कृतियों के कथानकों पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि श्री हस्तिमल्ल ने भी प्राचीन परिपाटी का यथावद् पालन करते हुए अपने नाटकों में राजकुमारों और राजकुमारियों के ही प्रेम कथाओं को ही प्रस्तुत किया है । यथा - विक्रान्तकौरवम् में जयकुमार और सुलोचना, अञ्जनापवनञ्जय में अञ्जना और पवनञ्जय, सुभद्रा में भरत और सुभद्रा के प्रेमाख्यानों को प्रस्तुत किया है जिसे हस्तिमल्ल ने कथावस्तु को नितान्त कलात्मक ढंग से सँजोया और सँवारा है ।

महाकवि हस्तिमल्ल की कृतियों में कथा अत्यन्त साधारण सी प्रतीत होती है, नायक और नायिका का परस्पर प्रेम ही कथानक का आधार है, लेकिन कथानक का सम्पूर्ण वातावरण, उसका समग्र विकास पूर्णरूपेण मौलिक कोटि का ही प्रतीत होता है । इनके ग्रन्थों में प्रस्तुत नाटकीय व्यवस्थाएँ कहानी की कला को नवीन धरातल तक पहुँचा देती हैं ।

---

1. देवानामिदमामनन्ति मुनय: शान्तं क्रतुं चाक्षुषं,
   रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ।
   त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते,
   नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम् ।। - मालविकाग्निमित्र, 1/4.

महाकवि हस्तिमल्ल को अपनी काव्यात्मक प्रतिभा के सहारे दो रूपों में सफलता मिली है । प्रथमत: हस्तिमल्ल काव्योचित भावों के धनी है, जिन्हें वे बड़ी निपुणता से चरित्र तथा व्यापार के साथ मिला देते हैं और द्वितीयत: हस्तिमल्ल में संयम एवं संतुलन की काव्यात्मक भावना है जो किसी नाटककार की सफलता के लिए आवश्यक हेतु कहे जा सकते हैं । यह विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि विषय, चरित्र तथा व्यापार के निर्वाचन में महाकवि हस्तिमल्ल ने अपनी प्रतिभा की काव्यात्मक प्रवृत्ति का ही अनुगमन किया है । हस्तिमल्ल के उपलब्ध तीनों नाटकों का मुख्य विषय है 'प्रेम'। विभिन्न पक्षों में और विभिन्न परिस्थितियों में चिन्तायुक्त प्रेम, रोमाञ्चित करने वाला अनियंत्रित तथा उतावली से भरा हुआ प्रेम, नायक-नायिका के प्रणय चित्रों को अत्यन्त प्रस्फुट काव्यात्मक कल्पना की रंगीनी तथा सजीवता से अनुप्राणित कर देने में हस्तिमल्ल समर्थ प्रतीत होते हैं । यदि यह कहा जाय कि हस्तिमल्ल ने प्रेम को जीवन के प्रमुख संचालिका शक्ति के रूप में स्वीकार किया है तो सम्भवत: औचित्यपूर्ण ही होगा । हस्तिमल्ल ने कहीं पर भी प्रेम को दूषित नहीं होने दिया है और उसे नियंत्रित रखा है, यह एक कलाकार के रूप में हस्तिमल्ल का वैशिष्ट्य ही है ।

प्रत्येक नाटक की एक अन्तरात्मा होती है और उसका विकास भीतर से

बाहर की ओर होता है । हस्तिमल्ल के नाटकों में एक अभ्यन्तरीण विचारधारा भी है जो सम्पूर्ण नाट्यवस्तु को अधिशासित करती है और अभिनेताओं को भी अपने नियंत्रण में कर लेती है । कथानक, घटना, कथोपकथन तथा चरित्र-चित्रण आदि सभी तत्त्वों का हस्तिमल्ल की कृतियों में अभिराम सामञ्जस्य उपलब्ध होता है जो अभिनेताओं तथा सामाजिकों, दोनों को समरूपेण प्रभावित करता है । नाटकीय प्रभाव के सम्पूर्ण तत्त्व उनमें दृष्टिगोचर होते हैं और वे सभी नाटक की केन्द्रीय, भीतरी आत्मा के द्वारा शासित एवं सञ्चालित होते हैं ।

महाकवि हस्तिमल्ल की उपलब्ध नाट्यकृतियों का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि हस्तिमल्ल ऐन्द्रिय भावानुभूति तथा रसात्मक सौन्दर्य के सिद्धहस्त कवि हैं । किसी वस्तु का ग्रहण करने में और उसका स्पष्ट प्राञ्जल रूप सहृदय के नेत्रों के समक्ष उपस्थित करने में हस्तिमल्ल निष्णात प्रतीत होते हैं । कल्पना के द्वारा किसी वस्तु का मानसिक साक्षात्कार कराने में भी हस्तिमल्ल की कोई समी नहीं है । सजीव चित्रण, चित्रांकन रूपसौन्दर्य एवं वर्णसौन्दर्य की सुकुमारता की छटा भी हस्तिमल्ल की कृतियों में दर्शनीय है ।

हस्तिमल्ल द्वारा जो चित्रण 'विक्रान्तकौरवम्' के द्वितीय अङ्क में गङ्गा तीरस्थ उद्यान का प्रस्तुत किया गया है वह हस्तिमल्ल को प्रकृतिगत सुषमा को वर्णित

करने वाले गिने-चुने कवियों की पङ्क्ति में खड़ा करा देता है । हस्तिमल्ल प्राकृतिक सुषमा एवं मानवीय भावानुभूति के तत्त्व द्वय को कल्पना का सहारा लेकर एक में घुला मिला देने, उन्हें समरस बना देने में नितान्त प्रवीण हैं । हस्तिमल्ल प्रकृति चित्रों को परिस्थितियों से प्रसूत करते हैं, उनकी परिस्थितियाँ प्रकृति-चित्रों में ही मिल जाती हैं । 'विक्रान्तकौरवम्' में 'जयकुमार' और 'सुलोचना', 'अञ्जनापवन -ञ्जय' में 'पवनञ्जय' और 'अञ्जना', 'सुभद्रा' में 'भरत' और 'सुभद्रा' की प्रणय विषयक व्यापार प्रकृति के रूपों के मध्य अपना विस्तार करते हैं ।

हस्तिमल्ल अपने वस्तु-विन्यास में भी सतर्क एवं सावधान प्रतीत होते हैं । अन्य कवियों की तरह उन्होंने वर्ण्य-विषय को अपने पाण्डित्य प्रदर्शन हेतु माध्यम रूप में नियोजित नहीं किया है । उन्होंने गृहीत विषय का उपयोग अत्यन्त प्रवीणता के साथ किया है । हस्तिमल्ल ने 'विक्रान्तकौरवम्' नाटक में जयकुमार और सुलोचना का परस्पर दर्शन और दोनों के मन में प्रेम का बीज वपन, स्वयंवर में सुलोचना द्वारा जयकुमार का वरण तथा जयकुमार और अर्ककीर्ति का युद्ध, पुनश्च रत्नमाला का अर्क-कीर्ति को प्रदान किया जाना तत्पश्चात् जयकुमार को सुलोचना की प्राप्ति का वर्णन अत्यन्त कुशलता के साथ किया है । इसी प्रकार 'अञ्जनापवनञ्जय' नाटक में भी 'अञ्जना और पवनञ्जय' को एक दूसरे के प्रति प्रेमासक्त होना, बीच-बीच में दोनों

का वियोग और फिर मिलन कराना कवि की नाट्य-प्रतिभा का द्योतक है । इसी तरह सुभद्रानाटिका में भी कवि ने वर्ण्य विषय भरत और सुभद्रा के प्रेम को बड़े आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

सौन्दर्य का विमर्श दो रूपों में किया जा सकता है - वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ । वस्तुनिष्ठता सर्वजनसुलभ और आत्मनिष्ठता मनोवैशिष्ट्यसापेक्ष होता है । वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य में नयनाकर्षण और आत्मनिष्ठ सौन्दर्य में अन्तर्मन का आकर्षण होता है । वास्तव में आकर्षण ही सौन्दर्य का प्राणतत्त्व है ।

महाकवि हस्तिमल्ल सौन्दर्य-वर्णन के सिद्ध कवि हैं । हस्तिमल्ल ने प्राकृतिक सौन्दर्य का जितना सरस एवं ललित वर्णन किया है उससे कई गुना अधिक हृदयावर्जक वर्णन मानव-सौन्दर्य का किया है । हस्तिमल्ल रूप की माया को प्रदर्शित करने में दक्ष हैं । नारी सुन्दरता मानो हस्तिमल्ल के हृदय के सम्पूर्ण तारों को एक साथ झंकृत करता है, ऐसा उनके द्वारा वर्णित नारी सौन्दर्य के आधार पर कहा जा सकता है । नारी-देह के सौन्दर्य का वर्णन हस्तिमल्ल ने विक्रान्तकौरवम् में करते हुए कहा है कि - वह सुलोचना श्रृङ्गार रस की श्रेष्ठ परिणति है, समस्त संसार की कोई मोहिनी विद्या है, सौन्दर्य रूप श्रेष्ठ लक्ष्मी की उत्कृष्ट पदवी है, काम की जवानी का भारी मद है, रति के प्रवाहों की नदी है, हाव-भाव रूप

संपदाओं की क्रीडा है और सौन्दर्य का अखण्ड पवित्र बाजार है ।[1]

महाकवि हस्तिमल्ल की उपलब्ध कृतियों का अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उनके ग्रन्थों में प्रेम भावना की प्रधानता है । हस्तिमल्ल की लेखनी से मुख्यत: सौन्दर्य एवं प्रेम की ही ध्वनियाँ नि:सृत होती हैं । नयनाभिराम रूप की मादक छवियों की भावना से जैसे वे एकदम चमत्कृत हो जाते हैं । हस्तिमल्ल प्रणयरस की अत्यन्त मादक तथा अत्यन्त गम्भीर स्रोतस्विनी प्रवाहित करके सहृदयों को सर्वथा आत्मविभोर करने में समर्थ प्रतीत होते हैं । हस्तिमल्ल के द्वारा प्रस्तुत पात्र प्रणय-व्यापार में मर्यादाओं का हनन नहीं करते हैं । वस्तुत: प्रेम की उत्कण्ठा और संयम की कठोरता, दोनों के नितान्त आवर्जक चित्र हस्तिमल्ल के काव्यों में उपलब्ध होते हैं । भारतीय शास्त्रों में नर-नारियों का संयत सम्बन्ध कठिन अनुशासन के रूप में आदिष्ट है और वही हस्तिमल्ल के काव्य में सौन्दर्य के उपकरणों से सुसंगठित हुआ है ।

---

1. शृङ्गारस्य गरीयसी परिणतिर्विश्वस्य संमोहिनी
   विद्या काप्यपरा परा च पदवी सौन्दर्यसारश्रियाम् ।
   उद्दामो मदनस्य यौवनमद: कुल्या रतिस्रोतसां
   केलिर्विभ्रमसंपदामविकलो लावण्यपुण्यापण: ।। - वि0कौ0, प्र0अ0श्लोकसं0 24.

महाकवि हस्तिमल्ल की कृति की नाना प्रकार की छवियों के नितान्त मनोरम एवं प्रभावशाली चित्रण उपलब्ध है । वास्तव में हस्तिमल्ल के काव्य-चातुर्य के कारण ही श्रृङ्गार की कमनीयता तथा उद्देश्य की शालीनता का मणिकाञ्चन संयोग उनके काव्यों में परिलक्षित होता है । कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि कवि प्रकृति वर्णन में एक दम से रम गया है, घुल-मिल गया है । हस्तिमल्ल ने विक्रान्त कौरवम् के द्वितीय अङ्क में अनार और विजोरा के वृक्षों का वर्णन बड़े ही मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया है । अनार और विजोरा के वृक्षों का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि - इधर यह अनार अत्यधिक पक जाने के कारण फटे हुए अपने फलों से गौड़ देश की स्त्रियों के अधरोष्ठ की कान्ति से रंगी सुन्दर दन्तपङ्क्ति का अनुकरण कर रहा है और यह विजौरा का वृक्ष तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति से युक्त तथा एकाग्र नासिका से सूँघने के योग्य गन्ध से सुशोभित निर्मल फलों से काश्मीर देश की स्त्रियों के कपोलों की शोभा को ग्रस्त कर रहा है ।[1] हस्तिमल्ल द्वारा प्रकृति-चित्रण के सन्दर्भ में 'विक्रान्तकौरवम्' के प्रथम अङ्क का सातवाँ श्लोक वासन्तिक दिवसों के वर्णन में विशेष रूप से द्रष्टव्य है । वासन्तिक दिवसों का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि - जिनमें खिलती हुई आम्रलताओं की कोपलों के आ जाने से

---

1. विक्रान्तकौरवम् , द्वितीय अङ्क, श्लोक संख्या 16.

उन्मत्त कोयलों का स्वर उठ रहा है, जिनमें वासन्ती लताओं के फूलों पर घूमते हुए भ्रमरों के शब्दों का आडम्बर फैल रहा है और जिनमें पुष्पित अशोक की सुगन्ध से सुन्दर-मन्द-मन्द वायु के झोंके चल रहे हैं ऐसे ये वसन्त के दिन तरुण पुरुषों के मन को उत्कण्ठित कर रहे हैं ।[1]

कवि की रचनाओं में अलङ्कृति का सौष्ठव एवं भावना का चमत्कार प्राप्त होता है । वास्तव में हस्तिमल्ल श्रृङ्गार रस के चित्रण में समर्थ हैं । हस्तिमल्ल ने जीवन एवं जगत् के जिन तथ्यों एवं रसों का उन्मीलन किया है वे मोहक होते हुए भी एक विशिष्ट सीमा में आबद्ध हैं । यहाँ पर यह बात विशेष रूप से ध्यातव्य है कि इनकी कृतियों का भी नायक और नायिका राजकुल से ही सम्बद्ध है । यद्यपि आज कल राजाओं का महत्त्व कम हो गया है तदपि सामान्य जन-मानस का उनके प्रति आकर्षण बना हुआ है । यही कारण है कि राजतंत्र के उस युग में हस्तिमल्ल जैसे जैन महाकवि भी अपने को राज-व्यामोह से दूर नहीं कर पाये । राजकुलों की प्रणयकथाओं का महाकवियों के द्वारा चित्रण तो तत्कालीन समाज और राजकुलों की स्थिति की ओर इङ्गित करता है । मध्यकालीन भारत में राजकुलों के विलासिता की कहानियाँ जनसामान्य में अद्यावधि चर्चा के विषय हैं ।

---

1. विक्रान्तकौरवम् , प्रथम अङ्क, श्लोक संख्या 7.

अन्ततः संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि महाकवि हस्तिमल्ल ने परिष्कृत एवं प्राञ्जल कृतियों की रचना करके संस्कृत नाट्य-साहित्य को समृद्ध बनाने में गुरुतर योगदान किया है । इनके नाटकों में दृश्यमान रस, गुण, रीति, छन्द, अलङ्कार, कथा-वस्तु, अर्थ-प्रकृतियाँ, कार्यावस्था, सन्धियाँ, संवाद, नाट्य-योजना, आदि का विधान काव्य-शास्त्र के निकष पर सर्वथा खरे उतरते हैं । हस्तिमल्ल ने प्रेम और सौन्दर्य का जो वर्णन अपनी कृतियों में प्रस्तुत किया है, वह युग-युगान्तर तक सहृदयों को मुग्ध करता रहेगा ।

महाकवि हस्तिमल्ल ने शास्त्रीय सिद्धान्त एवम् लोककल्याण के मञ्जुल समन्वय का जो निदर्शन परवर्ती कवियों के समक्ष प्रस्तुत किया है, वह निश्चित रूप से आने वाली सहस्राब्दियों में कविकर्म का निर्वाह करने वाले मनीषियों के लिए अनुकरणीय रहेगा ।

-----------::0::-----------

# अधीत ग्रन्थ सूची


| क्र0 स0 | ग्रन्थ का नाम | रचनाकार | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| 1. | अञ्जनापवनञ्जय | हस्तिमल्ल | माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, हीरा बाग, मुम्बापुरी । |
| 2. | अमरकोश | अमरसिंह | चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी । |
| 3. | अभिज्ञानशाकुन्तलम् | कालिदास | साहित्य संस्थान, मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद । |
| 4. | अलङ्कार-प्रदीप | विश्वेश्वर | काशी-संस्कृत ग्रन्थमाला |
| 5. | आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश | डॉ0 रामस्वरूप 'रसिकेश' | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 6. | अष्टाध्यायी | पाणिनि | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 7. | काव्यादर्श | दण्डी | परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली । |
| 8. | काव्य-प्रकाश | आचार्य मम्मट | ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी । |
| 9. | काव्यालङ्कार | महाकवि रुद्रट | विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी । |
| 10. | काव्यमीमांसा | राजशेखर | काशी-संस्कृत ग्रन्थमाला |
| 11. | जैन संस्कृति का हृदय | पण्डित श्री सुखलालजी संघवी | जैन कल्चर रिसर्च सोसाइटी |
| 12. | जैन अध्ययन की प्रगति | दलसुख मालवणिया | जैन संस्कृति संशोध मण्डल, वाराणसी |

| क्र0 सं0 | ग्रन्थ का नाम | रचनाकार | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| 13. | जैन आचार में इन्द्रिय दमन की मनोवैज्ञानिकता | डॉ0 रतनचन्द्र जैन | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी । |
| 14. | दशरूपकम् | धनञ्जय | चौखम्बा अमरभारती, प्रकाशन, वाराणसी । |
| 15. | ध्वन्यालोक | आनन्दवर्धन | ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी । |
| 15ए. | नाट्य-दर्पण | रामचन्द्र गुणचन्द्र | परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली । |
| 16. | नाट्यशास्त्र | भरतमुनि | चौखम्बा संस्कृत संस्थान । |
| 17. | नैषधीय चरितम् | श्रीहर्ष | कृष्णदास अकादमी, वाराणसी । |
| 18. | प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन | डॉ0 श्री रंजन सूरिदेव | भाषा-साहित्य संस्थान त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद । |
| 19. | बृहत् हिन्दी-कोश | कालिका प्रसाद | बनारस ज्ञानमण्डल लिमिटेड । |
| 20. | भरत नाट्यविवृति | अभिनवगुप्त | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 21. | रघुवंश महाकाव्य | कालिदास | भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ |
| 22. | रत्नावली | श्रीहर्ष | कृष्णदास अकादमी, वाराणसी । |
| 23. | रस गङ्गाधर | पण्डितराज जगन्नाथ | विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थ माला, वाराणसी । |
| 24. | लघु-सिद्धान्त-कौमुदी | वरदराज | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 25. | वृत्त रत्नाकर | श्री भट्ट केदार | मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी |

| क्र0 स0 | ग्रन्थ का नाम | रचनाकार | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| 26. | वृत्त रत्नाकर | भट्टनारायण | चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी. |
| 27. | विक्रान्तकौरवम् | हस्तिमल्ल | चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी । |
| 28. | शिशुपालवध | माघ | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 29. | साहित्यदर्पण | आचार्य विश्वनाथ | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 30. | साहित्यिक निबन्ध | राजनाथ शर्मा | विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा । |
| 31. | सुभद्रा नाटिका | हस्तिमल्ल | माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, हीरा बाग, मुम्बापुरी । |
| 32. | सुवृत्त तिलक | क्षेमेन्द्र | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 33. | सौन्दर्य का तात्पर्य | रामकीर्ति शुक्ल | उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ । |
| 34. | संस्कृत-नाटक | ए0वी0 कीथ | मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी। |
| 35. | संस्कृत-नाटक समीक्षा | डॉ0 इन्द्रपालसिंह | साहित्य निकेतन, कानपुर । |
| 36. | संस्कृत-हिन्दी कोश | वामन शिवराम आप्टे । | मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी। |
| 37. | संस्कृत कवि दर्शन | डॉ0 भोलाशंकर व्यास | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 38. | संस्कृत काव्यकार | डॉ0 हरिदत्त शास्त्री | साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ । |

| क्र0 स0 | ग्रन्थ का नाम | रचनाकार | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| 39. | संस्कृत काव्य तरङ्गिणी | प्रो0 सत्यव्रत शास्त्री | राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद |
| 40. | संस्कृत काव्य शास्त्र | डॉ0 सुशील कुमार डे | बिहार हिन्दी-ग्रन्थ अकादमी । |
| 41. | संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन | रामजी उपाध्याय | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 42. | संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मकअध्ययन | डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी | विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा । |
| 43. | संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास | डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी | साहित्य संस्थान, मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद । |
| 44. | संस्कृत साहित्य का इतिहास | वाचस्पति गैरोला | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 45. | संस्कृत साहित्य का इतिहास | जितेन्द्र चन्द्र भारतीय | उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ । |
| 46. | संस्कृत साहित्य का इतिहास | डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी | विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा । |
| 47. | संस्कृत भाषा एवं साहित्य का संक्षिप्त इतिहास | डॉ0 टी0जी0 माईणकर | राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद । |

| क्र० स० | ग्रन्थ का नाम | रचनाकार | प्रकाशन |
|---|---|---|---|
| 48. | संस्कृत साहित्य का इतिहास, | बलदेव उपाध्याय, | शारदा निकेतन, रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी । |
| 49. | संस्कृत सुकवि समीक्षा | बलदेव उपाध्याय | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । |
| 50. | हलायुध कोश | जयशङ्कर जोशी | हिन्दी-समिति, सूचना-विभाग, उत्तर-प्रदेश, लखनऊ । |


-----------::0::-----------